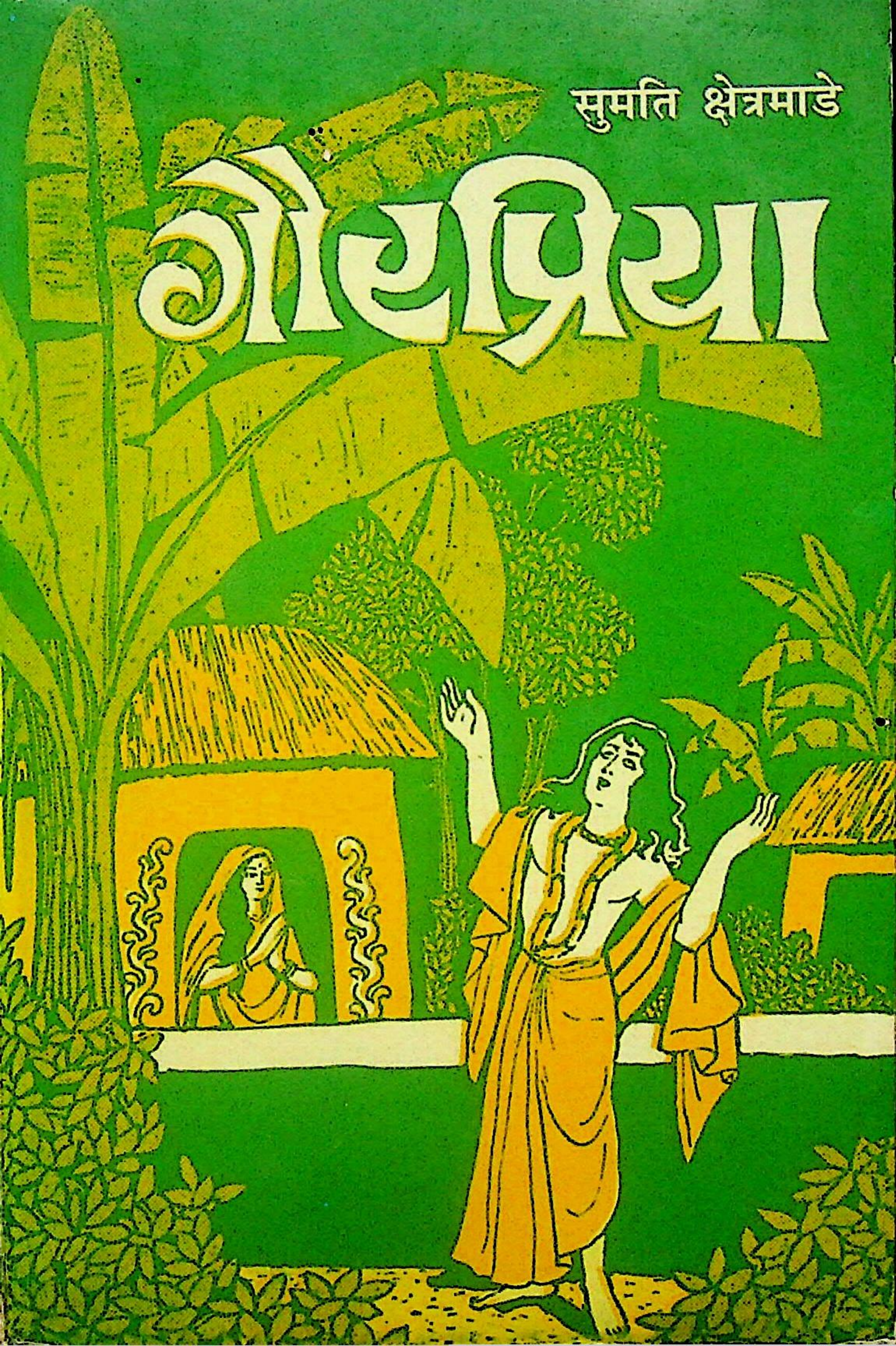
सुमति क्षेत्रमाडे

गौरप्रिया



गौरप्रिया

चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर आधारित
हृदयस्पर्शी उपन्यास

लेखिका

डा० सुमति क्षेत्रमाडे

अनुवादक
रा० र० सर्वटे

२००२

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN-81-7309-022-X

प्रकाशक

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

एन-७७, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस,

नई दिल्ली-११०००१ फोन न. ३३१०५०५

शाखा : १२६, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

फोन न. ०५३२-४०००३४

●

दूसरी बार : २००२

प्रतियाँ : १०००

मूल्य : रू० ४०.००

●

मुद्रक

आई. बी. एच. प्रिंटर्स

मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

कुछ समय पूर्व हमने भारतीय तथा विदेशी भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों को हिंदी में प्रकाशित करने की एक योजना बनाई थी। उस योजना का मूल उद्देश्य यह था कि हिंदी का साहित्य समृद्ध हो और हिंदी के पाठक अन्य भाषाओं के लेखकों से परिचित हों।

इस योजना के अंतर्गत हमने बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तेलगु, तमिल, राजस्थानी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के उपन्यास निकाले। इन उपन्यासों को पाठकों ने बहुत पसद किया और उनमें से अधिकांश के कई-कई संस्करण हो गये।

इसी योजना के अंतर्गत प्रस्तुत उपन्यास पाठकों को सुलभ हो रहा है। इसकी लेखिका की अत्यंत भावपूर्ण कृति 'मेघ-मल्हार' पाठक पढ़ चुके हैं। उसका प्रकाशन 'मण्डल' से हुआ है। उस उपन्यास की रचना उन्होंने अमर गायक तानसेन के जीवन की घटनाओं पर की थी।

यह उपन्यास चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जीवन पर आधारित है। चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी पत्नी विष्णुप्रिया के क्रिया-कलापों के माध्यम से लेखिका ने अध्यात्म की ऐसी धारा प्रवाहित की है कि उसमें अवगाहन कर पाठक बड़ी शीतलता अनुभव करते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास ऐसी घटनाओं से ओत-प्रोत है कि उसे पढ़ते-पढ़ते पाठक विभोर हो उठते हैं।

उपन्यास इतना रोचक है कि एक बार हाथ में ले लेने पर बिना पूरा किये छोड़ा नहीं जा सकता।

मूल मराठी में यह उपन्यास दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है। लेकिन हिंदी में उसका विस्तार कुछ कम कर दिया गया है, किंतु उससे कोई भी महत्वपूर्ण घटना छूटने नहीं पाई है।

हमें हर्ष है कि इसका अनुवाद बड़े ही सिद्धहस्त व्यक्ति ने किया है। सर्वटेजी के कई अनुवाद 'मंडल' से निकले हैं, जो बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। लेकिन हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पिछले दिनों उनका देहान्त हो गया। यदि वह आज जीवित होते तो अपने इस अनुवाद को प्रकाशित देखकर तुम्हें बहुत ही हर्ष हुआ होता।

हमें विश्वास है कि पाठक इस मर्मस्पर्शी तथा उद्बोधक उपन्यास को चाव से पढ़ेंगे और इसके रस में डुबकी लगाकर जीवन में गहरी शान्ति अनुभव करेंगे।

—मंत्री

गौरप्रिया

१

अभी-अभी सूर्योदय हुआ था। नवद्वीप के गंगाघाट पर रोज की तरह भावुक ग्रामवासियों की भीड़ लगी थी।

"हर गंगे!.. हर भागीरथी!...ज़य गंगा मैया! हर...हर-हर...!"

पानी में लगाई गई डुबकियों की आवाज के साथ परमपावन पुण्य-सलिला जीवनदात्री के नाम की घोषणा कानों में पड़ रही थी। यह नाम-स्मरण और यह घोषणा रोज भोर होते ही शुरू हो जाती। आकाश में सुबह के तारों की जगमगाहट के साथ घाट की ओर जानेवाले मार्ग पर भावुकों की आवाजाही शुरू हो जाती। घाट पर, और मार्ग पर भी, गंगा-स्तवन के अनेक स्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम और वेद की अनेक ऋचाएं सुनाई पड़तीं। ऊंचे और गंभीर स्वर में कही गई अनेक काव्य-पंक्तियों से आस-पास का वातावरण निनादित हो उठता। सुनकर ऐसा लगता, जैसे उस पवित्र घाट पर एक ही समय स्थान-स्थान पर अनेक यज्ञ चल रहे हों।

नवद्वीप के घाट पर यह रोज का दृश्य रहा करता। नवद्वीप की उस समय ऐसी ही महिमा थी। सोलहवें शतक के पूर्वार्द्ध का वह काल था। नवद्वीप बंगाल में संस्कृत विद्या का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र माना जाता था। संस्कृत के अध्ययन की लगभग पचास विख्यात पाठशालाएं उस समय नवद्वीप ग्राम में थीं। दूर-दूर के विद्यार्थी विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए यहां आते। विशेषतः उस समय नवद्वीप में न्याय-शास्त्र का विशेष महत्त्व था। व्याकरण-शास्त्र और काव्य-शास्त्र आदि अन्य शास्त्रों में परम्परागत पारंगत होनेवाले पंडित यदि न्याय-शास्त्र से अनभिज्ञ होते तो उनका विशेष सम्मान न होता था।

उस समय पंडित वासुदेव सार्वभौम की न्याय-पाठशाला नवद्वीप में

सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। अनेक कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी अपना अध्ययन पूर्ण करके प्रसिद्ध पंडित बनकर अपने ग्राम जाकर नवद्वीप की ख्याति चारों ओर फैलाते थे। कितने ही वहीं स्थायी रूप से रह भी जाते थे।

सवेरे घाट पर स्नान-संध्या की धूम मची रहती और स्तोत्रों तथा मंत्रों का उद्‌घोष हुआ करता। सायंकाल विभिन्न पाठशालाओं के सैंकड़ों छात्र अपने-अपने दल बनाकर घाट पर विशाल वृक्ष के तले एकत्र होते और शास्त्र-चर्चा में रंग जाते। कहीं न्याय-मीमांसा चलती तो कहीं व्याकरण-शास्त्र पर चर्चा होती। निकट के ही एक वृक्ष के तले जोर-जोर से काव्य-शास्त्र पर रंग चढ़ता। वाद-विवाद, पूर्व पक्ष, उत्तर पक्ष, खण्डन-मण्डन आदि बड़े आवेश से होते रहते। सूर्यास्त हो जाता, आसपास अंधेरा गहरा जाता, फिर भी वाद-विवादों में कइयों की प्रखर बुद्धि का तेज जगमगाता रहता, शब्दों की चिनगारियां उड़ती रहतीं।

पुरुषों के घाट से दायीं ओर थोड़ी दूर पर बरगद के पेड़ों की छाया में स्त्रियों का घाट था। घाट से लगे भागीरथी के कमर-भर पानी में स्त्रियां डुबकियां लगाती हुई स्तोत्र-पठन शुरू कर देतीं। स्नान हो चुकने पर वे कपड़े धोती हुई गप्पें मारा करतीं। एक-दूसरे के घर की कुशल-क्षेम पूछतीं, सुख-दुःख की बातों का आदान-प्रदान होता और गांव की खबरों पर चर्चा भी हुआ करती।

उस घाट पर एक तुलसी-वृंदावन था। वहीं थोड़ी दूर बकुल वृक्ष के तले वंसीधर का छोटा-सा मंदिर भी था। गांव की वैष्णव स्त्रियां और लड़कियां तुलसी की पूजा करतीं, बंसीधर के दर्शन करतीं और फिर पानी की कलसियां कमर पर लिये गप्पें मारती हुई राह लग जातीं।

समवयस्क सहेलियों का सायंकाल को घूमने और एकांत में बैठकर मन की बातें करने का यही प्रिय स्थान था।

सायंकाल के प्रसन्न और प्रशांत समय में ऊपर पुरुषों के घाट पर उच्च स्वर में चलनेवाली आवेश-भरी चर्चा और रंगा हुआ वाद-विवाद संथवाहिनी भागीरथी सुना करती और उसी समय नीचे के घाट पर स्त्रियों में मंद और भावव्याकुल स्वर में होनेवाली अनेक मन की बातें अपने मन में छिपाकर रख लेती।

○

कुछ समय पहले ही सूर्य भगवान उदित हुए थे। दोनों घाट भरे हुए थे। हमेशा सूर्योदय से पहले ऊपर के घाट पर विशेष भीड़ रहा करती तो सूर्योदय के पश्चात नीचे के घाट पर लोगों का आना-जाना बढ़ जाता।

सूर्य क्षितिज-रेखा से धीरे-धीरे ऊपर सरक रहा था। घाट पर भीड़ बढ़ रही थी।

इसी समय तीन-चार लड़कियां हाथ में कलसियां और वस्त्र लिये स्नान करने घाट पर आईं। रोज की अपेक्षा उन्हें आज थोड़ा विलंब हो गया था। घाट भरा हुआ था। उस भीड़ से तनिक दूर थोड़ा खाली स्थान देखकर उन्होंने अपने-अपने वस्त्र और कलसियां नीचे रक्खीं और वे प्रवाह में उतर पड़ीं।

उनमें से एक ने कहा, "विष्णुप्रिया, आज बड़ी देर कर दी तूने। कितनी देर से बाहर रास्ते पर रुककर हम तेरी राह देख रही थीं!"

दूसरी ने कहा, "अरी शुभा, उसकी बाट जोहने हम नहीं खड़ी रहेंगी, तो फिर किसके लिए खड़ी रहेंगी? नवद्वीप के राजपंडित की कन्या है वह!"

शुभा ने कहा, "राजपंडित की कन्या क्या कोई राजकन्या है?"

"जी हां, वह निश्चय ही राजकन्या है। अरी, राजकन्या के सारे लक्षण उसमें विद्यमान हैं। निगाह पड़ते ही वहीं अटक जाय, ऐसा उसका असाधारण सौन्दर्य है। अखूट धन, राजपंडित के वैभव और विद्वत्ता की सर्वत्र धाक है। समझी।"

"पद्मा, अपनी सहेली का वर्णन तो बिलकुल ठीक किया तूने। खंडन-मंडन के लिए तिल भर भी जगह नहीं छोड़ी। पर यह ऐसा वर्णन करके तूने पंडित मिश्र की चिंता बढ़ा दी।"

"चिंता बढ़ा दी? सो किस तरह?"

"अरी, ऐसी सकलगुणालंकार लावण्यवती राजकन्या के लिए योग्य राजपुत्र खोज निकालना सरल काम है क्या? इसके लिए पंडित मिश्र को समूचा बंगाल देश छान डालना पड़ेगा। क्यों, कांचना, सच है न?"

कांचना उन तीनों की अपेक्षा उम्र में थोड़ी बड़ी और कुछ गंभीर वृत्ति की कम बोलने वाली किशोरी थी। उसने कहा, "राजपंडित हाथ में दीया

लेकर सूर्य को खोजने के लिए कहीं बाहर जायेंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। यदि ऐसा हुआ तो 'बगल में छोरा शहर में ढिंढोरा' जैसी बात होगी।"

कमर-भर पानी में खड़ी हुई विष्णुप्रिया को लक्ष्य कर शुभा ने चिल्लाकर कहा, "विष्णुप्रिये, कांचना दीदी क्या कहती हैं, सुना तूने ?"

कुछ न बोलकर वह तनिक हँस दी। उसका हृदय थरथराया। किसके विषय में कह रही है यह कांचना दीदी ?

शरीर से टकराने वाली शीतल और सुखद लहर को कोई हाथ से जिस तरह दूर हटा दे, उसी तरह उस प्रश्न को उसने दूर हटा दिया और आगे के गहरे पानी में घुसकर उसने 'जय गंगे ! जय भागीरथी !' कहते हुए डुबकी लगाई और भागीरथी की कोख में एक क्षण के लिए अदृश्य हो गयी।

उसके पीछे-पीछे पानी में घुसी हुई तीनों तरुणियों नें उसका अनुकरण किया। हंसी-मजाक बंद हो गया। सिर्फ डुबकियों की आवाजें और 'जय गंगे ! जय भागीरथी !' की पुकारें आसपास गूंज उठीं।

एक क्षण बाद विष्णुप्रिया ने अपना सिर पानी से बाहर निकाला। उसके काले और लंबे केश पानी की लहरों पर तैरने लगे। उसने अंजलि भर-भरकर सूर्य को अर्घ्य दिये और सूर्य-स्तोत्र बोलने लगी। पाठ समाप्त हुआ। इसके बाद उसने एक-के-बाद-एक नित्य के स्तोत्रों का पाठ आरंभ किया। उसकी मधुर आवाज, संस्कृत शब्दों के स्पष्ट और शुद्ध उच्चार को बाकी की तीनों मुग्ध होकर सुन और उसकी तन्मयावस्था की ओर अनिमेष नेत्रों से देख रही थीं। "हमारी यह लावण्यवती प्रखर बुद्धिवाली सहेली हम जैसी साधारण नहीं," ऐसा उनके अंतर्मन को अनुभव हो रहा था। नेत्र बंदकर एकाग्र चित्त से स्तोत्र बोलते समय उसकी भाव-समाधि की ओर देखकर उन्हें लगता, राजपंडित के घर में जन्म लेने वाली यह कोई अभिशप्त देवी या जलदेवी तो नहीं है ! उसके पाठ का उन्हें सदा ही कौतुक लगता।

राजपंडित सनातन मिश्र ने विष्णुप्रिया से घर में ही संस्कृत का अध्ययन करवा लिया था। उनके घर पर सदा दूर-दूर के पंडितों का आना-जाना लगा रहता। घर के सामने के विस्तीर्ण चंडी-मंडप में पंडितों

की सभाएं हुआ करतीं। चर्चा चलती रहती। यह सब विष्णुप्रिया के कानों में निरंतर पड़ता रहता। उसे सुन-सुनकर विभिन्न शास्त्रों का उसे अच्छा ज्ञान हो गया था। वह जितनी सुंदर थी उतनी ही बुद्धिमती और वय के मान से विचारशील भी थी।

चारों सहेलियों का स्नान पूरा हुआ। सबने कपड़े धोये। कलसियां भरीं। कन्धे पर धोये हुए वस्त्र और कमर पर कलसियां लेकर ठाठ से, पुनः गप्पें मारती हुई, घाट की सीढ़ियां चढ़कर वे मंदिर की ओर चलीं। मंदिर में जाने से पहले तुलसी-वृन्दावन की ओर जाकर तुलसी की परिक्रमा करने के लिए वे उस ओर मुड़ीं।

इसी समय एक शुभ्र वसनधारी स्त्री, जो पचास से कुछ ऊपर थी, मंदिर से बाहर निकलकर धीरे-धीरे कदम रखती हुई सामने आती दिखाई दी।

लड़कियों की नटखट बातें और हँसना एकदम बंद हो गया। पद्मा ने धीरे से कहा, "शची मां, को आज इतनी देर कैसे हो गयी ? रोज सूर्य के उगते ही सब कार्य पूरे करके घर लौट जाती हैं।"

कांचना ने धीरे से कहा, "पिछले दो दिनों से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कल मां उनकी खबर पूछने गयी थी तब चादर ओढ़कर सोयी हुई थीं। ज्वर था उन्हें।"

"ज्वर हो या खांसी, उनका गंगास्नान का नियम कभी नहीं चूकता।"

शची मां पास आईं तो लड़कियां सलीके से ठहर गयीं। शची मां के प्रति समूचे गांव के लोगों में आदर था। शुभा और कांचना तो उन्हीं के मोहल्ले में रहती थीं। वे निकट आईं तो दोनों ने उन्हें नमस्कार किया।

कांचना ने कहा, "मां, आज स्वास्थ्य कैसा है ? ज्वर उतर गया न ?"

शची मां जरा हंसी। फिर बोलीं, "ठीक है। कांचना, यह कौन है ? हरिमती की बहू है क्या ?"

"हां मां, पिछले साल जिसका विवाह हुआ था न, वह यह पद्मा है, और यह है शुभा—गदाधर पंडित की लड़की। अपने ही मायापुर पाड में रहती है।"

विष्णुप्रिया इन तीनों के पीछे खड़ी हुई थी। वह शची मां के गोरे

तेजस्वी चेहरे की ओर एकटक देख रही थी।

कांचना ने कहा, "और मां, यह..."

परंतु उसके और कुछ कहने से पहले ही विष्णुप्रिया एकदम आगे बढ़ी। झट-से झुकी और उसके चरण छू कर धूल उसने अपने मस्तक पर लगाई।

शची मां आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखती रहीं। फिर उसे आशीष देकर तनिक हंसते हुए प्रसन्नता से उन्होंने पूछा, "लड़की, तेरा नाम क्या है ?"

उसने धीरे-से कहा, "विष्णुप्रिया !"

"विष्णुप्रिया ! विष्णुप्रिया ! विष्णुप्रिया ! कितना सार्थक नाम है ! किसकी कन्या है तू ?"

विष्णुप्रिया संकोच से कुछ बोल न सकी। गर्दन झुकाये लाज से लदी उसी तरह खड़ी रही।

उन्होंने पूछा, "तेरे पिता का नाम क्या है ?"

"सनातन मिश्र !"

"सनातन मिश्र ! यानी राजपंडित सनातन मिश्र की तू लड़की है ?"

विष्णुप्रिया ने मूर्तिवत होकर गर्दन हिला दी।

शची मां उसके लावण्ययुक्त तेजस्वी मुख की ओर देखती रहीं। उनकी एकटक दृष्टि से लजाकर विष्णुप्रिया पीछे मुड़ी और कलसी और धोये हुए वस्त्र उठाने के निमित्त नीचे झुक गयी।

उस सुकुमार कुमारिका पर एक बार आपाद-मस्तक स्निग्ध दृष्टि डाल कर शची मां तुलसी-वृन्दावन की ओर मुड़ गयीं। चारों जनीं मंदिर की ओर बढ़ गईं।

चलते-चलते पद्मा ने कहा, "विष्णुप्रिया, राजकन्या, शची मां ने तुझे क्या आशीर्वाद दिया, वह सुना ?"

शुभा ने कहा, "अरी, वह आशीर्वाद सीधा उसके हृदय में चला गया, कानों में नहीं। इसलिए अब मैं पुनः कहती हूं, विष्णुप्रिया तुझे इच्छित वर प्राप्त हो !"

"इच्छित वर कौन-सा ? क्या मन में कोई बसा है ?"

"अरी, विष्णुप्रिया का इच्छित वर विष्णु के सिवा दूसरा कौन होगा? इसीलिए तो रोज विष्णुसहस्रनाम के पारायण चलते रहते हैं। यह मुंह से लगातार कहती रहती है—विष्णायनमः ! विष्णायनमः !"

पद्मा ने हंसकर कहा, "छिः ! छिः ! यह क्या, शुभा ? अरी, तू गदाधर पंडित की लड़की और 'विष्णायनमः, विष्णायनमः' कहती है ? पंडित की लड़की को मामूली विष्णु शब्द का चतुर्थी रूप भी मालूम नहीं ? पंडित के घर का तोता भी संस्कृत शब्द शुद्ध बोलता है।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर मृदु स्वर में कहा, "पद्मा, शुद्ध भाव-भक्ति को अशुद्ध व्याकरण के कारण कोई बाधा नहीं पहुंचती। ईश्वर भक्ति-भाव का भूखा होता है। वह तुम्हारे अंतःकरण की भावना को देखता है, बाहरी आडंबर को नहीं देखता, क्योंकि कहा ही है न :

मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे ।
उभयोस्तु शुभं पुण्यं भावग्राही जनार्दनः ॥"

पद्मा ने हंसकर कहा, "वाह ! वाह ! विष्णुप्रिये ! तू सच्ची ज्ञानी है। सच्चा ज्ञानी इसी तरह संतुलित बुद्धि का होता है। शुभा, श्लोक का अर्थ समझ गयी न ?"

शुभा ने गर्दन मटकाकर बड़ी ठसक से कहा, "समझ गयी।"

"क्या समझी ? बोल !"

"अरी, मुझ जैसी मूर्खा 'विष्णाय' कहती है। तुझ जैसी बुद्धिमती और ज्ञानी 'विष्णवे' कहती है। पर दोनों को ही उसका समान फल प्राप्त होता है, क्योंकि भगवान जनार्दन यानी विष्णु भावग्राही हैं।"

"वाह ! वाह ! शुभे, कमाल कर दिया तूने तो ! अब पंडित की लड़की शोभा देती है तू।"

पद्मा ने कहा, "विष्णुप्रिये, कुछ समय पहले शची मां तेरी ओर कितने कौतुक से देख रही थीं। तेरे सौंदर्य से और तेरे ज्ञान के तेज से जैसे वे चौंधिया गयी थीं ! सच, तेरा नाम कितना सुंदर है ! शची मां के कहने के अनुसार बिलकुल सार्थक है।"

इतनी देर तक स्तब्ध खड़ी हुई कांचना ने कहा, "मेरी मां कहती थीं

कि इसका जब जन्म हुआ, उस समय काशी के कोई ज्योतिषाचार्य राजपंडित के घर आए हुए थे। उन्होंने इसके जन्म-ग्रह देखकर राजपंडित से कहा था कि लड़की का नाम विष्णुप्रिया रक्खो। लड़की बड़ी भाग्यशालिनी है। इसे विष्णु के समान पति मिलेगा।"

"मिल जाय तो आश्चर्य नहीं। इसके सा॑ ॑भ चिह्न वही हैं।"

शुभा ने कहा, "विष्णु के समान नहीं. ॑ो, विष्णु ही। कुछ समय पहले मेरी व्याकरण की भूल दिखाने के नि॑ ॑त इसने जो श्लोक कहा था, उसमें इसका मन कहां बसा है, यह पद्मा, तुझ बुद्धिमती के ध्यान में न आया होगा, पर मुझ मूर्खा के ध्यान में आ गया। समझी ?"

मंदिर निकट आ गया। गपशप बंद हो गयी।

२

शची मां घाट से घर लौटीं। वे थक गयी थीं। थोड़ा विश्राम करने के लिए उन्होंने कमर पर की कलसी उतारकर आंगन के चबूतरे पर रखी और एक क्षण के लिए वहीं बैठ गयीं। पड़ोस की काशीबाई सुवह ही आकर घर को झाड़-बुहारकर, आंगन को गोबर से लीपकर, उसमें रांगोली निकालकर चली गयी थी। आंगन छोटा-सा था। घर भी नीचा छोटा-सा था। उसपर कवेलू छाये हुए थे। दो सीढ़ियां चढ़ने पर सामने बरामदा था। बरामदे की दाईं और बाईं ओर एक-एक कमरा था। दोनों कमरों के बीच एक बड़ा कमरा था। उसी के एक भाग में रसोईघर और पीछे छोटा-सा पिछवाड़ा था।

वें चबूतरे पर एक क्षण के लिए बैठ गयीं। चरण छूनेवाली विष्णुप्रिया की सुकुमार मूर्त्ति उनकी आंखों के सामने साकार हो उठी। वह विनम्र, लज्जाशील, तेजस्वी और सुंदर कन्या उनके मन में बस गयी थी।

थोड़ी देर बाद वे उठकर घर में गयीं और काम में लग गयीं। परंतु विष्णुप्रिया की मूर्त्ति उनकी आंखों के सामने से हट नहीं रही थी।

"सच ! मेरे निमाई के लिए यह लड़की सब प्रकार से योग्य है। ऐसा लगता है, जैसे निमाई के लिए ही यह धरती पर आई है। पर योग्य होने पर भी उपयोग क्या ? केवल मन के लड्डू खाना है। विष्णुप्रिया यहां के राजपंडित की कन्या है। मैं निर्धन हूं। केवल निर्धन ही नहीं. बल्कि निराधार, विधवा। एक निराधार निर्धन विधवा के लड़के को अपनी कन्या देने के लिए राजपंडित कैसे राजी होंगे ?···

" उन्हें क्यों राजी नहीं होना चाहिए ? मेरा गौरांग (निमाई) गरीब भले ही हो, पर एक विद्वान और कुशाग्र बुद्धि पंडित के नाते गांव में आदरणीय माना जाता है। पंडितों की सभाओं में जौहर दिखानेवाला, बड़े-बड़े पंडितों को वादविवाद में पराभूत कर देनेवाला, ऐसी उसकी ख्याति है। सारा अध्ययन पूरा करके केवल सोलह वर्ष की अवस्था में ही वह अध्यापक बन गया। इस नवद्वीप में इतनी छोटी अवस्था में अभी तक कोई अध्यापक नहीं बना। व्याकरण, अलंकार, न्याय आदि शास्त्रों में उसने अपने पिता के समान ही प्रवीणता प्राप्त की है। केवल सोलह वर्ष की आयु में ही उसने 'पंचीटीका' नाम का व्याकरण पर एक ग्रंथ लिखा। उसकी सब जगह खूब प्रशंसा हुई, ऐसा अद्वैताचार्य गुरुजी ने ही कहा है। अभी भी आगे अध्ययन करने की, विशेषकर काशी जाकर कुछ काल वहां पढ़ने की उसकी इच्छा थी। पर मैंने उसे जाने की अनुमति नहीं दी। कैसे देती ?... एक बार मेरा मन झुलस गया है। वह घाव अभी तक भरा नहीं है...कैसे भरेगा ?..."

स्वगत बात करते हुए उन्होंने दीर्घ सांस छोड़ी। उनकी निगाह सामने के बड़े कमरे के दरवाजे के पास के बड़े आले की ओर गयी। उस आले के आसपास दीवार पर चित्र बने हुए थे। अल्पना की चित्रावली थी वह। आले के ऊपर रंगों से लिखा हुआ था :

"विश्वरूप जगन्नाथ मिश्र।"

नीचे की ओर लिखा था :

"गौरांग जगन्नाथ मिश्र।"

चित्रों और लिखे हुए अक्षरों के रंग अब काफी फीके हो गए थे। उस आले में व्याकरण-शास्त्र, न्याय-शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्रों के ग्रंथ व्यव-

स्थित रूप से-रक्खे हुए थे। उन ग्रंथों की ओर वे देखती रहीं। वहां से उनकी निगाह आले पर लिखे हुए 'विश्वरूप जगन्नाथ मिश्र' इन अक्षरों पर जम गयी।

बात-की-बात में लगभग छत्तीस वर्ष पहले का काल अचानक उनके मन:चक्षु के सामने चित्रपट की भांति घूमने लगा। हृदय के भीतर, बहुत भीतर, छिपाकर रक्खी हुईं अनेक यादें एकाएक उमड़कर ऊपर आ गयीं। मन व्याकुल हो गया। हाथ थरथराने लगे। पैर लड़खड़ाने लगे।

वे हठात् वहीं जमीन पर बैठ गयीं और सामने के आले की ओर एक-टक देखती रहीं। सहसा ठेलमठेल करती स्मृतियों की भीड़ लग गयी।

"इसी घर में चालीस वर्ष पहले मेरी गृहस्थी का श्रीगणेश हुआ। गरीबी की गृहस्थी होते हुए भी किसी बात की हमें कमी नहीं थी। छिः! कमी कैसे नहीं थी? स्त्री के जीवन में वही तो सबसे बड़ी कमी होती है। एक के बाद एक आठ लड़कियां हुईं। पर एक का भी सुख मुझे नहीं मिला। लड़की होती थी और असमय ही चल देती थी। भाग्य का कितना कठोर अभिशाप था! उस अभिशाप के कारण हमारा दांपत्य जीवन निराशा से काला पड़ गया। घर-द्वार चिंतामग्न हो गया। लोगों द्वारा बताए गये सभी उपाय किये गए। पर सभी-के-सभी बेकार रहे। हमारा भाग्य और भगवान की इच्छा! पूर्व जन्म के पाप और अभिशाप था, नहीं तो ऐसा होता ही क्यों? परंतु अभिशाप पर उःशाप भी होता है। कठोर परीक्षा लेकर अंत में भाग्य हम पर प्रसन्न हुआ। नवमी खेप में मेरे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुंदर सलोना पुत्र! इसीलिए तो उसका नाम रखा विश्वरूप। जो-जो भोगा था, जो-जो दुःख सहन किया था, उस सबका परिहार हो गया। निराशा दूर हो गई। घर में आशा और आनंद का प्रकाश फैल गया।

"विश्वरूप बढ़ने लगा। वह बुद्धिमान था, पर स्वभाव से गंभीर था। बचपन से उसकी वृत्ति विरागी थी। खेलने की ओर उसका विशेष ध्यान न रहता। खान-पान के विषय में कभी कोई पूछताछ या छानबीन न करता। उसकी कोई जिद नहीं थी, कोई रुचि भी नहीं थी।

"छठवें वर्ष उसका व्रतबंध हुआ और उसके पिता ने अध्ययन के लिए

उसे अद्वैताचार्य के हाथ में सौंप दिया। अद्वैताचार्य की पाठशाला उस समय नवद्वीप में विख्यात तो थी ही, विशिष्ट भी थी। पेट भरने के लिए पढ़ने वाले तथा केवल तोतारटंत करने वाले साधारण विद्यार्थियों के लिए वहां स्थान न था। हमारा विश्वरूप कुशाग्र बुद्धि था। उसकी स्मरण-शक्ति असाधारण थी। अद्वैताचार्य की पाठशाला में वह जाने लगा। उनका प्रिय शिष्य हो गया।

"विश्वरूप नौ वर्ष का हुआ। उस वर्ष हम जगन्नाथपुरी की यात्रा पर गए। पुरी जाने की जगन्नाथ पंडित की बड़ी इच्छा थी। मैंने तो नवद्वीप के बाहर की दिशा ही कभी नहीं देखी थी। परंतु अद्वैताचार्य की कृपा से पुरी-यात्रा सफल हुई। उन्होंने विश्वरूप को अपने यहां रख लिया। यात्रा की सारी व्यवस्था उन्होंने ही की। यात्रा पर रवाना होने से पहले मैं उनका दर्शन करने गयी, तब उन्होंने आशीर्वाद दिया, "शची देवी, तुम्हारी यात्रा सफल होगी।"

"अद्वैताचार्य जैसे योगी अंतर्ज्ञानी होते हैं, इसका यात्रा में मुझे अनुभव हुआ। यात्रियों के दल के साथ हम दोनों पुरी गए। समुद्र-स्नान करके मंदिर में प्रवेश किया। मनमोहक मूर्त्तियों के दर्शन किये। जीवन धन्य हो गया। सवेरे-शाम पूजा और आरती देखते समय चित्त तल्लीन हो जाता। पुरी की यात्रा का कितना बड़ा पुण्य! यह यात्रा जो करते हैं, वे धन्य हैं!

"यात्रा समाप्त करके वापस लौटने का दिन आया। दोपहर को निकलना था। रोज की तरह सुबह की आरती में मैं पंडितजी के साथ मंदिर गयी। बाहर अंधेरा था। हवा में ठंडक थी। मैं हमेशा के स्थान पर पीछे जाकर खड़ी हो गयी। मन की वैसी भावना के कारण हो अथवा सुबह की आरती के प्रकाश की महिमा हो, भगवान जाने! पर सुबह पुरी की मूर्त्ति का रूप बालरूप दिखाई देता है। दोपहर को पंचारती के प्रकाश में वह बालरूप निश्चित ही बदला हुआ लगता है। कम-से-कम मुझे तो वैसा ही दिखाई दिया था। दोपहर को युवा रूप सामने आता है।

"सुबह की आरती समाप्त हुई। मैं वहीं दीवार के पास मूर्त्ति का दर्शन करती हुई बैठ गयी। यात्रा के इस अल्प वास में उस मूर्त्ति से मुझे प्रेम हो गया था। दोपहर को चलना था, इसलिए मन भारी हो गया था। अब पुनः

पुरी की यात्रा संभव नहीं। इसलिए उस मूर्त्ति को मैं आंखें भरकर देख रही थी। वह रूप मन में बसा करके रख रही थी।

" 'भगवान ! भगवान ! तुम नित्य मेरे पास रहो !'

" प्रार्थना करते-करते मेरा हृदय भर आया। आंखों में आंसू आ गए। दृष्टि धूमिल हो गयी। इसी समय क्षणार्ध में मुझे आभास-सा हुआ—नहीं, आभास नहीं था वह, मैंने साफ-साफ देखा, स्पष्ट रूप से अनुभव किया।

"मंदिर के गर्भ-गृह से या मूर्त्ति से दो-ढाई वर्ष का एक गोरा सुंदर अत्यंत रूपवान लड़का देहली लांघकर दौड़ता हुआ बाहर आया। सिर पर घने काले बाल। कमर में छम-छम आवाज करनेवाली घुंघरूदार सोने की करधनी।

"भीड़ में से वह बालक दौड़ता हुआ जो आया तो सीधा मुझसे आकर लिपट गया। उसके आलिंगन से मैं रोमांचित हो उठी। मेरा होश जाता रहा। कितनी देर तक मैं बेहोशी की अवस्था में रही, कौन जाने ! पर जब होश आया तब पंडितजी मुझे पकड़े बैठे हुए थे। मेरी आंखों पर पानी छिड़ककर कह रहे थे, 'देवी ! देवी ! होश में आओ।'

"मैं होश में आई। प्रसाद बांटा जा रहा था। प्रसाद लिया और पंडितजी के साथ बाहर निकली।

"जो अनुभव हुआ, वह अनोखा था, जैसे कहीं की कोई दिव्य शक्ति शरीर के रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी।

"यात्रा से हम घर लौटे। अद्वैताचार्य का दर्शन करने और विश्वरूप को घर लाने के लिए हम सीधे पहले उनके घर गए।

"विश्वरूप अध्ययन में खोया हुआ था। हमने अद्वैताचार्य के चरण छुये।

"उन्होंने पंडितजी को आशीर्वाद देकर निकट बिठाया। मैंने उनके चरण छुये तब वे मेरे चेहरे की ओर एक क्षण देखते रहे, जैसे मेरे अंतःकरण में वे कुछ खोज रहे थे। फिर प्रसन्नता से हंसकर उन्होंने कहा, "तथास्तु। जगन्नाथ पंडित, तुम्हारी यात्रा सफल हो गयी।"

"हम घर आए। काम में लग गए। परंतु अद्वैताचार्य के उद्गार कानों में गूंजते रहे। विश्वरूप जैसा सुलक्षणी सुंदर पुत्र उन्हींके आशीर्वाद से

हुआ था। मन संतुष्ट था, फिर भी स्त्री का मन जो है। कभी-कभी लगता, नौ वर्ष हो गए, और एकाध कन्या या पुत्र और...

"एक महीना बीता। गर्भ-धारण के लक्षण दिखाई देने लगे। जगन्नाथजी के मंदिर में सुबह की आरती के समय घटी घटना के अवसर पर मुझे जो आभास हुआ था मैंने विश्वरूप के पिता को बताया। उस समय तक संकोच के कारण इस विषय में मैंने उनसे कुछ नहीं कहा था। परंतु गर्भ-धारण के लक्षण दिखाई देते ही मैंने उन्हें सारी बात बताई।

"मेरी बात सुनकर वे एक क्षण के लिए स्तब्ध हो गए। फिर अपने आपसे बोले, 'इस अपने दरिद्र घर में! जैसी प्रभु की इच्छा!'

"मेरे गर्भवती होने की बात सबको मालूम हो गयी। हर कोई कहने लगा, प्रौढ़ वय में जगन्नाथ पंडित को यात्रा का फल मिला! वृद्ध स्त्रियां कहतीं, इस समय शची के अंग-प्रत्यंग पर प्रकट हुआ गर्भ-तेज कुछ अनोखा ही लगता है। कौन जाने, इसमें कितनी सचाई थी, पर घर में अलबत्ता उल्लास का तेज भर गया था। मेरा कुछ दुर्बल स्वास्थ्य आप-ही-आप अच्छा हो गया था।

"नौ महीने बीत गए। दसवां निकल गया। ग्यारह महीने समाप्त हो गए। अनुभवी दाई की चिंता भी बढ़ गयी। अद्वैताचार्य को पता चला। वे हमारे घर आए। मुझे उन्होंने आपाद-मस्तक देखा और हंसकर कहा, 'शची देवी, चिंता का कोई कारण नहीं। तेरह महीने गर्भवास करके एक अलौकिक पुरुष तुम्हारे पेट से जन्म लेनेवाला है।'

"और वही हुआ। तेरह महीने पूर्ण होने पर निमाई का जन्म हुआ। जन्म के समय ही वह छह महीने का जान पड़ता था। पुरी के जगन्नाथजी के मंदिर में गर्भ-गृह से दौड़ता हुआ आकर जो बालक मुझसे लिपट गया था, वही यह बालक था। वही रूप, गोरा, सुंदर। बड़ी-बड़ी आंखें, पूरे मस्तक पर काले घने बाल। विश्वरूप भी गोरा था, सुंदर था, परंतु दुबला-पतला था। पर इस बच्चे की परिपुष्टता नजर लग जाय, ऐसी थी।

"घर में दो पुत्र बढ़ने लगे। दोनों ही अत्यंत सुंदर और अच्छे लक्षणों वाले। पर स्वभाव दोनों के एकदम भिन्न। विश्वरूप गंभीर, विरागी, अलिप्त, शांत। इसके विपरीत निमाई बड़ा नटखट, चंचल, खाने-पीने के

बारे में बड़ी छानबीन और पूछताछ करनेवाला। पर बुद्धि की कुशाग्रता में बड़े भाई से दो कदम आगे।

"विश्वरूप का सोलहवें वर्ष में सारा अध्ययन पूर्ण हो गया। अब वह विवाह योग्य हुआ। संबंध भी आने लगे। घर में बातें शुरू हो गयीं। पर वह घर में रहता तभी तो हम उसके कानों में बातें डालते! वह तो दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक गंभीर और अंतर्मुख होता जा रहा था। पहले से ही वह कभी किसी से विशेष मिलता-जुलता नहीं था, पर अब तो वह बहुत ही एकांतप्रिय हो गया था। उसका एक ही प्यारा मित्र था, उसी का ममेरा भाई लोकनाथ। लोकनाथ उससे छः महीने छोटा था। उसी के साथ अद्वैताचार्य की पाठशाला में उसका अध्ययन हुआ था। हमेशा दोनों घाट पर कोलाहल से दूर जाकर बैठा करते। क्या बातें करते, कौन-सी रहस्यमयी चर्चा किया करते, सो भगवान जाने!

"उसका वैराग्य दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। विचारमग्नता गहरी होती जा रही थी। वह सुबह ही घर से बाहर निकल जाता। दोपहर को देर से घर आता। फिर बाहर चला जाता और रात को बड़ी देर से लौटता। घर में होता तब पढ़ने में खोया रहता।

"वह घर में होता तब छः वर्ष का छोटा निमाई उसके आसपास बड़-बड़ाता रहता। निमाई पर उसका बड़ा प्यार था। संस्कृत के पहले पाठ उसी ने अपने छोटे भाई को पढ़ाये थे।

"विश्वरूप की वैराग्य-भावना से चिंतित होकर मैं पंडितजी से उसका शीघ्रातिशीघ्र विवाह कर देने का आग्रह करने लगी। एक दिन भोजन के समय उसके पिता ने कहा, 'विश्वरूप, तुम अब विवाह योग्य हो गए हो। इस वर्ष तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए। तुम्हारे लिए योग्य कन्या भी हमने देख ली है। काशीनाथ पंडित की अरुंधती को तो तुमने देखा ही होगा। बेलपोखर में तुम्हारे मामा के घर के निकट ही काशीनाथ पंडित का घर है।'

"पिता की बात वह चुपचाप सुनता रहा।

"मैंने कहा, 'अरुंधती तुम्हारे बिलकुल अनुरूप है। तुम स्वयं देखना चाहते हो तो...'

"'छि...छि। मुझे देखने की क्या आवश्यकता है? तुमने देख ली, यही काफी है।'

"ऐसा कहकर जल्दी-जल्दी भोजन समाप्त करके वह चल दिया।

"हम दोनों का जी ठंडा हो गया। कुछ भी क्यों न हो, एक बार जहां गृहस्थी में फंस गया कि सब ठीक हो जायगा।

"दूसरा दिन शुभ दिन था। काशीनाथ पंडित के घर जाकर उनसे आगे की बातें करने का हमने निश्चय किया।

"ठंड के दिन थे। कड़ाके का जाड़ा था। विश्वरूप उस दिन जल्दी घर आ गया। भोजन करते समय उसने इधर-उधर की बातें कीं और फिर जाकर सो गया।

"उसके बर्ताव में यह परिवर्तन देखकर मुझे मन में बड़ी खुशी हुई।

"सुबह नित्य की भांति सबसे पहले पंडितजी उठे और गंगा नहाने चल दिये। विश्वरूप की ओर उनकी सहज निगाह गयी। उसका बिस्तर खाली था। पिछली रात उनके पहले वह सो गया था। इस कारण उन्हें लगा, मुझसे पहले जागकर वह गंगा-स्नान के लिए चल दिया होगा। फिर उनकी निगाह खूंटी पर गई तो वहां उसके कपड़े ज्यों-के-त्यों रक्खे हुए थे। मन में कुछ शक हो गया। जी घबराया। पंडितजी सीधे बेलपोखर गए। शायद वह लोकनाथ के घर गया होगा। पर वहां लोकनाथ भी नहीं था। उसका ी बिस्तर खाली पड़ा था और उसका भाई उसकी पूछताछ करने के लिए हमारे घर आने को निकल पड़ा था।

"सूर्योदय होते ही दोनों के गृह त्यागकर चले जाने का समाचार सारे गांव में फैल गया। हमारे घर लोगों की भीड़ जमा हो गई। जिसका भय मन में था, आखिर वह होकर रहा। वेदना असह्य थी। पंडित सुन्न होकर बैठ गए। सारा गांव खोजकर भी जब वे दोनों नहीं मिले तो उन्हें गंगा पार ढूंढ़ने का प्रस्ताव लोकनाथ के पिता ने प्रस्तुत किया, तब पंडित मिश्र ने अपना दुखावेग रोककर कहा, 'भाई, ठहरो, अब जाने में कोई अर्थ नहीं। उन्होंने जो ध्येय अंगीकार कर लिया है, उससे उन्हें पीछे खींचकर लाना उचित नहीं। इससे किसी का भी लाभ नहीं होगा। विश्वरूप और लोकनाथ दोनों ही अब अज्ञानी नहीं हैं। यदि वे यति धर्म स्वीकारना चाहते हैं

तो भगवान उनकी मनोकामना पूर्ण करे। हम सब भगवान की प्रार्थना करें कि संन्यासी बनकर वे अपने धर्म का यथोचित पालन करें !'

"अपने पति का गंभीर स्वर में कहा गया यह धीरोदात्त कथन सुनकर मैंने अपना शोक दबाया।

"इस, बात को आज चौदह वर्ष हो गए, पर उसके बाद आजतक कभी शब्दों द्वारा अंतर में छिपी व्यथा प्रकट नहीं की। उनके सामने कभी उसकी याद भी नहीं की। इस नवद्वीप के अनेक भक्त और उनके पंडित भारत के उत्तर की और दक्षिण की यात्राएं करके आते हैं। पर उनसे कभी उसका समाचार नहीं मिला। कभी कोई पता न लगा। कभी किसी को वह दिखाई भी नहीं दिया। वही नहीं, लोकनाथ भी। आंखों के सामने से जो एक बार गया, सो चला ही गया ! ईश्वर की इच्छा !"

3

"विश्वरूप के जाने के बाद उसकी याद में जब हम दुःखी हो जाते तो बालक निमाई मेरे गले में बांहें डालकर कहता, 'मां, पिताजी, तुम रोओ मत। रूप दा गया तो जाने दो। वह दूर, बहुत दूर, जाना चाहता था। जाने दो उसे। मैं बड़ा होऊंगा और तुम्हारी सेवा करूंगा।'

"उस नन्हे-मुन्ने की यह समझदारी की बातें सुनकर हमारे दिल भर आते। अब वही हमारा सहारा था।

"उसकी बाल-क्रीड़ाएं देखने में कितना सुख मिलता था, कितनी सांत्वना प्राप्त होती थी। वह बड़ा चुलबुला था। वैसा ही अभी भी है। हमेशा हंसता रहता। चेहरे पर गंभीरता रत्ती-भर भी नहीं थी। सदा मित्रों से घिरा रहता। अखण्ड बड़बड़। बुद्धि की कुशाग्रता में अपने भाई की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ। स्मरणशक्ति ऐसी कि देखकर आश्चर्य हो। कोई भी श्लोक एक बार सुनते ही उसे कण्ठस्थ हो जाता।

"पंडित उसे घर में पढ़ाते थे। उसके लिखने-पढ़ने की गति और उसकी

धारणा-शक्ति देखकर वे आनंदित हो उठते थे।

"एक दिन अद्वैताचार्य हमारे घर आए। अब वृद्धावस्था के कारण वे थक गए थे। पंडित ने उठकर उनका स्वागत किया। मैंने उन्हें बैठने को आसन दिया। बाहर बरामदे में पंडित लड़के को पढ़ा रहे थे।

"अद्वैताचार्य ने कहा, 'निमाई बेटा, क्या पढ़ रहे हो ? देखें।'

"पिता ने कहा, 'बता दो, बेटा।'

"निमाई झट-से उठा। अद्वैताचार्य को नमस्कार करके उनके सामने पद्मासन लगाकर बैठ गया। आखें बंद कर एकाग्र हो गया और उसने बताना आरंभ कर दिया। मैं दरवाजे की ओट में खड़ी होकर देख रही थी।

"उसने जो बताना आरंभ किया तो अखंड और अस्खलित बताता रहा, जैसे गंगा का प्रवाह कलकल करता हुआ अनिरुद्ध बह रहा हो। उसके उच्चारण बिलकुल स्पष्ट और शुद्ध थे। उस बालक के स्वर में कितना माधुर्य भरा हुआ था।

"अद्वैताचार्य सुन रहे थे। सुनते-सुनते उनकी सुध जाती रही। उन्हें तंद्रा आ गयी। उस तंद्रा में वे बुदबुदाने लगे, 'धन्य ! धन्य ! भगवान ! भगवान !'

"थोड़ी ही देर में उनकी सुध लौट आयी। उन्होंने आंखें खोलीं। फिर प्रसन्नता से बोले, 'शाबास ! बेटा, शाबास ! बस कर अब।'

"निमाई उठा। उन्हें और पिता को नमस्कार करके उछलता-कूदता खेलने के लिए बाहर भाग गया।

"पंडित ने संकोच में भरकर नम्रता से कहा, 'आचार्य देव, बालक की स्मरण-शक्ति अच्छी है। एक बार उसके कानों में जो बात पड़ती है, कंठस्थ हो जाती है। वाणी भी स्पष्ट है।'

" 'जगन्नाथ पंडित, लड़का असाधारण बुद्धि का है। अलौकिक चरित्र का है।'

"कहकर अद्वैताचार्य चल दिये। पंडित वहीं बैठे किसी गहन विचार में डूब गए।

"मैंने पूछा, 'क्या सोच रहे हैं ? अभी आचार्य देव ने पुत्र की प्रशंसा की,

इस विषय में ?'

" 'हां। इस प्रशंसा ने मेरे मन में नई चिंता उत्पन्न कर दी है।'

" 'चिंता ? कौन-सी चिंता ?'

" 'देवी, अब ऐसा लगता है कि विश्वरूप को यदि इतना अध्ययन न करने देता तो आज उसे हम नहीं खोते। रात-दिन वह ग्रंथ पढ़ता रहता था। गहन विचारों में रात-दिन डूबा रहता था। इसीलिए उसे यह संसार तुच्छ लगने लगा। उसका अल्प अध्ययन होता तो...'

" 'आप स्वयं विद्वान पंडित हैं, यह क्या कह रहे हैं ?'

" 'शची, जो गार्हस्थ धर्म का यथोचित पालन करता है, उसके लिए माया, मोह, आचार-विचार त्याज्य नहीं होते।'

" 'फिर आपका क्या विचार है ?'

" 'निमाई के अध्ययन की अभी से शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। व्रत-बंध हो जाने पर उसका अध्ययन आरंभ होगा।'

"मैं कुछ नहीं बोली। बोलना निरर्थक ही होता।

"दूसरे दिन सुबह अध्ययन के लिए निमाई बरामदे में आसन बिछाने लगा तो उसके पिता ने कहा, 'निमाई, आज से तेरा अध्ययन बंद।'

"छोटा बालक एकदम अवाक् ! उसने घबराकर कहा, 'पिताजी, अध्ययन में मुझसे कोई भूल हो गयी है क्या ? कल आचार्य देव के सामने मैंने जो पाठ सुनाया, क्या वह शुद्ध नहीं था ?'

" 'नहीं बेटा ! तेरी वाणी मानवी वाणी नहीं, देव वाणी है। पर मेरी इच्छा यह है कि व्रतबंध होने तक तेरा अध्ययन बंद रखूं। व्रतबंध के पश्चात विधिवत तुझे पाठशाला में भेजूंगा।'

"उनके स्वर में वेदना थी। कठोर निश्चय भी था।

"निमाई के अत्यंत सलोने और हंसते हुए चेहरे पर एक क्षण के लिए निराशा की छाया झलक उठी। पर तुरंत ही उसने कहा, 'पिताजी, आपकी जैसी आज्ञा होगी, मैं वैसा ही करूंगा।'

"मैं भीतर से सब सुन रही थी। उसके पिता मोहवश होकर अपनी इच्छा के विरुद्ध दुःखी मन से ही पुत्र का अध्ययन बंद कर रहे थे, यह मैं समझ रही थी।

"उस दिन से निमाई का अध्ययन बंद हो गया और वह शरारतें करने को दिन भर के लिए स्वतंत्र हो गया। उसकी चंचलवृत्ति बढ़ गयी। उसकी विद्रोही वृत्ति उमड़ पड़ी। दिन भर उसकी शरारतों की शिकायतें सुनते-सुनते मैं परेशान हो जाती।

"अध्ययन बंद हो जाने पर भी उसका पाठ कंठस्थ कर लेने का काम रुका नहीं। सुबह-शाम चलता ही रहता। गंगा किनारे उसके कानों में जो स्तोत्र आदि पड़तें, वे सब उसे तुरंत कंठस्थ हो जाते।

"घर आता तो वह कहता, 'मां, मेरा व्रतबंध कर दो न ?'

" 'क्यों रे, इतनी जल्दी क्या है ?'

" 'व्रतबंध हो जाने पर ही पिताजी मुझे पाठशाला में भेजेंगे न ?'

"पंडितजी ने बड़ी धूमधाम से उसका व्रतबंध-संस्कार किया और गंगानगरी के पंडित गंगादासजी की पाठशाला में उसे अध्ययन के लिए भेज दिया। व्याकरण-शास्त्र के लिए यह पाठशाला दूर-दूर तक विख्यात थी।

"निमाई का अध्ययन पुनः आरंभ हो गया।

"देखते-देखते दो वर्ष बीत गए। सब काम बड़े सुचारु रूप से चल रहे थे। दु:ख के बादल हट गए थे। कोई चिंता नहीं रही थी। निमाई का पाठशाला में व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन चल रहा था। पंडित उसे घर में न्याय-शास्त्र पढ़ाते थे। पुत्र की छानबीन करने की वृत्ति, उसकी कुशाग्र बुद्धि और वाद-विवाद में विलक्षण गति देखकर पंडित को बड़ा आनंद आता। पिता-पुत्र के वाद-विवाद से वह छोटा-सा घर निनादित हो उठता। सुख बरसता रहता।

"परंतु किसी-किसी के भाग्य में सुख कमल-पत्र पर गिरने वाले पानी की भांति होता है। एक क्षण के लिए ही टिककर फिर ढरक जाता है।

"निमाई बारह वर्ष का हुआ और एक दिन भगवान ने मेरा सौभाग्य छीन लिया।

"पंडित को ज्वर आया। वैद्यों ने औषधियां दीं। उन्होंने अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी। पर ज्वर हटा नहीं और एक दिन सूर्योदय के समय मेरा सौभाग्य-सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। निमाई पर से पिता की

छत्रछाया हट गई।

"पिता के पश्चात निमाई का विद्या-व्यसन और बढ़ गया। व्याकरण-शास्त्र में वह पारंगत हो गया। न्याय-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र आदि अनेक शास्त्रों में उसने प्रवीणता प्राप्त कर ली।

"सोलहवें वर्ष में उसने अपनी पढ़ाई पूरी करके पाठशाला आरंभ कर दी।

"हमारे इस छोटे से घर में पाठशाला चलाने के लिए स्थान कहां था? परंतु जमींदार संजय महोदय निमाई के बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने अपने महल के विशाल चंडी मंडप में पाठशाला शुरू करने का आग्रह किया और हर प्रकार की उसे सहायता दी।

"केवल सोलह वर्ष की अवस्था में अध्यापक हो जाने के कारण निमाई गांव में बड़े कौतूहल का विषय हो गया।

"उसके अध्यापन-कौशल की ख्याति देखते-देखते सर्वत्र फैलने लगी।

"विवाह के लिए संबंध आने लगे। ऐसे उसकी उम्र अभी छोटी ही,थी, परंतु पंडित वल्लभाचार्य ने अपनी कन्या के लिए आग्रह किया। लक्ष्मी हमारे निमाई के लिए सब प्रकार से योग्य थी। निमाई का घर बसाने और बहू का मुख देखने के लिए मैं भी अधीर हो उठी थी।

"उसका विवाह हो गया। लक्ष्मी घर में आ गयी।

"परंतु दुर्भाग्य! निमाई का संसार आरंभ हो ही रहा था कि पितृगृह गयी हुई लक्ष्मी वहां बीमार पड़ गयी। उसे विषम ज्वर ने घेर लिया। उसका वहां उपचार होने लगा। पर उपचार के दौरान ही मृत्यु उसे ले गयी।

"उस समय निमाई यहां नहीं था। अपने शिष्यों को लेकर वह पूर्व बंगाल की यात्रा पर गया था। राढ़ देश के विद्यार्थियों ने बड़े आग्रह से उसे अपने देश में बुलाया था।

"लक्ष्मी के पग घर में पूरी तरह से अंकित भी नहीं हो पाये थे कि घर पुनः सूना हो गया। जैसे स्वप्न में यह विवाह हुआ हो।

"पर अब निमाई बड़ा हो गया है। उसका मन अब घर में उलझा देना चाहिए। गृहस्थी का दायित्व उसके कंधे पर रख देना चाहिए।"

○

"निमाई पंडित हैं क्या, शची मां ?"

बाहर कोई पुकार रहा था। उस पुकार से शची मां की विचारधारा टूट गयी। वे उठकर बाहर बरामदे में आईं।

हरप्रसाद मिश्र आंगन में खड़े थे। शची मां ने कहा, "आओ मिश्रजी, बहुत दिनों बाद इधर आये !"

"माताजी, मुझे मालूम हुआ कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं, इसी लिए चला आया।"

"दो दिन ठंड देकर थोड़ा बुखार आ गया था। चलता ही रहता है यह सब। अब ठीक हूं। उम्र भी हो रही है।"

शची मां ने बरामदे में आसन बिछा दिया। हरिप्रसाद उस पर बैठ गए। उन्होंने आसपास दृष्टि घुमाकर कहा, "माताजी, घर का सारा काम-काज देखने और गृहस्थी का भार उठाने की आपकी यह उम्र नहीं है। आप अब बहू घर में लाइए।"

"मैं उसी प्रयत्न में हूं। मिश्रजी, आप विवाह जमाने का व्यवसाय करते हैं। निमाई के लिए कोई योग्य लड़की देखिए न ! उसका विवाह हो जाय तो मैं इस संसार-भार से मुक्त हो जाऊंगी और उसका मन घर में लगा रहेगा।"

"माताजी, सनातन मिश्र की कन्या देखी है आपने ? देखने में अत्यंत सुंदर है। कुलवती है। बड़ी शालीन है, विचारशील है। निमाई पंडित के लिए वही कन्या योग्य है। लक्ष्मीनारायण जैसा जोड़ा रहेगा।"

हरिप्रसाद मिश्र जैसे शची मां के मन की ही बात कह रहे थे। शची मां ने कहा, "मिश्रजी, आज ही गंगा किनारे उस लड़की को मैंने देखा और सच कहूं, वह लड़की एकदम मेरे मन में बस गयी। तुम कहते हो, उसी तरह वह लक्ष्मीनारायण के जोड़े जैसी है। पर पंडितजी, हमारे घर की दशा तुम जानते हो। सारा गांव जानता है। सुख और समृद्धि में पली हुई लड़की को कम-से-कम अन्न और वस्त्र की कमी तो न पड़नी चाहिए, और फिर राजपंडित अपनी कन्या इस निर्धन घर में देने के लिए कैसे तैयार होंगे ?"

"माताजी, साक्षात भगवान अपनी कन्या आपके घर में देंगे। राज-

पंडित ज्ञानी हैं। दूसरों के ज्ञान और गुणों की कद्र करनेवाले हैं। आपका विचार यदि उन्हें मालूम हो जाए तो वे सहर्ष उसे स्वीकार कर लेंगे।"

"तो अब यह काम तुम ही करो।"

"मैं आज ही सनातन मिश्र के घर जाकर यह बात उनके कानों में डाल देता हूं।"

४

हरिप्रसाद मिश्र शची मां के घर से जो निकले तो सीधे सनातन मिश्र के घर आ पहुंचे।

राजपंडित के घर हमेशा अन्य गांवों के और पुरी-रामेश्वर जैसे दूर देशों के पंडितों का आना-जाना रहता था। उनकी हवेली के सामने एक विशाल चंडी मंडप था। उसमें तीनों काल, कभी भी जाइए, पंडितों की सभा भरी रहती थी।

सनातन मिश्र चंडी मंडप में आए, उस समय न्याय-शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ विद्वान पंडित रघुनाथ वहां बैठे हुए थे। अपना अध्ययन समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्र की पाठशाला आरंभ की थी। उन्होंने न्यायशास्त्र पर 'दीधिति' नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा था, जिसकी सर्वत्र खूब ख्याति हुई थी। भावानंद नाम के उनके एक सहकारी भी वहां बैठे हुए थे। राजपंडित के पास परगांव के कोई और दो पंडित विराजमान थे। उन पंडितों से तनिक हटकर आठ-नौ वर्ष का एक चंचल लड़का बैठा हुआ था। नवद्वीप की पाठशाला की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। इस कारण पराये गांव के अनेक पंडित अपने लड़कों को यहां की पाठशाला में भरती कराने के लिए हमेशा आते रहते थे। जो राजपंडित के परिचित होते थे, वे उन्हीं के घर ठहरते थे।

हरिप्रसाद मिश्र को देखते ही राजपंडित ने हंसकर कहा, "आइए, आइए मिश्रजी, आज किस काम पर निकल पड़े हैं? किसका विवाह

जमाने के प्रयत्न में हैं, घटकजी ? आइए। विराजिए।"

अपने स्थान पर बैठकर हरिप्रसाद मिश्र ने हंसकर कहा, "छिः। छिः। राजपंडितजी, हम क्या विवाह जमायेंगे ? विवाह की जोड़ियां तो भगवान पहले ही जोड़कर रख देता है। हम घटक लोग सिर्फ संदेशवाहक का काम करते हैं।"

राजपंडित ने हंसकर कहा, "अच्छा तो आज कौन-सा संदेश कहां ले जा रहे हैं ?"

"कहीं नहीं। स्नान करने के बाद घाट से निकला और इस तरफ से घर जा रहा था। बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं हुई थी। मन में आया कि आपसे मिल लूं, इसलिए चला आया। आप अपना काम चलने दीजिए।"

राजपंडित ने खंडित कथन का सूत्र पकड़कर कहा, "पंडित रघुनाथ-जी, ये हैं काशीनाथ पंडित। मेरे दूर के संबंधी। चटगांव में रहते हैं। अपने इस लड़के को पाठशाला में भरती कराने आए हैं। लड़का बड़ा बुद्धिमान है। न्यायशास्त्र में पारंगत होने की उसकी महत्वाकांक्षा है। आप अपनी पाठशाला में इसे भरती कर लीजिए।"

रघुनाथ पंडित तनिक हंस दिये, पर दूसरे ही क्षण गंभीर होकर बोले, "आज हमारे नवद्वीप में पंडित निमाई-जैसा सर्वविद्याविशारद पंडित दूसरा नहीं। व्याकरण, अलंकार, ज्योतिष और न्याय सभी शास्त्रों में वे पारंगत हैं। इस बालक को उन्हीं की पाठशाला में भरती करवाना उपयुक्त है।"

राजपंडित तनिक स्तंभित हो गए; क्योंकि पंडित रघुनाथ बहुधा किसी को श्रेष्ठ नहीं कहते थे। उन्हें अपनी तर्क-शक्ति और बुद्धिमत्ता पर अभिमान था। इस नवद्वीप में न्यायशास्त्र में मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूं, ऐसी उनकी धारणा थी। बोले, "पंडित रघुनाथजी, निमाई पंडित की विद्वत्ता सर्वमान्य है। परंतु न्यायशास्त्र में आपकी जो श्रेष्ठता है, उसे निमाई पंडित भी मानते हैं। आपके 'दीधिति' ग्रंथ की वे मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।"

"राजपंडितजी, 'दीधिति' ग्रंथ ने निस्संदेह एक महाग्रंथ के रूप में

संसार में ख्याति प्राप्त की है। पर इसका सारा श्रेय पंडित निमाई को ही है।"

वे एक क्षण के लिए रुके। फिर उन्होंने कहा, "राजपंडितजी, झूठी कीर्त्ति की अभिलाषा और अहंकार के कारण आजतक जो रहस्य मैंने नहीं खोला, वह आज यहां खोल रहा हूं। मनुष्य की कीर्त्ति की अपेक्षा उसकी अच्छे-बुरे को जानने की शक्ति श्रेष्ठ है। मनुष्य का अहंकार क्षण-भंगुर होता है। कीर्त्ति की अभिलाषा और अहंकार, ये अज्ञान के ही लक्षण हैं।"

हमेशा दर्प-भरी वाणी बोलने वाले न्यायशास्त्र-धुरंधर को इस तरह तत्वज्ञान और पश्चात्तापभरी बोली बोलते देख सभी चकित रह गए।

राजपंडित ने उत्सुकताभरे स्वर से पूछा, "रघुनाथ पंडित, कौन-सा रहस्य है ? क्या बात है ?"

"बताता हूं ? आज सबकुछ बताये बिना मेरे ही हृदय को न्याय नहीं मिलेगा। पांच वर्ष पहले की बात है। पंडित वासुदेव सार्वभौम की पाठशाला में मैं न्यायशास्त्र का अध्ययन कर रहा था, यह आप जानते ही हैं, और उसी पाठशाला में पाठ सुनने के लिए निमाई आकर बैठ जाता था। हम सब विद्यार्थियों को लगता कि निमाई जैसे चंचल नित्य गंगा में डुबकियां लगाने और सदा खेलने में व्यस्त वाक्पटु व्याकरण के विद्यार्थी को न्याय जैसा गंभीर विषय किस तरह समझ में आएगा ? पर उसकी वाक्पटुता, असाधारण बुद्धि, अलौकिक रूप, प्रसन्न हास्य, मुक्त विनोदी स्वभाव आदि के कारण कोई भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रहता। थोड़े ही दिनों में हम दोनों अत्यंत प्रिय मित्र हो गए। अनेक बार वह मेरे कमरे में आता। न्यायशास्त्र पर हमारी चर्चा चलती रहती। न्यायशास्त्र में उसकी गति देखकर मैं विस्मित हो जाता। साथ ही मुझे ईर्ष्या भी होती।

" इसी समय के लगभग मैंने 'दीधिति' ग्रंथ लिखना आरंभ कर दिया था, परंतु निमाई से इस विषय में मैंने एक शब्द भी कभी नहीं कहा।

" एक दिन सार्वभौम गुरुजी ने सब विद्यार्थियों को एक समस्यापूर्ण श्लोक दिया। उस दिन पाठशाला में निमाई आया नहीं था। स्पष्टतः उस

श्लोक के वारे में वह कुछ भी नहीं जानता था। उस श्लोक का अर्थ, उसका स्पष्टीकरण मुझसे ठीक-ठीक हो नहीं पा रहा था। सोचते-सोचते घंटों वीत गए। अन्त में तीसरे पहर समस्या हल हो गयी। भूख से प्राण व्याकुल हो गए थे। मैंने चूल्हे में लकड़ियां डालीं और चावल की पतीली चढ़ाई।

"इसी समय निमाई आ पहुंचा। वोला, 'अरे, रघुनाथ, अब इस समय भोजन! क्या घाट पर जाकर समाधि लगाए वैठे थे। और आज पाठशाला में नहीं आए?'

"मैंने उससे सबकुछ कह दिया। वह वोला, 'वाह, तुम जैसे पंडित भी जिसका शीघ्र स्पष्टीकरण न कर सके, ऐसा वह कौन-सा श्लोक है? मेरी समझ में नहीं आयेगा, पर कम-से-कम सुन तो लूं।'

"मैंने श्लोक वताया। थोड़ी देर उसने सोचा और कहा, 'इसमें कठिन क्या है? इस श्लोक का स्पष्टीकरण विलकुल सरल है।' और उसने श्लोक का स्पष्टीकरण कर दिया। सूत की गुत्थी को जैसे कोई हल्के हाथ से एक-एक गांठ खोलकर सुलझा दे, उसी तरह उसने उस कठिन श्लोक का स्पष्टीकरण हंसते-हंसते कर दिया। केवल दस मिनट में। मैं आश्चर्य-चकित हो गया।

"उसने कुछ अद्वितीय कार्य किया है, इस ओर उसका कोई ध्यान ही नहीं था। तुरंत वह उठा और वोला, 'रघुनाथ पंडित, अव आराम से भोजन करो। शाम को घाट पर मिलेंगे।'

"मैंने चावल की पतीली उतारी। भोजन करने वैठा। पर मेरा मन उदास हो गया था।

"शाम को घाट पर उससे भेंट हुई। चौथे पहर का प्रसंग वह भूल गया था। पर मैं कैसे भूलता?

"वातचीत के दौरान मैंने कहा, 'निमाई, न्यायशास्त्र पर तुम एक ग्रंथ लिख रहे हो, ऐसा सुना है।'

"'छिः। ग्रंथ काहे का? और न्यायशास्त्र जैसे जटिल विषय पर ग्रंथ लिखने की मेरा क्षमता कहां! यह काम तुम जैसे न्यायप्रवीण पंडित का ही है।' उसके कहने में तिल मात्र भी उपहास नहीं था। मन से उसने मेरी

प्रशंसा ही की थी।

"मैंने कहा, पर न्याय पर कुछ-न-कुछ तो लिख रहे हो न? यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो उसे पढ़ने की मुझे बड़ी इच्छा है।'

"उसने खुले दिल से कहा, 'आपत्ति तनिक भी नहीं है, उलटे तुम जैसा विद्वान ऐसी इच्छा प्रदर्शित करता है तो इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूं। कल पाठशाला की छुट्टी होने के बाद हम घाट पर चलेंगे और नौका विहार करते-करते मैं तुम्हें अपनी टिप्पणी पढ़कर सुनाऊंगा।'

"दूसरे दिन हम दोनों नौका से निकले। वह अपने टिप्पणी क्या खासा मोटा हस्तलिखित ग्रंथ लाया था। वह पृष्ठ के बाद पृष्ठ पढ़ता गया। मेरा मन निराशा से पस्त हो गया। न्यायशास्त्र पर अद्वितीय ग्रंथ लिखने का मेरा अभिमान चूर हो गया। अपनी महत्त्वाकांक्षा पर पानी फिरते देख मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। निमाई पढ़ने में निमग्न था।

"पढ़ते-पढ़ते उसने कुछ पूछने के लिए मेरी ओर देखा तो घबराकर कहा, 'रघुनाथ, यह क्या? तुम रो रहे हो? क्या हुआ?'

"मैंने कहा, 'मित्र, मेरे द्वारा आजतक छिपाकर रखी गयीं अन्तस्थ भावनाओं का यह उद्रेक है। अब और असत्य बोलने का पाप मैं नहीं करूंगा। निमाई, मैं भी न्यायशास्त्र पर एक ग्रंथ लिख रहा हूं। समाप्ति पर आ रहा है। मेरी यह अभिलाषा थी कि अर्वाचीन न्याय-ग्रंथों में मेरा यह ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ माना जाय, परंतु तुम्हारी इन टिप्पणियों को सुनकर मेरी चिरवांछित आशा नष्ट हो गयी। अपनी असह्य मनोवेदना मैं छिपा नहीं पाया, मित्र।'

"उसने जोर से हंसकर विनोद-भाव से कहा, 'भैया, इतनी तुच्छ बात में इतनी मनोवेदना और इतनी व्यथा क्यों? मैं तो केवल मनोरंजन के लिए ये टिप्पणी लिख रहा था। मित्र, तुम शान्त हो जाओ। अनजाने ही क्यों न हो, तुम्हें मैंने दुःख दिया, इसका मुझे बड़ा खेद है। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं। फिर इन टिप्पणियों की क्या बिसात?' बोलते-बोलते उसने वह हस्तलिखित ग्रंथ उठाया और गंगा के प्रवाह में छोड़ दिया।

"मैं अवाक् देखता रहा। गंगा की लहरों पर नाचनेवाले पन्नों की

ओर देखता हुआ निमाई पंडित प्रसन्न चेहरे से हंस रहा था।

"मैंने उसे आवेग से बांहों में कसकर कहा, "भाई, तुम अलौकिक पुरुष हो। कीर्ति को तृणवत् मानना यह महापुरुष का लक्षण है !"

"वह तनिक हंसा और बोला, "मैं इस पृथ्वी तल पर ग्रंथ लिखने के लिए नहीं आया हूं। मेरा कार्य अलग है। मित्र, तुम्हारा ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ माना जायेगा, इसके लिए तुम निश्चिंत रहो।'

"राजपंडितजी, मेरे सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ की यह सत्य कथा है। और इसी लिए मैं कहता हूं कि इस लड़के को निमाई पंडित की पाठशाला में भर्ती कराइए। चलिए, काशीनाथ पंडित मेरे साथ। मैं आपकी उनसे भेंट करवा देता हूं।"

पंडित लोगों के चले जाने पर राजपंडित ने कहा, "मिश्रजी, हमारी कन्या के लिए कोई योग्य वर हो तो बताइए।"

मिश्र ने हंसकर कहा, "राजपंडितजी, आपकी कन्या के लिए निमाई पंडित के सिवा दूसरा योग्य वर तीनों लोकों में भी मिलना कठिन है।"

"मिश्रजी, मुझे भी यही लगता है। पर शची मां यह संबंध पसंद करेंगी क्या ?"

"शची मां को तो वह पसंद भी आ गयी है। उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।"

राजपंडित ने हर्ष से कहा, "सच कहते हो ? फिर तो मेरी मनोकामना सफल हो गयी। अब मैं निश्चिंत हुआ।"

○

विष्णुप्रिया का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विष्णु-लक्ष्मी के समान गौरांग-विष्णुप्रिया की जोड़ी देखकर एकत्र हुए सब लोगों की आंखों की भूख मिट गई। आग्रह करके परोसे गए पंच पकवानों से सबकी रसना तृप्त हो गयी। तीन दिन विवाह-समारोह चलता रहा। सनातन मिश्र ने दामाद को बहुमूल्य वस्त्राभूषण भेंट किये। बुद्धिमंत और मुकुंद संजय ने मुक्त हाथों से द्रव्य खर्च करके वर पक्ष की ऐसी शान रक्खी थी कि हर कोई कहता था, हमारे नवद्वीप में ऐसा विवाह-समारोह पहले कभी किसी ने नहीं देखा, पकवानों की इतनी भरमार पहले कभी नहीं

हुई। अरे, ऐसा गांव-भोज पहले किसी ने नहीं दिया। गांव के ही नहीं, पंचक्रोशी के लोग भी पंगत में स्वच्छंदता से बैठकर तृप्त होकर गए।

कन्या के विवाह के निमित्त सनातन मिश्र ने विद्वान पंडितों की एक बड़ी सभा बुलाई और सबका पूरी तरह पूजन करके योग्यतानुसार उन्हें विपुल द्रव्य की बिदाइगी दी।

तीसरे दिन मूल्यवान वस्त्राभूषणों से लदी और सौभाग्य-चिह्नों से सजी नववधू विष्णुप्रिया सुसज्जित पालकी में बैठकर वर के घर आई।

वर-मण्डप सजाया गया था। उसकी शोभा देखते ही बनती थी। उस मंडप में गृह-प्रवेश के पूर्व की धार्मिक विधियां सम्पन्न हुईं। मंडप में वर-पक्ष के लोगों की भीड़ लग गयी। नववधू के साथ उसकी सखियां भी थीं। उसके अत्यन्त निकट थीं शुभा और पद्मा।

गृह-प्रवेश का मंगल समय आ पहुंचा। विवाह-विधियों में स्त्री के जीवन का यह परम मंगल क्षण होता है। स्त्री के जीवन में आमूल परिवर्तन कर देनेवाली यह एक संक्रमण रेखा होती है।

पति सहित उसके हाथ के सहारे देहली लांघने के लिए विष्णुप्रिया ने पहला पग उठाया। जाने कैसे, देहली से उसे ठोकर लग गयी। असह्य वेदना से उसे चक्कर-सा आ गया। उसने अपने होंठ कसकर बंद कर लिये कि कहीं पीड़ा से उठती कराह बाहर न आ जाय। घूंघट से ढका हुआ अपना चेहरा उसने और भी नीचे को मोड़ लिया। किसी अशुभ आशंका से उसका मन कांप उठा। गृह-प्रवेश के पहले ही पग पर यह चोट! यह असगुन!

शुभा से यह छिपा न रहा। उसने धीरे-से विनोद में कहा, "तू अपने को इतने में ही भूल गयी क्या?" फिर तुरंत ही हंसकर वह निमाई से बोली, "पंडितजी, अपनी मनचाही वस्तु आप ले आए हैं। अब इस अनमोल वस्तु को संभालकर रखिए।"

शुभा की यह ठिठोली कानों में पड़ने से पहले ही निमाई को अपन प्रिया के हाथ की थरथराहट अनुभव हो गई थी। उसका हाथ वह अपने हाथ में लिये था न! उसका ध्यान विष्णुप्रिया के पग की ओर गया। रक्त रंगित अंगूठे पर दृष्टि पड़ी। एक क्षण में उसने अपने अंगूठे से उसी

अंगूठे को जोर-से दबा दिया।

उसी क्षण रक्त का बहना रुक गया। वेदना शान्त हो गयी।

दूसरे क्षण दबानेवाले अंगूठे से जैसे कोई विद्युत लहरें अपने अंगूठे में प्रवेश कर अंग-प्रत्यंग में फैल रही हैं, ऐसा विष्णुप्रिया को स्पष्ट जान पड़ा। सूर्य के प्रखर प्रकाश से जिस प्रकार आंखें चौंधिया जाती हैं, उसी प्रकार उसके शरीर का कण-कण चौंधिया गया। उसे प्रतीत हुआ कि एक प्रकार का दिव्य तेज उसकी अन्तर-आत्मा में फैलता जा रहा है। उसका शरीर पंख की भांति हल्का हो गया है।

लेकिन...लेकिन...बात की बात में पंख कहां उड़ गया। शरीर नहीं रहा—शरीर के साथ ही स्थल और काल भी अदृश्य हो गया। यह, यह क्या ?...

इसी समय उसके कानों में शब्द पड़े, "प्रिये सावधान हो जाओ, आगे चलो।"

वह सावधान हो गई। मेरा शरीर है यह, उसे ऐसी प्रतीति हुई। स्थल और काल का बोध हुआ।

यह सब एक क्षण के भीतर हो गया। आसपास लोगों की भीड़ लगी थी। गृह-प्रवेश करनेवाली जोड़ी पर सबकी आंखें टिकी हुई थीं। पर क्या हुआ, यह किसी के भी ध्यान में नहीं आया। लगता था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

निमाई के बलिष्ठ हाथ के सहारे विष्णुप्रिया ने गृह-प्रवेश किया। वह मन में बुदबुदा रही थी, 'भगवान, यह सहारा मुझे जन्म-जन्मान्तर तक मिलता रहे। मुझसे कभी अलग न हो।'

५

किन्हीं प्रकाश-किरणों से आंखें चौंधिया जाने के कारण विष्णुप्रिया गहरी नींद से एकदम जाग उठी। सामने की छोटी दीवार के झरोखे से क्षितिज पर चढ़ रहे सूर्य की किरणें भीतर आकर सीधी उसके मुंह पर पड

रही थीं। दीवार का वह झरोखा, काफी नीचा कवेलुओं का छप्पर ! मेरे मायके की हवेली का तो यह कमरा है नहीं। फिर...फिर मैं हूं कहां? उसकी चकराई हुई भौंचक नजर चारों ओर घूम गयी। मिट्टी की छाप, अल्पना से चित्रित दीवारें, सामने आले में तरतीब से रखे हुए ग्रंथ। सामने की खूंटी पर पीतांबर, पीला शाल ! क्या है यह सब ? उसने झट-से गर्दन घुमाई। उसके समीप निमाई गहरी नींद में सोया हुआ था। वह लजाकर झट पलंग से उठकर बैठ गयी।

गत रात का गृह-प्रवेश, उसके पश्चात हुई हवनादि धार्मिक विधियां, भोजन, तत्पश्चात शयन-गृह में प्रवेश...उसे अब क्रम-क्रम से सब याद आया।

बाहर उजाला हो गया था। दीवार के परे पिछवाड़े के बरामदे में बंधी हुई बछिया का रंभाना उसके कानों में पड़ा। रसोईघर से चूल्हा फूंकने और बर्तनों की हल्की-सी आवाजें उसे सुनाई पड़ रही थीं। शची मां गंगा पर जाकर स्नान और देव-दर्शन पूरा करके वापस भी आ गयी थीं और काम में लग गयी थीं। फिर भी मेरी नींद नहीं खुली ? छिः ! छिः ! इतनी देर तक ऐसी गहरी नींद मुझे लगी ही कैसे ? मायके में मुझे देर से उठने की आदत थी। पर अब इस घर की मैं कुलवधू हो गयी हूं। इस घर की सारी रीति मुझे अपनानी होगी। कुलवधू को शोभा दे, ऐसा बर्ताव मुझे यहां करना चाहिए। वह लज्जित हो गयी।

एक क्षण के लिए बंद दरवाजे के पास वह उसी तरह खड़ी रही। फिर आहिस्ते से दरवाजा खोलकर बाहर आई। गर्दन झुकाये रसोईघर से होती हुई पिछवाड़े के स्नान-गृह में जाने लगी।

शची मां चूल्हे के पास बैठी दूध गरम कर रहीं थीं।

बहू को उठकर आते देखकर वे मन-ही-मन प्रसन्न हो गयीं। उनके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी। उन्होंने स्नेहसिक्त स्वर में कहा, "छोटी बहू, जा, हाथ-मुंह धोकर आ। दूध गरम करने को रख दिया है। तू उसे ले लेना। मैं गंगा-स्नान करके आती हूं। तुझे घर का सब दिखा दूं और फिर जाऊं, इसलिए रुकी थी। देख, गोशाला में काशीबाई है। तुझे कुछ जरूरत हो तो उससे कह देना। निमाई के लिए धारोष्ण दूध इस लोटे में ढांककर

रख दिया है। वह जल्दी-जल्दी में बिना पिये ही चल देता है, इसका ध्यान रखना।"

विष्णुप्रिया ने लज्जित होकर धीरे-से कहा, "मुझे उठने में देर हो गयी। मैं अब सब देख लूंगी।"

और वह चुपचाप जल्दी-जल्दी पिछवाड़े के बरामदे में चल दी।

शची मां का रोम-रोम पुलकित हो उठा। नई आशा की प्रकाश-किरणों ने उनके मन में प्रवेश किया। वे कलसी और वस्त्र लेकर चल पड़ीं, इसी समय विष्णुप्रिया पिछवाड़े से होकर आ गयी। उनके चरण छूकर उसने उनके हाथ से कलसी ले ली और उन्हें आंगन तक पहुंचाने गयी। बहू की ओर एक बार प्रसन्नता से देखकर शची मां गंगा-स्नान के लिए चली गईं।

विष्णुप्रिया एक क्षण के लिए वहीं खड़ी रही। उसे उठने में हुई देर, सास का आशा से चमकने वाला प्रसन्न चेहरा, उनके स्वर की स्निग्धता, इन सबका कारण विष्णुप्रिया समझ गयी। वह मन-ही-मन हंसी और आंगन की सीढ़ियां चढ़ बरामदे से होती हुई रसोईघर में चली गयी।

नववधू के शयन-गृह से देर से बाहर आने का कारण सभी छोटे-बड़े समझ लेते हैं। उसमें शची मां का मन आशा से खिल उठे और अपेक्षा से अधीर हो जाय तो यह स्वाभाविक ही था।

विष्णुप्रिया को रात के एकान्त का प्रसंग याद हो आया :

"पति के बाहुपाश में बद्ध होते ही मेरा सारा शरीर रोमांचित हो गया। सारे शरीर में जैसे बिजली की लहरें फैलने लगीं। शरीर का एक-एक रोआं थरथरा उठा। उनकी छाती पर टिका हुआ मस्तक कितना हल्का-फुल्का हो गया था।

"मेरे कानों के पास वे कुछ कह रहे थे। उनके 'प्रिये-प्रिये', 'विष्णुप्रिये' —इन अमृततुल्य शब्दों से मेरी सुध जाती रही। उनके साथ आकाश में मैं कहीं ऊंची-ऊंची जा रही थी। कहां जा रही थी, कौन जाने ! सफेद स्वच्छ बादलों के बीच से, या बादलों के ऊपर से जा रही थी, यह निश्चय है, क्योंकि उन्होंने कहा था, 'प्रिये, नीचे देखा तुमने ?'

"मैंने नीचे देखा। विशाल गंगासागर फैला हुआ दिखाई दे रहा था। मैं आगे-आगे जा रही थी। किसी दिव्य लोक में से गुजर रही थी। बीच

ही में कहीं बड़ी दूर से बांसुरी के स्वर सुनाई पड़ रहे थे।

"प्रवास समाप्त नहीं हो रहा था। मैंने कहा, 'हम कहां जा रहे हैं ?'

"वे मेरे कानों के पास हंसे। मोहनिद्रा लानेवाला वह मधुर हास्य था। बोले, 'प्रिये, विष्णुप्रिये, हमारा मूल स्थान तुम भूल गयीं क्या ? पहचानो न ? अरे, यह...यह अपना...'

"वे मेरे कानों में कुछ कह रहे थे और मेरे सारे अंग-प्रत्यंग सम्मोहित हो गए थे। बात-की-बात में सारी संवेदनाएं समाप्त हो गयीं और मुझे कब गहरी नींद आ गयी, इसका पता ही न चला। इतनी देर तक ऐसी गहरी नींद मुझे कभी नहीं आई थी। रात को जो हुआ, जो देखा, वह स्वप्न था क्या ? विष्णु के समान पतिदेव मुझे मिले। इसलिए उनके स्पर्श से अंत-र्मन का चैतन्य उमड़ उठा और मेरा होश जाता रहा। क्या हुआ, कैसे हुआ, कुछ पता न चला।"

पर अब जाग्रत अवस्था में उसका मन उदास हो गया।

"मेरी गहरी नींद देखकर उन्हें क्या लगा होगा ? मेरी उन्होंने क्या परख की होगी ? मिलन की पहली रात को मेरी यह अवस्था ! छिः ! छिः ! कितनी लज्जा की बात है। पर गृह-प्रवेश के समय अपने हाथ का सहारा देकर मुझे संभाल लेने वाले पति ने इस समय मुझे क्यों नहीं संभाला ? नींद से क्यों नहीं जगाया ?

"नहीं-नहीं, आज रात को मैं ऐसा नहीं होने दूंगी। आज रात को..."

○

"पंडिताचार्य, निमाई आचार्य, गौरांग पंडित..."

बाहर रास्ते पर पुकारें सुनाई पड़ीं कि विष्णुप्रिया की तंद्रा भंग हो गयी। वह उठकर रसोईघर के द्वार के पास आई।

निमाई अभी तक सोकर नहीं उठा था। पाठशाला का समय हो गया था। उसने दरवाजे की ओट से धीरे-से बाहर देखा। निमाई पंडित की उम्र के ही उसके दो शिष्य अपने गुरुजी को पुकार रहे थे। उनके पीछे गदा-धर पंडित और कोई एक नये ही प्रौढ़ वय के पंडितजी दिखाई दे रहे थे।

पति को उठाने के लिए उसके पैर शयन-गृह की ओर मुड़े, पर दूसरे ही क्षण वे वहीं ठिठक गए। बाहर की पुकारें रुकी नहीं थीं और उसके

पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। उसके मन में आया, क्रोधित होकर तो जानबूझकर वे नहीं सोये हुए हैं! मेरा अपराध अक्षम्य है। किसी भी पति को क्रोधित कर देने वाला है। पर..."

इसी समय निमाई बाहर आया। रसोईघर के द्वार में से उसने उसकी ओर अस्पष्ट-सा देखा। उस गोरे अनुपम रूपवान चेहरे पर क्रोध अथवा निराशा की तनिक भी झलक नहीं थी। नित्य का ही निर्मल हास्य चेहरे पर फैला हुआ था।

निमाई ने हंसकर कहा, "आइए, आइए, गदाधर पंडित! आज सुप्रभात को ही आपके दर्शन हुए।"

बोलते-बोलते वह भीतर गया। चटाई ले आया। इसी समय उसके दोनों शिष्यों ने उसके हाथ से चटाई लेकर बरामदे में बिछा दी।

"आचार्य, आप को देर हो गयी। इसलिए देखने इधर निकल पड़ा था। इसी समय गदाधर पंडित मिल गए।"

गदाधर पंडित ने कहा, "निमाई पंडित, कश्मीर के ये विल्हण पंडित आपसे मिलने के लिए यहां आए हैं।"

वह नवागत कश्मीरी प्रौढ़ पंडित निमाई की ओर टकटकी लगाकर एक क्षण देखता रहा। ऐसा आलौकिक रूप और बुद्धिमत्ता का ऐसा अनोखा तेज आजतक उसने नहीं देखा था। वह विस्मित हो गया और कश्मीर में अभी तक शास्त्रों का अध्ययन करने वाले अपने पुत्र की ही उम्र के निमाई के आगे नतमस्तक हो गया। उसने कहा, "निमाई पंडित, जब से हमारे आचार्य दिग्विजयजी, जो अपराजित माने जाते थे, यहां से पराभूत होकर गए, तब से इस नवद्वीप का नाम तीनों लोक में गूंज रहा है। मैं मथुरा, वृन्दावन, काशी, पुरी की यात्रा पर आया था। वहां से नवद्वीप आया हूं। आपके प्रत्यक्ष दर्शन की मेरी इच्छा आज फलीभूत हो गयी।"

निमाई तनिक हंसा। उसने कहा, "बैठिए। मैं अभी आया।"

बैठे-बैठे विल्हण पंडित घर का निरीक्षण करने लगे। गदाधर पंडित के मुंह से निमाई पंडित का कुल-वृत्तान्त सुनने लगे! मन-ही-मन विस्मित हो गये।

थोड़ी ही देर बाद भीतर से विष्णुप्रिया द्वारा भर कर दिये गए दूध

के गिलास और मिठाई लेकर निमाई बाहर आया।

दुग्धपान के दौरान निमाई ने नम्रतापूर्वक कहा, "विल्हण पंडित, आपके आचार्य की अलौकिक बुद्धिकुशलता देखकर हम सब आश्चर्यचकित हो गए थे। साक्षात सरस्वती उनकी जिह्वा पर विराजमान है। उनकी काव्य-प्रतिभा अद्भुत है। उस दिन हमारे विनम्र अनुरोध पर उन्होंने तुरंत श्लोकरचना आरंभ कर दी। वाह! वाह! भागीरथी के प्रवाह जैसी वेगवान और अखंड काव्यरचना। श्लोक के बाद श्लोक। कितनी अद्भुत काव्यप्रतिभा! ऐसा असाधारण कवि नवद्वीप ने पहले कभी नहीं देखा था।"

विल्हण पंडित ने कहा, "निमाई पंडित, हमारे दिग्विजयी आचार्य की काव्य-प्रतिभा अद्भुत और अजेय है, इसमें सन्देह नहीं। परंतु आपकी श्रुति अलौकिक है। वेग से बहनेवाले गंगा-प्रवाह के समान उनकी कुछ काव्य-पंक्तियां आपने अचूक पकड़कर उन्हें पुनः सुना दिया। इतना ही नहीं, वरन उन श्लोकों का अर्थ भी बता दिया। निमाई पंडित, यह श्रुति-शक्ति साधारण नहीं। हमारे आचार्य यहां से जाने के बाद बिलकुल बदल गये हैं। अब वे पंडितों की सभाओं में नहीं जाते, चर्चा-सत्रों में भाग नहीं लेते। वे कहते हैं, मैं ज्ञानी होते हुए भी आजतक अज्ञानी था। अनेक दिग्विजयों को प्राप्त करके भी पूर्ण पराभूत हो गया था। वह लौकिक विजय थी। पर आत्मा का पूर्ण पराभव था। गौरांग पंडित का शब्दामृत कानों में पड़ा और उसी क्षण मेरी आत्मा जाग उठी।"

निमाई ने सकुचाकर कहा, "चलिए पंडितजी, हम अब घाट पर चलें।" और अपने शिष्यों की ओर मुड़कर बोला, "गुणदर्शन, तुम पाठशाला में जाकर सब शिष्यों को घाट पर ले आओ। वहां किसी वृक्ष के नीचे बैठकर अध्ययन करेंगे। आज विल्हण पंडित आए हुए हैं। इनके ज्ञान का भी हम लाभ उठा लें। चलिए, गदाधर पंडित।"

निमाई के साथ सब बाहर निकले और चल पड़े।

६

रात को शयन-गृह में प्रवेश करते समय विष्णुप्रिया ने मन में पक्का निश्चय कर लिया था कि आज कल जैसा नहीं होने देगी।

"आ गयी, प्रिये ? आओ।"

शाम को भोजन के बाद निमाई अपने साथियों सहित घाट पर गया था और कुछ समय पहले ही घर लौटा था। पलंग पर दीवार से टिका बैठा हुआ था और दीपक के प्रकाश में कोई ग्रंथ पढ़ रहा था।

विष्णुप्रिया एक क्षण उसकी ओर देखती रही। कन्धे तक लहराने वाले अपने काले केशों को उसने चंदन का तेल लगाकर कंघी से अच्छी तरह संवार रक्खा था। दीपक के प्रकाश में वे बाल भौंरे की तरह चमक रहे थे। चंदन की मंद सुगंध पूरे कमरे में फैली हुई थी। तांबूल खाने के कारण उसके होंठों का मूलतः लाल रंग और अधिक गहरा हो गया था। उसकी बड़ी-बड़ी नटखट आंखें मस्ती से हंस रही थीं।

विष्णुप्रिया ने मन को सजग किया। "रे मन, सजग रह ! आज इनकी यह जादूगरी न चलने दे। मेरे मन के विचारों का इन्हें पता तो नहीं चल गया ? क्या इसीलिए आज यह ठाठ है। ठीक है। पर मन...ओरे मन..."

"प्रिये, वहीं क्यों खड़ी हो ? इधर आओ न।" विष्णुप्रिया उस जगह से हिली नहीं। सजग मन से उसने पूछा, "यह क्या है आज ?"

उसने हंसकर कहा, "मेरे कुछ शिष्य बड़े नटखट हैं। उन्होंने मुझे पकड़ा, मेरे सारे शरीर में चंदन का तेल मला और मुझे गंगा में डुबाकर खूब नहलाया। मेरे बालों में तेल लगाया। उनमें कंघी की। गले में नव-मल्लिका का खूब बड़ा हार पहनाया। मिठाई का भोग लगाया। मुंह में तांबूल ठूंस दिया। प्रिये, भक्तों का आग्रह तोड़ते नहीं बनता। आग्रह नहीं, उनका यह दुराग्रह है।"

विष्णुप्रिया अंतर से फूटती हंसी को दबाकर बोली, "दुराग्रह कहते हैं, इसलिए ठीक है, नहीं तो एक ही समय दो-दो साथियों को गंगा में फेंकते हुए मैंने नीचे के घाट से देखा है।"

उसने हंसकर कहा, "प्रिये, तुम्हारी दृष्टि बहुत एकाग्र दिखाई देती

है। अच्छा, इसे छोड़ो। पर अब यहां आकर बैठो न !"

"नहीं।" वह और कुछ नहीं कहना चाहती थी। पर अनजाने उसने कहा, "आप बड़े नटखट हैं।"

और अनजाने उसका एक पग आगे बढ़ गया। निमाई ने हंसकर कहा, "प्रिये, नटखट कृष्ण को कहते हैं और कृष्ण तुम वैष्णवों का देवता है। परम पूज्य देवता। सच है न ?"

वह कुछ न बोली।

निमाई ने कहा, "विष्णुप्रिये, तुमने गोकुल-वृंदावन देखा है—कृष्ण की रास-लीलाओं का स्थान ? उसकी मधुराभक्ति का केन्द्र तुमने देखा है ?"

वह वैष्णवों की सदा खिल्ली उड़ाता है, यह वह जानती थी। उसने धीरे से कहा, "हाँ, बचपन में देखा है। छः-सात वर्ष की थी उस समय।"

"वहां तुमने क्या-क्या देखा ? मैं तुम्हारे मुंह से सुनना चाहता हूं। बताओ।"

उसके स्वर में ठिठोली नहीं थी। मधुर आग्रह था।

"प्रिये, आओ, यहां बैठो और बताओ।"

वह धीरे से आगे बढ़ी। पलंग पर उससे दूर, पैताने पूरी सजगता से बैठ गयी। गोकुल-वृंदावन वह गयी थी, उस समय उसकी बाल-दृष्टि ने जितना देखा था, वह सब अब याद करके उसने तन्मयता से सुना दिया।

निमाई ने हंसकर कहा, "कृष्ण का वर्णन तो तुमने बहुत बढ़िया किया। पीतांबर पहने हुए हैं। गले की पुष्पमाला नाभि तक लहरा रही है। घने काले घुंघराले बालों पर मुकुट है, जिसमें मोरपंख खुसे हैं। पैरों में मोड़ डालकर यमुना तट पर खड़ा हुआ बंसी बजा रहा है।"

उसने बंसी होंठ से लगाने का अभिनय करके उंगलियों की हलचल की और सीटी फूंकी। त्योंही बंसी के स्वर प्रकट हो गए।

वह कृष्ण का वर्णन कर रहा था तब विष्णुप्रिया सकुचाई-सी गर्दन झुकाये बैठी हुई थी। परंतु बांसुरी के स्वर कानों में पड़ते ही चौंक पड़ी। गर्दन उठाकर उसने उसकी ओर देखा और देखती ही रही।

"ओह ! यह क्या देख रही हूं मैं। कदंब वृक्ष से टिककर बैठा हुआ कृष्ण वंसी वजा रहा है। हां, कृष्ण ही तो है। और पीछे यमुना के जल की लहरें हैं। यह क्या है ?···"

उसने आंखें कसकर वंद कर लीं। नहीं, नहीं, नहीं ! यह झूठ है। यह आभास है। इनका नजरबंदी का खेल है, केवल खेल, केवल आभास !

एक क्षण बाद डरते-डरते उसने आंखें खोलीं। निमाई वंसी पकड़ने का अभिनय करके सीटी बजा रहा था। वह झट-से उठी। उसके सामने गयी। उसका हाथ एक ओर हटाकर उसके होंठों पर अपना हाथ रखकर उसने कहा, "आप अपनी वंसी बंद कीजिए। सीटी वंद कीजिए।"

पत्नी का हाथ पकड़कर उसने उसे अपने नजदीक खींच लिया और बाहुपाश में बद्ध करके एक श्लोक सुनाया, जिसे वह अपने मायके में नित्य सुनती थी। सुनते-सुनते इस श्लोक को वह गुनगुनाया करती। उसी श्लोक को अव वैष्णव-विरोधी निमाई के मुंह से सुन आश्चर्यचकित हो गयी। उसके पति की आवाज अत्यंत मधुर है, ऐसी ख्याति उसने पहले से सुन रक्खी थी, परंतु उसका माधुर्य उसके रूप के बराबर ही अलौकिक है, उसकी बुद्धिमत्ता के बराबर ही असाधारण है, यह आज उसके ध्यान में आया। जिन्हें वह नित्य कहती है, गुनगुनाता है, उन श्लोकों के शब्द जैसे अमृत-कुंभ से निकले हैं और उन शब्दों से चूने वाला मधु-विंदु उसके कानों में टपक रहा है, ऐसा उसे लगा। उसका होश जाता रहा। पति के गले में बाहें डालकर वह बोली, "और एक बार कहिए।"

वह वैष्णवों की हंसी उड़ाता है, यह भी वह बिलकुल भूल गयी। जैसे वह परम वैष्णव ही है, ऐसा समझकर श्रीकृष्ण-चरित की अनेक बातें विष्णुप्रिया ने उससे कहीं। उन बातों को वह तन्मयता से सुन रहा था। उसकी कथा के सूत्र को समाप्त नहीं होने देता था। अंत में कथा समाप्त हो गयी और वह कब सो गयी, इसका उसे पता तक न चला।

सुबह उसकी नींद खुली। एक क्षण में स्मृति जाग उठी। अंत में कल रात को भी वही हुआ। इतनी सजग रहते हुए भी अंत में वह क्षण न पकड़ पायी। परसों रात को नींद आड़े आ गयी थी। कल रात को कृष्ण-भक्ति ने यमुना तट पर ही कील रक्खा।

फिर रोज ऐसा ही कुछ होने लगा। इतनी सजग रहते हुए भी मिलन का वह क्षण कब और कैसे खिसक जाता है, समझ नहीं पाती। निमाई का स्पर्श हुआ, उसके बाहुपाश में बद्ध हुई, उसके मधुर शब्द कानों में अमृत वर्षा करने लगे कि वह क्षण विस्मरण हो जाता है। उस क्षण का रूप ही बदल जाता है। सारी वृत्तियां अलग स्तर पर तैरने लगती हैं।

उसे इसका दुःख नहीं होता था। अपने दांपत्य जीवन में कोई कमी है, ऐसा भी नहीं लगता था। पति-प्रेम में वह खूब नहा रही थी। पर लौकिक दृष्टि से सब लोगों की उस पर निगाह थी। शची मां की आशाएं उस पर केंद्रित थीं। उसकी मां भी बीच-बीच में सूचक प्रश्न पूछा करती।

एक दिन उसकी माँ शची मां से मिलने और लड़की की कुशल-क्षेम पूछने के लिए मिश्र घर आईं। उनके साथ पड़ोस की निकट परिचय की दो-तीन प्रौढ़ाएं भी थीं।

शची मां ने नित्य की भांति उचित प्रकार से अपनी समधिन का और उनके साथ आई स्त्रियों का स्वागत किया। दूध और जलपान हुआ। फिर पारिवारिक बातें आरंभ हुईं।

शची मां स्वभाव से वैसे गंभीर, विचारशील और मितभाषी थीं; परंतु अब बातों के प्रवाह में उनके मन की इच्छा बाहर निकल पड़ी।

उन्होंने कहा, "आजकल मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो मेरे आंगन और बरामदे में छोटे-छोटे पैर उभरे हैं।"

गंगा मां ने कहा, "ये शुभ चिन्ह हैं, समझीं, शची मां?"

विष्णुप्रिया की मां ने कहा, " मेरे बहुत जल्दी लड़का हुआ था। मेरी दो बड़ी लड़कियों ने भी मेरा ही अनुसरण किया है।"

"तो फिर विष्णुप्रिया भी तुम्हारा ही अनुसरण करेगी।"

"शची मां की कोख भी बहुत जल्दी हरी हुई थी। दुर्भाग्य से बच्चे नहीं बचे। असमय चल दिये, अन्यथा शची मां की लड़कियां यहां पंडितों के घर जातीं और शची मां का घर पोते-पोतियों से भर जाता।"

"इसलिए अब हम यदि ससुराल और मायके दोनों की वंश-लताएं देखें तो शची मां को शीघ्र ही नाती के छोटे-छोटे पैर आंगन में उभरे हुए प्रत्यक्ष दिखाई देंगे।"

शची मां ने कहा, "तुम्हारी वाणी सच निकले, गंगा मां।"

विष्णुप्रिया भीतर से सब सुन रही थी। बरामदे और आंगन में उभरे हुए नन्हें-नन्हें पैर उसकी आंखों के सामने भी आ गए।

फिर रात को बातचीत के सिलसिले में मुख्य विषय पर आकर संकोच एक ओर हटाकर उसने निमाई से कहा, "मैं अपने लिए नहीं कहती। सच कहती हूं, अपने लिए मैं नहीं कहती। आप जैसे पतिदेव मुझे मिले, इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझती हूं। यह मेरे पूर्व जन्म का महान पुण्य है। आप जिस स्थिति में मुझे रखेंगे, उसमें मैं सुखी हूं, तृप्त हूं। परंतु..."

"परंतु क्या, प्रिये?"

"मांजी की ओर देखिए। उनका विचार कीजिए। आपके बड़े भाई यती होकर चले गए। आप मां की आज्ञा से पूरा विचार करके गृहस्थ बने। माताजी की इच्छा आप जानते हैं। आज दोपहर को मेरी मां माताजी से मिलने आई थी। माताजी कभी अपना मन खोलकर नहीं दिखातीं। कभी एक शब्द भी नहीं कहतीं। सब सहन कर लेती हैं। पर आज बोलते-बोलते उन्होंने कहा, 'मुझे आज़कल बरामदे में, आंगन में, जहां-तहां नन्हें-मुन्ने पांव उभरे हुए दिखाई देते हैं।'"

निमाई ने जोर-से हंसकर कहा, "प्रिये, माताजी के हृदय में अभी तक मेरी बालमूर्त्ति ही बसी हुई है। मेरे बचपन के उभरे हुए पांव अभी तक उनकी दृष्टि के सामने से हटे नहीं हैं।"

निमाई की हंसी की मधुरता और स्वर की कुशलता को कानों में न पड़ने देकर विष्णुप्रिया ने तनिक प्रबल स्वर में कहा, "मिश्र-घराने की वंश-लता सूख जायगी। वंशदीप बुझ जायगा। इसलिए माताजी दुःखी रहती हैं। उनका कुछ ख्याल कीजिए।"

निमाई कुछ देर उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखता रहा। फिर बोला, "देवी, नियत कार्य करने के लिए मानव जन्म लेता है। मानव-जाति की अपेक्षा मानव द्वारा प्रस्थापित किया गया धर्म उसके लिए कल्याणकारी होता है। इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण है। धर्म-लता को नहीं सूखने देना चाहिए। उसे टिकाये रखना चाहिए। आज यह धर्म-लता सूखती जा रही है। धर्म-दीप बुझने लगा है। हिंसा बढ़ रही है। अनाचार फैल रहा है।"

वह मानो अपने आपसे ही बोल रहा था। उसके स्वर की मधुरता विलुप्त हो गयी थी। शब्दों की कुशलता गल गयी थी। उसका नित्य का सुंदर कोमल चेहरा कुछ क्रुद्ध दिखाई पड़ रहा था।

उसे देखकर विष्णुप्रिया मन-ही-मन भयभीत हो गयी। उसने जो कहा, उसका अर्थ वह समझ नहीं पायी। परंतु उसकी बात पति को अच्छी नहीं लगी, इतना वह अवश्य जान गयी।

वह उसके निकट सरकी। उसके कंधे पर मस्तक रखकर उसने कहा, "प्रभो, शांत होइए।"

उसी क्षण उसका रूप बदल गया। वह नित्य का निमाई हो गया। पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने कहा, "आज अपने शिष्यों के साथ में खूब घूमा। श्री अद्वैताचार्य के आश्रम गया। चलते-चलते पैर दुःखने लगे हैं।"

पत्नी ने उसके पैरों की ओर देखा। गोरे, लाल, मृदु पैर!

उसने कहा, "तो अब आप विश्राम कीजिए। सो जाइए। मैं पैर दबाये देती हूं।"

वह पैर दबा रही थी कि पति को गहरी नींद आ गई। वह उसके निद्रित चेहरे की ओर देखती रही। कितना मोहक और कोमल था वह चेहरा! सारा गांव इन्हें 'गौरकृष्ण' कहता है। यह बिलकुल यथार्थ है। पर अब उस गौर चेहरे पर नित्य की मीठी मुस्कान नहीं थी। लाल-लाल होंठ नटखटपन से दोहराये हुए नहीं थे। चेहरा गंभीर था। कोई आंतरिक वेदना चेहरे पर उभरी हुई थी।

उसने मन-ही-मन कहा, "नहीं, प्रभो, मैं यह विषय अब फिर कभी नहीं उठाऊंगी। आपकी महानता अंतर्मन को अनुभव होती है। पर वहां तक मैं पहुंच नहीं पाती। प्रभो, मैं कैसी भी रहूं, फिर भी इन चरणों से मुझे कभी भी अलग न कीजिए।"

उसका मन अकारण भर उठा। उसके चरणों पर ही सिर रखकर वह लेट गयी।

उसकी आंख कब लग गयी, इसका उसे कोई पता ही न चला।

७

"विष्णुप्रिये...ओ निमाईप्रिये..."

विष्णुप्रिया आंगन को गोबर से लीपकर तुलसी-वृंदावन के पास रांगोली निकालने में निमग्न थी। पूर्व दिशा में लाल सूर्यबिंब क्षितिज पर चढ़ रहा था।

पुकारों के कानों में पड़ते ही उसने पीछे मुड़कर देखा। रास्ते पर फाटक के पास शुभा और पद्मा खड़ी थीं। शुभा की कमर पर कलसी और कंधे पर धोयी हुई साड़ी थी। पद्मा के हाथ में केवल साड़ी थी।

बहुत दिनों बाद अपनी प्यारी सखियों को देखकर विष्णुप्रिया आनंदित हो गयी। उसने कहा, "कितने दिनों बाद मिल रही हो। आओ, भीतर आओ। वहां क्यों खड़ी हो? आओ न?"

शुभा ने कहा, "विवाह के बाद से तेरे दर्शन दुर्लभ हो गए। निमाई पंडित के संसार में तू आपाद-मस्तक डूब गयी। तू अब..." बोलते-बोलते उसने एकदम जीभ काटी। सजगता से इधर-उधर देखा। फिर मंद आवाज में बोली, "विष्णुप्रिया, शची मां गंगा से आ गयी होंगी।"

"अभी नहीं आईं। तुम लोग भीतर आओ न? वहीं से क्या पूछताछ कर रही हो?"

"नहीं, पंडितराज गहरी नींद में होंगे। उनकी नींद नहीं टूटनी चाहिए।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "यहां कोई भी गहरी नींद में नहीं है। वे कभी के उठकर पाठशाला चल दिये हैं। अंदर आओ, घर बिलकुल खाली है।"

दोनों फाटक से भीतर आ गईं। शुभा ने आसपास देखते हुए कहा, "विष्णुप्रिये, इस घर का तो सारा रूप ही बदला हुआ दिखाई दे रहा है। पद्मा, क्या तुझे कुछ फर्क नहीं दीख रहा है?"

"परिवर्तन तो दीखेगा ही, इतने दिन यह घर बिना गृहिणी का था। अब लक्ष्मी के सुवर्णपद जो फिर रहे हैं इस घर में रात-दिन।"

"अंदर क्या परिवर्तन हुआ यह तो बिना देखे नहीं कह सकता। लेकिन

बाहर से मुझे यह घर सीता-राम के आश्रम के समान लगता है। देख न, गोबर से लिपा-पुता यह आंगन। आंगन के चारों ओर पुष्प वृक्ष। कोने की वह लता देखी हैं? कितनी फूली है। केलों को रोज पानी मिलने के कारण वे कैसे लहलहा रहे हैं! अरी, केलों में फलों के गुच्छ भी कितने लगे हैं। बरामदे में मृगचर्मासिन बिछा हुआ है। उस ओर..."

पद्मा ने विनोद में कहा, "हां-हां। देख लिया सब। और क्यों री, आश्रम में सीता आंगन में रोज इसी तरह रांगोली काढ़ा करती थी, है न?"

"वन की कुटिया के आगे न सही, मन की अँगनिया में प्रेम-पुष्पों की रांगोली तो अवश्यमेव पूरती रही होंगीं, सीताजी। मुझे लगता है कि उन दोनों के पूरे जीवन में वनवास का वह काल ही अत्यंत सुख का काल था। प्रेमजीवन का वह परमोच्च क्षण था, अलौकिक दांपत्य सुख की वह परिसीमा थी।"

विष्णुप्रिया दोनों सखियों का वार्तालाप रांगोली पूरते-पूरते सुन रही थी। उसकी गर्दन झुकी हुई थी। वे शब्द उनके मन के भीतर गहराई तक प्रवेश कर रहे थे। सच! उसी तरह के दिव्य रमणीय जीवन का इस समय वह उपभोग कर रही थी।

सहसा पद्मा ने पूछा, "विष्णुप्रिया, तुझे क्या लगता है?"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "मुझे लगता है कि हमारी शुभा गंगा-मैया जैसी है। ऊपर से कलकल करती दीखती है, पर हृदय में बहुत गहरी है।"

पद्मा ने हंसकर कहा, "गहरी? अरी, पूरी दस योजन गहरी है। इसका विवाह तय हो रहा है। पर पता तक नहीं चलने दिया।"

"सच? अच्छा हुआ, बहन! किसके घर जा रही है?"

पद्मा ने कहा, "मैंने जो सुना है, वह यदि गलत न हो तो हमारी शुभा तेरे मिश्र-घराने में ही आ रही है। क्यों री, शुभा?"

शुभा ने कहा, "तूने जो सुना वह गलत कैसे होगा, पद्मा? वैसे तू बड़ी छानबीन करनेवाली है। पूछताछ करके विश्वास हुए बिना व्यर्थ ही कुछ नहीं बोलती।"

विष्णुप्रिया बोली, "शुभा, पर मिश्र-परिवार का इस नवद्वीप में एक ही

घर है, केवल हमारा।"

"विष्णुप्रिये, श्रीहट में तुम लोगों का चचेरा घराना है न ?"

"होगा, मेरे ससुर वहां से नवद्वीप में एक बार आने के बाद फिर कभी श्रीहट नहीं गए। इस कारण वहां की हमें विशेष जानकारी नहीं।"

शुभा ने कहा, "बीच में श्रीहट के कोई पंडित पिताजी के पास आए थे। उन्होंने ही यह संवंध पिताजी को सुझाया। उस पंडित ने ही मध्यस्थता की। आज चौथे पहर पिताजी शची मां के पास पूछताछ करने आनेवाले हैं।"

"क्या करते हैं तेरे पति ?"

"पाठशाला में अध्यापक हैं।"

"श्रीहट तो बहुत दूर है न ?"

"हां, पर पिताजी जहां भेजें, वहीं कन्या को जाना चाहिए। दूर-परदेस का विचार विवाहयोग्य लड़की के लिए निषिद्ध है।"

विष्णुप्रिया ने कुछ आश्चर्य से उसकी ओर देखा और कहा, "शुभा, आजकल बहुत वदल गई है तू। पहले से अधिक विचारवान और गंभीर हो गयी है। अच्छा, चल अव भीतर।"

रांगोली समाप्त करके वह उठी।

उसके पीछे-पीछे दोनों सहेलियां सीढ़ियां चढ़कर वरामदे में आ गयीं। विष्णुप्रिया रसोईघर की ओर मुड़ गयी। उसके पीछे-पीछे न जाकर शुभा वायीं ओर मुड़ गयी और दरवाजे के भीतर झांककर उसने पूरे कमरे में निगाह घुमाई। विष्णुप्रिया का वह शयन-कक्ष था।

दायीं ओर की दीवार की एक ऊंची खिड़की के नीचे एक छोटी और चौड़ी चारपाई थी। बिस्तर पर सफेद स्वच्छ चादर थी। वहां नजदीक मे ही नीचे एक चटाई बिछी हुई थी। आले में बहुत-से ग्रंथ करीने से रक्खे हुए थे। खूंटी पर निमाई पंडित के कपड़े टंगे थे।

दोनों सखियों ने उसका मायका पहले देख रक्खा था। विष्णुप्रिया के विवाह से पहले अनेक बार वह वहां जाया करती थीं। राजपंडित सनातन मिश्र के घर का ऐश्वर्य, वहां का उसका ठाठ का रहन-सहन, उन्होंने देखा था।

शुभा ने कहा, "पद्मा, देख तो, बाहर से ही नहीं, भीतर से भी यह आश्रम लगता है। क्यों, तुझे नहीं लगता ?"

इसी समय हवा के एक झोंके के साथ भीतर से चंदन की मंद सुगंध बाहर आई।

पद्मा ने कहा, "सच ! यहां कितना शांत, प्रसन्न और पवित्र लगता है ! विष्णुप्रिया ने अपना घर कितना साफ-सुथरा रक्खा है। निमाई पंडित सचमुच बड़े भाग्यवान हैं।"

बोलते-बोलते दोनों रसोई-घर में गयीं।

विष्णुप्रिया ने चूल्हे पर दूध गरम करने को रक्खा और सास के लिए पूजा-सामग्री की तैयारी करने लगी।

"बैठो, जी।"

उसने उन दोनों के सामने दो छोटे आसन सरका दिये।

शुभा ने कहा, "विष्णुप्रिये, तू घर से बाहर दिखाई नहीं देती। गंगा पर भी नहीं आती। तेरी मां से पूछताछ की तो उसने कहा कि तू अपने मायके भी नहीं गयी।"

"क्या करूं ! अवकाश ही नहीं मिल पाता। मां की उम्र भी अब काफी हो गयी है और दुःख भी उन्होंने अपने जीवन में बहुत देखा।"

पद्मा बोली, "हां, विष्णुप्रिये, हमने बड़ों के मुंह से सुना कि शची मां के समान दुःख किसी मां के हिस्से में नहीं आया। आठ लड़कियां हुईं। सब असमय में ही चल बसीं।"

शुभा ने कहा, "इसके बाद विश्वरूप हुआ। उनका भग्न मातृ-हृदय पुनः पल्लवित हो गया। पर अध्ययन पूर्ण होते ही एक दिन वह घर से निकलकर यती हो गया।"

विष्णुप्रिया बोली, "और वह दुःख भी मां ने पचा लिया। उनकी आंतरिक शक्ति अलौकिक है। व्रत-चर्या के कारण उनका शरीर सूखता जा रहा है, परंतु उनकी व्रत-चर्या में उससे बाधा नहीं पड़ती। रोज सुबह के गंगा-स्नान का उनका नियम कभी नहीं चूकता। उनके लिए पूजन की तैयारी करनी पड़ती है। फिर सुबह के दूसरे काम-काज रहते हैं। अब तुम्हीं बताओ कि गंगा-स्नान के लिए कैसे जा सकती हूं ?"

शुभा ने कहा, "विष्णुप्रिया, सारा गांव तेरी प्रशंसा करता रहता है कि बड़े घर की बेटी ससुराल में सारे काम खुद करती है।"

"इसमें प्रशंसा की क्या बात है ? गृहिणी यदि अपने घर का काम न करे तो किसके घर का करे ? शची मां जैसी सास की सेवा करने को मिले, ऐसा दूसरा भाग्य नहीं। मां गंगाघाट गयीं कि मैं संजय महाशय के तालाब पर जाकर स्नान कर आती हूं।"

"तुम्हारे घर के पीछे की अमराई में जो तालाब है, वही न ?"

"हां। कभी-कभी मां के साथ गंगा पर भी जाती हूं। परंतु सुबह के काम पूरे करने होते हैं, इसलिए जल्दी लौट आती हूं। तुम तो रोज जाती हो न ?"

"नहीं, रोज कहां ? और सच बताऊं ? अब घाट जाने में पहले जैसा आनंद नहीं रहा। तू नहीं रहती और कांचना दीदी भी नहीं आतीं। वह गांव के बाहर वैष्णवों के अखाड़े में रहने चली गयी हैं न ? बहुत दिनों से उनसे भी भेंट नहीं हुई।"

शुभा ने कहा, "आठ दिन पहले उनके अखाड़े की राधा वैष्णवी घाट पर मिली थी। उसने बताया कि कांचना दीदी शांतिपुर अद्वैताचार्य के मठ में गई हैं, भागवत धर्म का अध्ययन करने के लिए। अब अगले महीने अखाड़े की सारी वैष्णवियां मथुरा, गोकुल, वृन्दावन की यात्रा पर जाने वाली हैं। उनके साथ वह भी जाने वाली हैं।"

"दीदी, अब वैरागिन हो गयी हैं। कृष्ण-भक्ति के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं बोलतीं।"

"दूसरा क्या बोलेंगी ? संसार की बातें करना उनके भाग्य में नहीं।"

"उनका विवाह हुआ और एक साल के भीतर ही बेचारी के पति का स्वर्गवास हो गया।"

"पर उनके ससुराल के लोग बहुत अच्छे हैं। उन्हें वे अपनी बेटी की तरह रखते हैं और मायके में उनकी भाभी तो उन्हें अपनी छोटी बहन ही मानती है।"

"हां, दोनों घर के लोग उनका बड़ा ध्यान रखते हैं, नहीं तो बंगाल में विधवा होने जैसा कोई पाप नहीं। मायका और ससुराल दोनों घरों में

वह विना वेतन की नौकरानी होती है। पर दीदी के दोनों घरों के लोग बड़े समझदार हैं। उन्हें किसी भी बात की कमी अनुभव नहीं होने देते। दीदी अत्यंत स्नेहशील और गंभीर हैं। उन्हें किसी का भी लोभ नहीं, मोह नहीं।"

"और पद्मा को भी आजकल उसकी सास गंगा पर रोज नहीं भेजतीं। वह बहू को बहुत संभालने लगी हैं।"

"संभालने लगी हैं, क्या मतलब ?" विष्णुप्रिया ने पूछा।

शुभा ने हंसकर कहा, "विष्णुप्रिये, सास अपनी बहू को कब संभालती हैं ? बिलकुल दुष्ट सास भी अपनी बहू को कब संभालती है ?"

विष्णुप्रिया ने एकदम आनंदित होकर कहा, "अच्छा, यह बात है ? आज सुप्रभात में दो शुभ समाचार सुनने को मिले। अब यह मिठाई खाओ और मुंह मीठा करो।"

पद्मा हंसकर बोली, "अब तेरा शुभ समाचार कब सुनने को मिलता है, इसकी हम प्रतीक्षा कर रही हैं। शीघ्र ही सुनने को मिलना चाहिए। समझी ?"

शुभा ने कहा, "सास की रात-दिन मन लगाकर सेवा करती है। इसका सुफल शीघ्र ही प्राप्त होगा।"

दोनों के सामने मिठाई की थालियां रखते हुए विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "आशीर्वाद दे रही हो क्या ?"

"आशीर्वाद देने का अधिकार हमारी कांचना दीदी को है। मैं सिर्फ भविष्य बताती हूं। पद्मा के पीछे-पीछे तेरी ही बारी है।"

मिठाई का एक टुकड़ा मुंह में डालकर पद्मा ने कहा, "विष्णुप्रिये, विवाह होने के बाद से निमाई पंडित बदल गए हैं, ऐसा सब कहते हैं।"

"बदल गए, यानी ?"

शुभा ने कहा, "पहले वे वैष्णवों की कितनी खिल्ली उड़ाते थे। परसों घाट पर, कहते हैं, मुकुंद पंडित सामने से आ रहा था। निमाई पंडित को देखते ही नित्य की भांति गर्दन झुकाये उनकी आंख बचाकर रास्ता पार करने लगा। निमाई पंडित उसके सामने जा धमके और हाथ जोड़कर बोले, "मुकुंद पंडित, आजतक मैं आपका मजाक उड़ाता था। मुझे क्षमा कर दीजिए। आपसे मैं भगवद्-भक्ति सीखना चाहता हूं।" इतना ही नहीं,

कहीं भी कोई वैष्णव दिखाई दिया कि उसे वे आदर से नमस्कार करते हैं। उनमें हुए इस परिवर्तन को देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गए हैं।"

"हां, अपने चचेरे घराने के ही होंगे। चार दिन बाद गदाधर पंडित श्रीहट जाने वाले हैं। उनके आने पर हमें मालूम हो जायगा कि उन मिश्र से हमारे क्या संबंध हैं? पर कहते थे कि संबंध बहुत बढ़िया हैं। श्रीहट का मिश्र घराना बड़ा प्रसिद्ध है।"

विष्णुप्रिया ने गीले वस्त्रों को सुखा दिया, फिर घर में अपने काम के लिए चल दी। पद्मा आई थी, यह उसने मां को नहीं बताया। उसका उल्लेख करती तो वह गर्भवती है, यह कहना पड़ता और इस समाचार से मां का मन अनजाने दुःखी हो जाता। सास के मन को वह हर प्रकार से संभालती थी। विवाह से पहले शची मां के प्रति उसके मन में आदर था ही। विवाह के बाद अब आदर के साथ ही उसके मन में प्रेम और अपार करुणा का भाव उत्पन्न हो गया।

पूजा-पाठ, जप-ध्यान, ये सब नित्य के कार्य पूरे करके घंटे भर बाद शची मां ऊपर बरामदे में आईं। इस बीच विष्णुप्रिया ने नित्य की भांति बरामदे में बड़ा आसन बिछाकर रख दिया। उस पर उनकी पोथी लाकर रख दी। वे आकर आसन पर बैठ गयीं। फिर उसने उनके आगे दूध का गिलास और थाली में दो केले लाकर रख दिये।

"बहू, निमाई सुबह पाठशाला जाते समय दूध के साथ केले खाकर गया न?"

उसने हंसकर कहा, "हां, और शिष्यों में बांटने के लिए पका हुआ पूरा एक गुच्छ साथ ले गए हैं। मां, केले का दूसरा गुच्छ भी एक-दो दिन में निकालना पड़ेगा।"

शची मां बहू की ओर कौतुक से देखती रहीं। बहू के घर में आने के बाद से बाड़ी की सब्जियों और केलों से टोकनी द्रौपदी की थाली की तरह निरंतर भरी रहती है।

"भगवान, इसके आने से बाड़ी की बेलें पुत्रवती हो गयीं। वह फल अब इसकी गोद में भी जल्दी डाल।" उन्होंने मन-ही-मन प्रार्थना करके आंखें बंद कर लीं।

इसी समय बाहर से निमाई की पुकार सुनाई पड़ी :

"मां, ओ मां !"

मां ने आंखें खोलीं।

"मां, यह देखो, मैं क्या लाया हूं ?"

रसोईघर में जाते-जाते विष्णुप्रिया ठिठक गयी। दरवाजे से धीरे से बाहर झांककर आंगन में आ रहे पति की ओर उसने कुतूहल से देखा। उसके हाथ में कुत्ते का एक पिल्ला था, जिसे वह छाती से चिपकाये हुए था।

"मां, मैं घाट पर स्नान के लिए जा रहा था कि रास्ते में यह दीख पड़ा। बेचारा बिना मां का अनाथ बड़े दयनीय स्वर से चिल्ला रहा था।"

उसने वह पिल्ला आंगन में सीढ़ी पर रख दिया। उस मटमैले रंग के मरियल कुरूप और निस्तेज पिल्ले को देखकर विष्णुप्रिया का अंग-प्रत्यंग सिहर उठा।

नीचे रखते ही पिल्ला चिल्लाने लगा। निमाई वहीं सीढ़ी पर बैठ गया। उसके पैरों के आसपास वह पिल्ला मंडराने लगा। उसने उस पिल्ले को उठाकर फिर छाती से चिपका लिया। उसके अत्यंत सुंदर, सशक्त और तेजस्वी शरीर से सटा वह पिल्ला बड़ा ही असुंदर दीख रहा था। केवल असुंदर ही नहीं, बल्कि घिनौना ! गंदा ! पर निमाई को ऐसा कुछ नहीं लग रहा था। जैसे रूप-कुरूप, स्वच्छ-अस्वछ, सब उसके लिए बराबर थे।

उसने कहा, "मां, देखो, छाती से लगाते ही कैसा चुप हो गया। मां, यह पिल्ला प्रेम की गरमाई चाहता है। इसे हमारे यहां ही रहने दो। बड़ा होने पर घर की रखवाली करेगा।"

उस गंदे मरियल कुत्ते को उसने प्यार से दुलराया। उसका मुंह अपने गाल से सहलाया और उसे छोड़कर वह घाट पर चल दिया।

वह तो चल दिया, पर उसकी पत्नी के लिए गृहिणी-धर्म का पालन करना आवश्यक था। चाहे अतिथि मानव रूप में आये अथवा पशु-पक्षी के रूप में उपस्थित हो, उसकी कुत्तों, बिल्लियों और पशु-पक्षियों में बड़ी रुचि थी। सुबह-शाम आंगन में चावल के दाने डालकर वहां चिड़ियों का एकत्र

दल देखकर उसे अत्यंत आनंद आता। गोठ के कोने में जन्मे बिल्ली के बच्चे जब 'म्याऊं-म्याऊं' करके उसके पैरों के पास चक्कर काटते तो रोमांच हो आता। पर अब इस कुत्ते के पिल्ले को देखकर वह चिढ़ उठी। तनिक रुष्ट हो गयी। 'यह पिल्ला बड़ा होगा तो घर की रखवाली करेगा, घर की ऐसी रखवाली करने की अपेक्षा घर चलानेवाला कोई होना चाहिए," ऐसी इच्छा उन्हें क्यों नहीं होती ? ऐसी इच्छा क्या उनके मन में कभी भी उत्पन्न नहीं होगी ? इस विषय में उनका अत्यंत दयार्द्र अन्तःकरण क्या सूखा ही रहेगा ? मैं...

"बहू, निमाई ने यह और एक नया काम लाकर हमारे सामने रख दिया है। देख, वह चिल्ला रहा है। उसे दूध दे दे और उस आम के चबूतरे पर छांह में एक बोरा बिछाकर उस पर रख दे।"

विष्णुप्रिया ने मन के आसपास चक्कर काटनेवाले विचारों को हटा दिया। अब उस अनाथ पिल्ले को बढ़ाने, उसका लालन-पालन करने की सारी जिम्मेदारी उसी की थी।

वह भीतर गयी। मिट्टी के एक छोटे से कटोरे में दूध लेकर आई। सास के कहने के अनुसार आंगन के बायें कोने में लगे घने आम वृक्ष के चबूतरे पर उसने एक बोरा बिछाया और उस श्वान-पुत्र की सारी व्यवस्था पूरी तरह से कर दी।

आजकल सर्वत्र निमाई के स्वभाव-परिवंतन की चर्चा हुआ करती। कुछ लोग राह-बाट पर गदाधर पंडित को रोककर कहते, "कहिएं, गदाधर पंडित। निमाई के अब आप घनिष्ठ मित्र बन गए हैं ?"

प्रश्नकर्त्ता के शब्दों में निहित व्यंग्य गदाधर पंडित के ध्यान में आ जाता। हँसकर कहते, "मैं उनका एकनिष्ठ भक्त हूं, घनिष्ट मित्र नहीं।"

वैष्णवधर्म के संबंध में जिनकी श्रेष्ठता निर्विवाद थी, उन परम वैष्णव गदाधर पंडित के मुख से अभी-अभी वैष्णव धर्म की ओर मुड़े निमाई पंडित के बारे में ऐसे अनपेक्षित उद्‌गारों को सुनकर लोग अवाक् रह जाते थे।

तब कोई तर्क करता, "गदाधर पंडित, प्रीति के समान भक्ति भी अंधी होती है, क्योंकि दोनों जुड़वां बहनें हैं।"

गदाधर पंडित उत्तर देते, "नहीं, दोनों जड़वां बहनें नहीं हैं। दोनों एक ही हैं। एक के ही दो रूप हैं। भक्ति प्रीति की प्रौढ़ावस्था है।"

"गदाधर पंडित, निमाई पंडित के लगातार साथ रहकर उनकी वाक्-पटुता आपने भी आत्मसात कर ली लगती है। निमाई पंडित आजकल अत्यंत गंभीर, विचारशील और मूक बन गए हैं।"

गदाधर पंडित ने कहा, "अन्तर्मुखता और चिन्तनशीलता मन के उन्नयन के बाह्य लक्षण हैं।"

जो निमाई पहले खान-पान के संबंध में बड़ा छानबीन करता, वह आजकल उस ओर से उदासीन हो चला था। खाने बैठता तो एकाध चीज थाली में उसी तरह पड़ी रह जाती।

शची मां कहतीं, "निमाई, सब्जी अच्छी नहीं बनी क्या ?"

"अच्छी बनी है, बहुत अच्छी बनी है।"

"बिना खाये तुझे कैसे पता चल गया ? यह देख, यह सब्जी तूने छुई तक नहीं है।"

आगे कुछ न कहकर निमाई फिर सब्जी ही खा जाता और भोजन समाप्त कर उठ जाता।

शची मां की ओर विष्णुप्रिया देखती रहती। सास की नजरों का आशय वह समझ जाती। परंतु मेरा पति ऐसा क्यों वर्ताव करता है, इसका रहस्य वह स्वयं ही नहीं समझ पा रही थी। फिर वह भी आखिर क्या कहती और क्या बोलती ? मेरे पति में सिर्फ खाने, बोलने और व्यवहार करने में ही परिवर्तन नहीं हुआ है, बल्कि वह आमूल बदल रहा है, इतना वह भी समझ रही थी।

पहले हर समय ज्ञान-साधना में जुटा रहता था, आजकल उस ओर से भी मुख मोड़ लिया था। पहले घर पर रहते समय प्रायः ग्रंथों को पलटता रहता था, आजकल वे आले में पड़े रहते। उसकी पाठशाला के अथवा अन्य कोई विद्यार्थी उससे कोई समस्याएं पूछने आते तो वह कहता, "शाम को घाट पर आना। वहां बताऊंगा" या "कल पाठशाला में बताऊंगा" कहकर टाल देता। कहकर भी घर पर नहीं जाता और अध्ययन-कार्य में भी पहले जैसा उत्साह नहीं रह गया था।

आज़कल वह विशेष घर में नहीं रहता था। पर जब रहता तब अपने कमरे में चारपाई पर दीवार से टिका अपने ही विचारों में, अपनी ही तंद्रा में, एकाग्र घंटों बैठा रहता। कभी आंखें बंद कर चुपचाप लेटा रहता।

आठ दिन पहले की बात है। मध्याह्न का समय था। उसे भोजन पर बुलाने के लिए विष्णुप्रिया उसके कमरे के दरवाजे के पास आई। निमाई चारपाई पर पद्मासन लगाकर बैठा हुआ था। आंखें बंद कर ध्यानस्थ हो गया था। ऊपर के झरोखे में से बीच आकाश पर चढ़े हुए सूर्य की किरणें उसके मुंह और सर्वांग पर पड़ रही थीं। उसका अत्यंत सुंदर चेहरा अलौकिक दीप्ति से चमक रहा था। उसकी देह के आसपास एक तेजोवलय दीख रहा था। उसके सर्वांग से प्रकाश फैल रहा था और सारा कमरा उस प्रकाश से जगमगा उठा था। उस दिव्य दृश्य को वह अनिमेष नेत्रों से देखती रही।

इसी समय उस तेजोवलय से प्रकाश-किरणें उसकी ओर परावर्तित होकर उसकी आंखों पर पड़ीं। उसकी आंखें चौंधिया गयीं। उसने आंखें बंद कर लीं। आंखों को चौंधिया देनेवाली वे प्रकाश-किरणें उसके शरीर में, हृदय में, प्रवेश कर रही हैं, ऐसा उसे लगा और वह रोमांचित हो उठी।

"वहू, ओ वहू।"

सास की पुकार से वह होश में आई। उसने झट-से आंखें खोलीं। सामने देखा। कुछ समय पहले का वह अलौकिक दृश्य अंतर्धान हो गया था। निमाई अभी भी ध्यानस्थ बैठा हुआ था। झरोखे से आनेवाली सूर्य-किरणें अब भी उसके शरीर पर पड़ रही थीं।

"बहू !"

सास ने फिर पुकारा। वह झट-से पीछे मुड़ी और रसोईघर में चली गयी।

"बहू, निमाई कमरे में नहीं है क्या ?"

शची मां के स्वर में किसी अनाम भय की कंपकंपी थी। निमाई के स्वभाव में परिवर्तन हो जाने के बाद से वे बेचैन हो गयी थीं।

विष्णुप्रिया ने कहा, "हैं, अपने कमरे में ही हैं। जप कर रहे हैं, इस-लिए उसके पूरा होने की राह देखती मैं थोड़ी देर रुकी रही।"

"फिर ठीक है।" उन्होंने चैन की सांस ली।

एक क्षण पहले उनके कंपित स्वर में प्रकट हुआ भय और इस समय की चैन की लंबी सांस दोनों विष्णुप्रिया के हृदय को स्पर्श कर गईं। उनकी चिंता वह समझ गयी थी। निमाई पंडित बाहर गए कि उनकी राह की ओर वे आंखें लगाये बैठी रहती हैं। आने में देर हुई कि उनके मन में उथल-पुथल मच जाती है। रात में तो वे बाहर बरामदे में बैठी रहती हैं। हाथ में जप की माला होती है। माला के दाने सरकाती रहती हैं। पर मन में भगवान को गुहराती रहती हैं।

इस देवी ने आजतक मूल भाव से कितने दुःख भोगे हैं। पर मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। अपने अंतर की व्यथा को कभी बाहर नहीं आने दिया। उसका हृदय अपार सहानुभूति से भर उठा।

निमाई की मनःस्थिति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक बिगड़ती जा रही थी। पाठशाला में वह नित्य की भांति सबेरे ही जाता, पर पढ़ाते-पढ़ाते बीच में ही रुक जाता, "आज बस इतना ही। पढ़ाने में मेरा मन नहीं लग रहा है।" ऐसा कहकर वह चल देता। मध्याह्न को, कभी मध्याह्न के पश्चात वह घर लौटता। आने पर तुलसी की पूजा और फिर भोजन, ऐसा उसका कार्यक्रम रहता।

उस दिन हमेशा की तरह शची मां बाहर बरामदे में बैठी पोथी पढ़ रही थीं। विष्णुप्रिया तुलसी पूजा की तैयारी करके बरामदे में बैठी चावल बीन रही थी। दोनों निमाई की राह देख रही थीं। यह उन दोनों का रोज का ही क्रम हो गया था।

सूर्य सिर पर आ गया। निमाई के घर आने का समय हो गया। दोनों ही रास्ते पर निगाह जमाये बैठी थीं।

इसी समय दूर से कोलाहल सुनाई पड़ा। विष्णुप्रिया बरामदे से आंगन में आई और सीढ़ी पर चढ़कर देखने लगी। भीड़ दिखाई दे रही थी और वह नजदीक आ रही थी।

"बहू, क्या है?"

" मालूम नहीं, पर लोगों की भीड़ हो रही है। कोई जोर-जोर से चिल्ला रहा है ?"

"कोई पागल होगा।"

"लोगों की भीड़ जब पास आई तो उसने देखा कि भीड़ के मध्य में दूसरा और कोई नहीं, बल्कि उसका पति निमाई पंडित ही था। वह हाथ हिलाता हुआ जोर-जोर से चिल्लाता आ रहा था। जो उसके निकट जाता, उसे वह हाथ के प्रहार से धकेल देता। वह इस तरह चल रहा था, जैसे उसे उन्माद का दौर आ गया हो। मुंह से बड़बड़ा रहा था :

"इन पंडितों ने धर्म का नाश किया है...पुस्तकीय पांडित्य अब पर्याप्त हो गया...सारा शास्त्रार्थ मोटे ग्रंथों में बंद होकर बैठा है...शास्त्रों के कारण बुद्धि-शक्ति बढ़ी है, पर मन जड़ हो गया है...शास्त्र और वाक्शास्त्र से दूसरों को पराभूत करने के लिए जबरदस्ती काम कराया जा रहा है। सुनो, सच्चे धर्म का लोप हो गया है...भेदभाव बढ़ गए हैं !..."

जोर-जोर से बड़बड़ाता हुआ वह फाटक से आंगन में आया। उसके पीछे-पीछे आनेवाली भीड़ भी आंगन में आ गयी।

अपने प्रिय पुत्र की यह अवस्था देखकर शची मां कांपने लगीं। विष्णुप्रिया सन्नाटे में आकर अपने पति की ओर देखने लगी.।

बड़बड़ाता हुआ निमाई सीधा अपने कमरे में गया। भीतर के सब ग्रंथ उसने उठाए और उन्हें लाकर आंगन में फेंक दिया। जल्दी-जल्दी सारे कपड़े फेंक दिये। जो भी चीजें उसके हाथ में पड़तीं, उन्हें उठा-उठाकर वह बाहर फेंकने लगा। उसका आवेश और उन्माद इतना विलक्षण था कि भीड़ का कोई भी मनुष्य आगे बढ़ने और उसे रोकने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था।

यह सारी गड़बड़ी देखकर, हो-हल्ला सुनकर और आंगन में लगी भीड़ देखकर पड़ोस की स्त्रियां धीरे-से बरामदे में आकर एकत्र हो गयीं। थरथर कांपने वाली और आंसू बहानेवाली शची मां को पकड़कर उन्होंने संभाला।

विष्णुप्रिया वहीं एक ओर अपने मस्तक का आंचल तनिक आगे

खींचकर एक तरफ दीवार से टिकी खड़ी पति की ओर एकटक देख रही थी।

निमाई का चीजें फेंकना समाप्त हो गया था, पर उसकी बड़बड़ जारी थी और उसका आवेश अभी कम नहीं हुआ था। उसका गोरा सुंदर चेहरा लाल हो गया था। गरदन तक लहराने वाले उसके बाल बिखर गए थे। मस्तक पर चेहरे पर बिखरी हुई लटें वहीं पसीने से चिपक गयी थीं। नथुने फूल गए थे। दीर्घ और जल्दी-जल्दी सांस चलने से उसकी विशाल छाती ऊपर-नीचे हो रही थी।

वह आवेश में तुलसी-वृंदावन के पास जाकर खड़ा हो गया। उसने उच्च स्वर में कहा :

"मैं विष्णु हूं, साक्षात् विष्णु। मेरी पूजा करो। धर्म का सार भक्ति है, भक्ति करो...मेरी भक्ति करो। हरिनाम का संकीर्तन करो—वैष्णव धर्म विश्व-धर्म है। उस धर्म की प्रस्थापना करो।"

बोलते-बोलते उसने अपना मस्तक उठाया। आकाश की ओर निगाह की। उसका चेहरा एक अलौकिक दीप्ति से चमक रहा था। उसने अपने दोनों हाथ उठाये और बोला, "मैं विष्णु हूं। मैं ही कृष्ण हूं।"

भीड़ में के कुछ लोग कुत्सितता से हंस पड़े। हंसी के शब्द गूंजे :

"अरे देखा, वैष्णव धर्म इसके मस्तिष्क पर सवार हो गया है। वैष्णव धर्म की ओर मुड़ते ही इसे मैं विष्णु हूं, साक्षात् विष्णु हूं, ऐसा लगने लगा। वाह रे !"

"अरे भैया, वैष्णव धर्म को पचाना आसान नहीं है।"

"वैष्णव धर्म के विषय में इसकी आस्था ढोंग है। पक्का पाखंडी है यह !"

इसी समय गदाधर पंडित, सदाशिव पंडित, मुरारी गुप्त, नीलांबर चक्रवर्ती आदि आए और भीड़ में से रास्ता बनाते हुए निमाई के पास पहुंचे।

गदाधर पंडित ने कहा, "प्रभो ! शांत होइए।"

फिर ये लोग उसे पकड़कर भीतर ले गये। उन्होंने उसे चारपाई पर सुला दिया। वह बीच-बीच में अब भी बड़बड़ा रहा था। चारों उसकी

चारपाई के पास बैठे रहे ।

आंगन में एकत्र भीड़ तर्क-वितर्क और अपना-अपना मत प्रदर्शित करती हुई तितर-बितर हो गई ।

बात-की-बात में यह समाचार सारे गांव में फैल गया :

"निमाई पंडित पर सनक सवार हो गई है । उसे पागलपन का दौर आया है । अति पांडित्य का यही परिणाम होता है ।"

शची मां के पास बैठी हुई स्त्रियों का एक ही निदान था और वह यह कि उसके पुत्र पर भूत सवार हो गया है । वे अपने-अपने ढंग से सास-बहू को धीरज बंधाने लगीं ।

निमाई पंडित की मनोवस्था का समाचार पाते ही उसके ससुर राज-पंडित सनातन मिश्र और उनके घर के लोग आए । खबर पाते ही बुद्धि-मंत खां और मुकुंद संजय दोनों ही वैद्य को जल्दी से ले आए । वैद्यराज ने इलाज तत्काल शुरू कर दिया । उन्होंने कुछ मात्राएं और गोलियां दीं और आवश्यक सूचनाएं भी ।

निमाई अब आंखें बंद कर शांति से सोया हुआ था । उसके शांत चेहरे पर गंभीरता थी । किसी आंतरिक वेदना की अस्पष्ट-सी छाया थी । होंठों पर हमेशा की मुस्कराहल थी ।

यह देखकर कि वह सो गया है, गदाधर पंडित को छोड़कर बाकी सब लोग धीरे से उस कमरे से चले गए ।

थोड़ी देर बाद निमाई ने आंखें खोलीं । जिस तरह गहरी नींद से कोई जागता है, उसी तरह वह जागा । गदाधर पंडित को नीचे चारपाई के पास बैठे देखते ही वह झट-से उठकर बैठ गया । उल्लसित मन से उसने कहा, "अरे गदाधर पंडित, आप ? बहुत देर हो गई क्या आपको आए ? मेरी आंख लग गयी थी ।"

"मैं अभी आया हूं । अधिक देर नहीं हुई ।"

निमाई ने आसपास देखकर हंसते हुए कहा, "मध्याह्न बीत गया ।"

"अभी आपका भोजन होना है । शची मां प्रतीक्षा में बैठी हुई हैं ।"

वह उठा । गदाधर पंडित का हाथ पकड़कर प्रेमावेश से बोला, "चलिए, आपको पंगत में अपने साथ बिठाये बिना आज मेरा भोजन

नहीं होगा।"

यह देखकर कि निमाई की मनोदशा पूर्ववत ठीक हो गयीं, शची मां के मन को थोड़ा ढाढ़स बंधा।

६

भोजन करके दोनों मित्र बाहर निकले। विष्णुप्रिया ने शची मां की थाली लगाई। उनका भोजन जब समाप्त होने पर आया तो उसने स्वयं अपनी थाली परोस ली।

इसी समय गंगा मां पहुंचीं। बोलीं, "शची मां, लो, गंडा और यह ताबीज मंत्रित कराकर ले आई हूं। गौरहरी कहां है? इसी समय उसके गले में यह ताबीज बांध देना होगा।"

निमाई को वे कौतुक से 'गौरहरी' कहकर संबोधित करती थीं। स्थूल शरीर की गंगा मां बड़े जोर से हांफ रही थीं। फिर भी वे बोल रही थीं, "वासुदेव मांत्रिक कभी अपने स्थान पर मिल जाय तो बहुत बड़ी बात है। खोजते-खोजते थक गयी। आखिर शिवशंकर के घर मिला। बैठकर उसके पास से यह सब ले आई। निमाई कहां गया? ए निमाई पंडित, ए, गौर।"

शची मां ने कहा, "भोजन करके गदाधर पंडित के साथ बाहर गया है। बैठो, गंगा मां।"

"बैठूंगी कैसे? अभी घर कहां पहुंची हूं? वासुदेव की खोज में घूम रही थीं। चलूं अब। पर सांझ होने से पहले यह ताबीज और गंडा गले में जरूर बांध देना।"

जाते-जाते उन्होंने कहा, "शची मां, उसे अधिक बाहर न जाने दिया करो।"

शची मां को गंगा मां के भोले स्वभाव पर हंसी आ गयी। उन्होंने कहा, "गंगा मां, बचपन में उसे एक बार ओखली से बांधकर रक्खा था, याद है न? अब यदि उस तरह बांध रक्खूं तो ओखली के साथ बाहर चला

जायगा।"

"हां, वहन ! सब कहते हैं कि निमाई अब गंभीर हो गया है। पर मन का नटखटपन अभी गया नहीं।"

सीढ़ियां उतरकर गंगा मां चली गईं।

शची मां उसी तरह बैठी रहीं। वे वाहर से शांत दीख रही थीं, पर उनके मन के भीतर वड़ी अशांति थी। निमाई की ऐसी स्थिति क्यों हुई ? क्या कारण है इसका ? उसे ऐसा उन्माद-वायुरोग क्यों होना चाहिए ? हमारे घराने में आजतक ऐसी बीमारी किसी को भी नहीं हुई। पागलपन का ऐसा भयानक दौरा मैंने कभी नहीं देखा। मेरे भाग्य में अन्त तक दुःख और दुर्भाग्य ही है क्या ? वह मेरी वृद्धावस्था का एकमात्र आधार है ! उसे पागलपन के ऐसे दौर आने लगे तो ?"

"मां, चटाई बिछा दी है। थोड़ी देर लेट जाइए आप।"

"वहू अद्वैताचार्य का एक बार दर्शन कर आवें, उनसे मिल आवें, ऐसा लगता है।"

"चलिए, फिर अभी ही मिल आवें। मैं काशी मां से डोली ले आने को कहे देती हूं। वहां तक आप पैदल नहीं चल सकेंगी। आप डोली में चलिए। मैं आपकी डोली के साथ पैदल चलूंगी।"

अद्वैताचार्य की पाठशाला पहले नवद्वीप में ही थी। विश्व का सारा अध्ययन उन्हीं की पाठशाला में हुआ था। अब वे सत्तर पार कर चुके थे। उनकी पाठशाला उन्हीं का विद्यार्थी चला रहा था। आचार्य अब निवृत्त होकर नवद्वीप की ही सीमा पर, गंगा किनारे, एक शांत स्थान में आश्रम बनाकर रह रहे थे। हरिभजन में जीवन बिता रहे थे। इसीलिए तो उस भूभाग का शांतिपुर नाम रक्खा गया था। यद्यपि वे एकांत स्थान में रह रहे थे, फिर भी कुछ चुने हुए शिष्यों का अध्ययन के लिए उनके पास आना-जाना चलता रहता था। वृक्ष और लताओं से घिरा हुआ गंगा किनारे का वह आश्रम प्राचीन ऋषि-मुनियों के आश्रम का स्मरण दिलाता था।

जिस समय शची मां वहां पहुंची, अद्वैताचार्य सामने के आंगन में, वकुल वृक्ष के आसपास बने चबूतरे पर, मृगचर्म पर बैठे अपने कुछ शिष्यों से चर्चा कर रहे थे। मस्तक पर सफेद जटा, सफेद दाढ़ी, झुर्रीदार गंभीर

चेहरे पर का अलौकिक तेज। वे व्यास-वाल्मीकि मुनियों के समान दिखाई दे रहे थे।

डोली से शची मां को उतरते देखते ही आचार्य आसन से उठे और उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े।

"आइए, शची मां।"

शची मां ने उन्हें झुककर नमस्कार किया। उनके पीछे खड़ी हुई विष्णुप्रिया ने मस्तक पर का आंचल थोड़ा आगे खींचा और आचार्य के चरण छुये।

आचार्य ने आशीर्वाद दिया, "भाग्यवती बेटा, तेरा कल्याण हो।"

इसी समय भीतर से सफेद स्वच्छ परिधान में आचार्य पत्नी सीतादेवी तेजी से आईं। शची मां का हाथ पकड़कर बड़े भक्तिभाव से उन्होंने कहा, "मां, आपके पद-स्पर्श से आज यह आश्रम पवित्र हो गया है।"

विष्णुप्रिया ने उनके पांव छुये। तब उन्होंने उसे हृदय से लगाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरा, "बहू कल्याण हो! जगन्माता बन।"

फिर शची मां को अपने हाथ का सहारा देकर मालती देवी आश्रम में ले गयीं। उन्हें आसन पर बिठाया। गुड़ और पानी उनके सामने रक्खा और उनकी कुशल-क्षेम पूछते हुए उनके पास बैठ गयीं।

इसी समय पीछे के दरवाजे से कांचन दीदी भीतर आई। उसके हाथ में फूलों से भरी चंगेरी थी। उसने सीतादेवी से कहा, "मां, शची मां और विष्णुप्रिया के आगमन का समाचार कृष्णदास ने आकर मुझे दिया।"

बोलते-बोलते उसने चंगेरी एक ओर रख दी और शची मां के चरण छुये।

"तू यहां है, कांचना?"

सीतादेवी ने कहा, "कांचना वैष्णवी बन गई है न! वैष्णव धर्म की दीक्षा उसने आचार्य से ली है। श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने के लिए वह आजकल यहीं रहती है। कल वैष्णवियों के दल के साथ मथुरा-वृन्दावन की यात्रा पर जायगी।"

कांचना दीदी ने विष्णुप्रिया का हाथ पकड़कर कहा, "मां, मैं इसे

थोड़ी देर पुष्प-वाटिका में ले जाऊं क्या ?"

उनकी आज्ञा प्राप्त होते ही दोनों बाहर निकल पड़ीं। चलते-चलते विष्णुप्रिया ने उसका हाथ कसकर पकड़ते हुए कहा, "दीदी, इस समय तू मिल गयी, कितना अच्छा लगा। तुझसे भेंट होगी, इसकी कल्पना भी न थी। बीच में शुभा और पद्मा मेरे यहां आई थीं। उन्होंने कहा था कि चार दिनों में तुम लोग यात्रा पर जानेवाली हो।"

"हां, जा ही रही थीं। सब तैयारी हो चुकी थी। पर हमारे अखाड़े की ज्येष्ठ वैष्णवी शर्वरी दीदी अचानक बीमार पड़ गयीं। अब वह अच्छी हो गयी हैं। कल हम लोग रवाना होंगी।"

"और लौटोगी कब ?"

"पांच-छह महीने तो लग ही जायेंगे।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "घर-द्वार और संसार के सारे पाश तोड़ देने वाली तुम विमुक्त वैष्णवी हो। जहां मुकाम करोगी, वही तुम्हारा गांव और जहां तीन पत्थर रक्खोगी, वही तुम्हारा घर बन जायगा।"

कांचना दीदी ने हंसकर कहा, "लौकिक संसार छूट जाता है, पर कृष्ण-भक्ति का नया संसार खड़ा हो जाता है। सारे मायापाश गलकर गिर पड़ते हैं, पर हरिभक्ति का पाश अंतरआत्मा को इस तरह घेरकर बैठ जाता है कि उससे छुटकारा नहीं। छुटकारा पाने की इच्छा ही नहीं होती।"

बोलते-बोलते दोनों पुष्प-वाटिका में आईं और एक चबूतरे पर बैठ गयीं। कांचना ने कहा, "विष्णुप्रिये, तेरा कैसा चल रहा है ?"

"अच्छा चल रहा है।"

कांचना दीदी ने तनिक हंसकर कहा, "सूर्य उदित होता है तब उसकी किरणें सब ओर पृथ्वी के कोने-कोने में फैल जाती हैं।"

विष्णुप्रिया उसकी ओर देखती रही। दोपहर को जो घटना घटी, उस संदर्भ में दीदी बोल रही थी, इसका उसे अंदाज हो गया। उसने कहा, "दीदी, दोपहर की घटना का उल्लेख कर रही हो न ?"

कांचना दीदी ने केवल गर्दन हिला दी।

विष्णुप्रिया ने कहा, "पर वह समाचार यहां तक पहुंचा कैसे ?"

"हुआ यह कि रामकृष्ण पंडित का मंझला लड़का नरहरी अध्ययन के लिए यहां रहता है। आज सुबह वह आचार्य का कुछ सामान खरीदने के लिए गांव में गया था। दोपहर को वह दौड़ता हुआ यहां आया और उसने सारा हाल सुनाया।

आचार्य ने सब सुना। सुनते-सुनते सामने की शृंगारित कृष्ण मूर्ति की ओर वे एकटक देखते रहे। देखते-देखते आचार्य ने नेत्र बंद कर लिये। वे अपने आपको भूल गए। उनकी समाधि लग गयी। उस अवस्था में उनके मुंह से शब्द निकले, "हा कृष्ण! हा कृष्ण! इसी समय की मैं बाट जोह रहा था। मेरी अनेक वर्षों की प्रार्थना तूने सुन ली। तू प्रकट हो गया। हा कृष्ण! हा कृष्ण! हा, गौरांग!"...उनके बंद नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। उनका जीर्ण शरीर कांप रहा था।

थोड़ी देर बाद आचार्य ने आंखें खोलीं। आसपास देखा। उनका झुर्रीदार चेहरा अलौकिक आनंद से खिल उठा था। उन्होंने कहा, "ठीक है। नरहरी, तू जा और अपना काम कर।"

भौंचक्का नरहरी वहीं खड़ा रहा। उसने धीरे-से नम्रतापूर्वक कहा, "आचार्य सब कहते हैं, निमाई पंडित को उन्माद-वायु हो गया है। वैद्यराज ने संपूर्ण रूप से उनकी जांच करके वायु रोग का निदान किया है।"

आचार्य तनिक मुस्कराये। बोले, "ज्ञान है, भाव नहीं। ज्ञान को भाव की आर्द्रता चाहिए। यह भावावेश है। वायुरोग नहीं।"

विष्णुप्रिया मन लगाकर यह सब सुन रही थी। विवाह से पहले, मायके में चंडी-मंडप में एकत्र पंडितों की चर्चा में 'भावावेश' शब्द उसने दो-तीन बार सुना था। महान योगी के स्वभाव-परिवर्तन का प्रारंभ भावावेश से ही होता है, ऐसा भी कुछ उसके कानों में पड़ा था। मेरा विद्वान पति साधारण मनुष्य नहीं, इसका अनुभव विवाह की पहली रात को ही उसे हो गया था। पर आजतक इस संबंध में उसने किसी से कुछ भी नहीं कहा था।

"विष्णुप्रिये, क्या सोच रही है?"

"दीदी, सोच रही हूं कि एक असाधारण, ईश्वरीय पुरुष का पत्नी-पद मुझे प्राप्त हुआ है। जब ऐसा आभास होता है, तो मेरा मन भयभीत हो

जाता है कि कहीं इस महान शक्ति का साथ देते समय मेरी शक्ति न्यून पड़ जायगी। एक बार पहले मैंने तुझसे कहा था न कि सूर्य के आगे जैसे जुगनू, उसी तरह प्रभु के आगे मैं हूं।"

"विष्णुप्रिये, अपने को जुगनू समझकर सूरज को हलकापन न दे। यदि उपमा ही देना चाहती हो तो तू जुगनू नहीं, चन्द्रमा है। सूर्य अस्त हुआ कि उसका स्थान चन्द्रमा लेता है। अंधेरे में टटोलने वालों को वह प्रकाश दिखाने का कार्य करता है। वह शक्ति सूर्य उसे दे देता है। उस शक्ति को निबाहने की सामर्थ्य तुममें निश्चित हीं है।"

विष्णुप्रिया ने उसका हाथ पकड़कर जोर से दबाया और कहा, "दीदी, तू ऐसा कहती है तो मेरे मन को बड़ा धीरज मिलता है।"

इसी समय कृष्णदास सामने से आता हुआ दीख पड़ा। कांचना दीदी ने कहा, "वह बुलाने आ रहा है। चलो, अब हम चलें।"

कांचना दीदी विष्णुप्रिया को पुष्प-वाटिका में ले गई और थोड़ी ही देर में आचार्य भीतर आए और अपने लिए बिछाये गए मृगासन पर बैठ गए।

शची मां ने कहा, "आचार्य निमाई के स्वास्थ्य के संबंध में मैं आपको बताने और कुछ पूछने के लिए आई हूं।"

"शची मां, वह सारा समाचार मुझे ज्ञात हो गया है।"

"वैद्य ने वायु रोग का इलाज किया है।"

"शची मां, चिन्ता न करें। यह वायु रोग नहीं, उन्मादवायु नहीं, भूत-बाधा भी नहीं। यह भावावेश है। निमाई पंडित केवल महापंडित नहीं, वह एक महापुरुष है। मां, उचित समय आते ही ऐसे महापुरुष के स्वभाव में परिवर्तन होता है। हृदय में भावुकता उदित होती है। भावुकता का, भक्ति का प्रचंड आवेश आता है। यह आवेश इतना प्रबल होता है कि सुदृढ़ शरीर भी उस आवेश को सहन नहीं कर सकता। अनेक महायोगियों की संक्रमणकाल में यही अवस्था हो जाती है। निमाई की यह संक्रमणा-वस्था है। यह संक्रमणावस्था आयगी, यह मैं जानता था। यह अवस्था प्राकृतिक विचारों का उन्नयन है, शीघ्र ही शान्त हो जायगा।

"शची मां, संसार के कल्याण के लिए अवतीर्ण हुए ऐसे महायोगी

किसी भाग्यशाली, परम पवित्र और परम पुण्यवती स्त्री के ही उदर से जन्म लेते हैं। इस जन्म के ही नहीं, अनेक विगत जन्मों के पुण्य होते हैं ये। देवकी इसी तरह पुण्यवती थी। इसलिए श्रीकृष्ण ने उसके गर्भ से जन्म लिया। भगवान विष्णु से निर्मित हुए वैष्णव धर्म की यह परंपरा है। शची मां, आप परम भाग्यशालिनी हैं।"

शची मां, स्तब्धता से सब बातें सुन रही थीं। तभी उन्हें वह बात याद हो आई जब यात्रियों के दल और अपने पति के साथ वह पुरी गयी थीं और अंतिम दिन सुबह की आरती के समय उन्हें आभास हुआ था कि गर्भ-कक्ष से एक छोटा बालक दौड़ता हुआ आकर उनसे लिपट गया था।

यात्रा से लौटने पर यहां आचार्य के दर्शन को आयी थीं। तब उन्होंने आशीर्वाद देते समय जो कहा था, उसके बाद गौरहरी का जन्म हुआ था।

यह सब उन्हें अब पुनः स्मरण हो आया। उनके मन का भय जाता रहा। शंका-कुशंकाओं का लोप हो गया। मन शांत हो गया।

१०

श्रावण के अंतिम दिन थे। वर्षा का वेग अब काफी कम हो गया था। कुछ समय पहले ही एक बौछार आ गयी थी। आकाश निरभ्र हो गया था। चंद्रमा की ज्योत्स्ना जैसी सौम्य धूप फैली थी। सूर्य मध्य आकाश की ओर बढ़ने लगा था।

विष्णुप्रिया रसोई में संलग्न थी। शची मां बरामदे में बैठी नित्य क्रमानुसार जप कर रही थीं। सुबह से रात तक काम में उलझी हुई विष्णुप्रिया की ओर देखकर उनका मन आश्चर्यचकित हो जाता। मायके में लाड़-प्यार में यह पली है, इसे कोई भी काम करने का अभ्यास नहीं है और यह एक धनिक राजपंडित की कन्या है, यह किसी को सच भी न लगता। इस गरीब गृहस्थी से वह कितनी एकरूप हो गयी थी। विवाह होने के बाद से वह मायके में रहने के लिए कभी गयी ही नहीं। उसकी मां

और उसके भाई मिलने आ जाते थे।

वहू का विचार करते-करते एकाएक शची मां को उन्हें निमाई की पहली पत्नी लक्ष्मी वहू की याद हो आई। यह वहू उस जैसी ही और सच पूछा जाय तो उससे अधिक सुंदर और सुलक्षणी है। चार महीने पहले निमाई को जब भावावेश आया था तो इस बहू ने कितनी समझदारी और चतुराई से वर्ताव किया था। उनकी विचार-धारा चलती रहती कि अचानक उन्हें सुनाई दिया :

"मां ! ओ मां !"

यह निमाई की आवाज थी। शची मां की विचार-धारा टूट गयी। उन्होंने आंखें खोलीं। सामने आंगन से निमाई आ रहा था। उसके पीछे-पीछे गदाधर पंडित और कोई तीन अपरिचित युवक थे।

निमाई कुछ समय पहले ही स्नान करके आया था। उसके कंधे पर लहराते घुंघराले काले केश अभी भी गीले-से दिखाई दे रहे थे। कुछ लटें मस्तक पर चिपक गयी थीं। वह श्वेत स्वच्छ धोती पहने हुआ था और शरीर पर पीला शाल ओढ़ रक्खा था। हाथ में गंगाजल से भरा हुआ छोटा लोटा था। माथे पर चंदन का तिलक था। चेहरा गंभीर किंतु अत्यंत प्रसन्न था। इन दिनों वह पहले की तरह चुप और गंभीर नहीं रहता था।

आंगन में आते हुए निमाई ने कहा, "मां, मैं दो अतिथियों को ले आया हूं।"

शची मां उठकर आगे बढ़ीं। उन्होंने कहा, "आइये, स्वागत है।"

साक्षात् तपस्विनी दीखनेवाली शुभ्रवसनधारी वृद्ध शची मां को देखते ही तीनों ने आगे बढ़कर उनके चरण छुये। उनमें का एक युवक बोला, "मां, आपका दर्शन पाकर हम धन्य हो गए। आपकी कीर्ति हमने सुनी थी। आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। वह आज पूर्ण हो गयी।"

इसी समय गदाधर पंडित ने कोने में से उठकर चटाई बिछा दी। तीनों उस पर बैठ गए।

विष्णुप्रिया ने मस्तक पर का आंचल तनिक आगे खींचकर रसोईघर की देहली के भीतर पानी से भरा हुआ लोटा, गिलास और थाली में गुड़ के डले रक्खे। वह सामग्री निमाई ने उठाकर उन युवकों के सामने रख दी

और कहा, "मां, ये तीनों अपने राढ देश से नवद्वीप देखने आये हैं। यह हैं तपन मिश्र, यह हैं अमित भट्टाचार्य, और यह हैं सुरेन्द्र पंडित।"

सुरेन्द्र पंडित ने उत्साह से कहा, "आश्रम के समान दीखने वाला यह घर है। आंगन में चारों ओर नाना प्रकार के पुष्प खिले हैं। कोने में एक बकुल वृक्ष है, जिसके आसपास चबूतरा बना है। आंगन का मध्य भाग लिपा हुआ है और उस पर रांगोली बनी है। बीच में सुंदर तुलसी वृन्दावन है। उधर वत्स सहित धेनु है। साक्षात तपस्विनी जैसी माता हैं। काम में निमग्न प्रसन्नमुख गृहिणी हैं। गदाधर पंडित, हमारे नवद्वीप में आते ही निमाई पंडित के अतिथि होने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ।"

वह और कुछ कहते कि उस समय रसोईघर की देहली में विष्णुप्रिया ने छोटी-सी डाली में केले और एक बर्तन में दूध लाकर रक्खा। शची मां ने कहा, "रसोई बनने में कुछ समय लग जायगा। तबतक यह थोड़ा जलपान कर लीजिए।"

और वे बहू का हाथ बंटाने के लिए रसोईघर में चली गई।

राढ देश से आए हुऐ ये तीनों युवक पंडित बड़े बुद्धिमान और जिज्ञासु थे। उनमें भी मिश्र उस देश में एक बड़ा पंडित माना जाता था। वहां का सारा अध्ययन पूर्ण करके कुछ समय काशी में रहकर अध्ययन कर आया था। निमाई पंडित से मिलने की उसकी तीव्र इच्छा थी। इसलिए वह अपने दो पंडित मित्रों को साथ लेकर नवद्वीप आया हुआ था।

निमाई पंडित के साथ उसकी अनेक शास्त्रों पर चर्चा आरंभ हुई। उसकी विद्वत्ता और कुशाग्र बुद्धि देखकर निमाई ने कहा, "मिश्र पंडित, आपका प्रखर पांडित्य देखकर मैं चकित रह गया हूं।"

तपन मिश्र ने नम्रता से कहा, "मेरे देश में मुझे बहुत प्रतिष्ठा मिली है। बिदाई भी खूब मिल रही है। पर आचार्य, इतनी प्रतिष्ठा और विपुल धन प्राप्त होते हुए भी मेरा मन संतुष्ट नहीं। मन को शांति नहीं। यह विद्वत्ता, यह पांडित्य, मेरे हृदय तक कैसे पहुंचेगा, इस ज्ञान से मुझे मानसिक शांति कैसे मिलेगी, इसका मैं रात-दिन विचार करता रहता हूं। अपने देश में मैंने अनेक पंडितों से पूछा, पर मैं क्या कहता हूं, यह उनकी समझ में नहीं आता। वे अपने-अपने ढंग से मुझे समझाकर बताते

हैं। वाद-विवाद होते हैं। उनके कहने का सारांश यही है कि ज्ञान मन की अपेक्षा श्रेष्ठ है। ज्ञान ही मानव की चरम इच्छा को पूर्ण करेगा। पर मेरा समाधान नहीं होता। अंत में हमारे आचार्य ने कहा, 'तू नवद्वीप जा। वहां निमाई पंडित से मिल। वही इस तेरे कूट को हल करेंगे।' इस-लिए मैं यहां आया हूं।"

"मित्र, मनुष्य का मन जब जाग जाता है, हृदय भावग्राही बन जाता है, तब सिर्फ ज्ञान से, प्रकांड पांडित्य से उसे संतोष नहीं होता। केवल ज्ञान मानसिक शांति का साधन नहीं, बल्कि ईश्वर-भक्ति, प्राणिमात्र पर प्रेम और सर्वभूत समता, ये संतोष-प्राप्ति और मानसिक शांति-लाभ के साधन हैं।"

निमाई बोल रहा था, तपन मिश्र एकाग्रता से सुन रहा था। उसे लगा, मानो उसके तड़पते हृदय पर निमाई का शीतल हाथ फिर रहा है। उसका शरीर रोमांचित हो गया। उसने हाथ जोड़कर विनम्रता से गद्गद स्वर में कहा, "निमाई पंडित, आपने मुझे सच्चा मार्ग दिखाया। इसी मार्ग से मुझे शांति प्राप्त होगी।"

"तपन पंडित, भक्ति से आत्मज्ञान प्राप्त करो।"

रसोई तैयार हो जाने पर सब भोजन पर बैठने ही जा रहे थे कि निमाई के मौसा चन्द्रशेखर पंडित फाटक से भीतर आते हुए दीख पड़े। उन्होंने फाटक से ही चिल्लाकर कहा, "मां, मैं बिलकुल ठीक समय पर आया हूं। षट-रस भोजन की सुगंध रास्ते तक आ रही है।"

गदाधर पंडित ने और एक पत्तल रख दी। निमाई ने उसपर सारे पदार्थ परोस दिये।

सब भोजन करने लगे। शची मां परोसने और आग्रह करने के लिए पास बैठ गयीं। विष्णुप्रिया दरवाजे की ओट से पत्तलों पर नजर रख रही थी। खाद्य पदार्थों से भरे बर्तन देहली के बाहर शची मां के पास ले जाकर रख रही थी।

भोजन के साथ बातचीत हुई। पंडित चन्द्रशेखर ने कहा, "मां, नियो-जित यात्रा के लिए आज शुभ सगुन हुआ है।"

"कौन-सी यात्रा की योजना है, मौसाजी ?" निमाई ने पूछा।

"इस वर्ष गयाधाम की यात्रा पर जाने का इरादा है। निमाई, सारे धार्मिक कार्यों में पितृ-श्राद्ध को प्रथम स्थान दिया गया है। स्मृति-शास्त्र में तो देवसेवा की अपेक्षा भी पितृसेवा अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। गृहस्थाश्रम का यह एक प्रमुख धार्मिक कार्य है। यह पितृ-यात्रा गया में फलगू नदी पर किये बिना पितरों का सच्चा उद्धार नहीं होता। उन्हें सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त नहीं होती। इसलिए बंगाल देश से हर वर्ष लाखों व्यक्ति गयाधाम पितृ-श्राद्ध के लिए जाते हैं।"

निमाई अपने मौसा की बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा था। उसका मन एकाएक उत्तेजित हो उठा। उसने कहा, "मां, मौसाजी के साथ गया जाने की मुझे आज्ञा दीजिए। वहां जाकर मैं पितृ-श्राद्ध करूंगा। फलगू नदी में पितरों का तर्पण करने और उन्हें मुक्ति देने का पवित्र कर्तव्य मेरे हाथ से होने दीजिए। मौसाजी साथ में रहेंगे, इसलिए धार्मिक कार्य करने में कोई भी त्रुटि नहीं रहेगी।

पुत्र की यह अनपेक्षित बात सुनकर शची मां को आश्चर्य हुआ।

उन्होंने हंसकर कहा, "निमाई, गृहस्थाश्रमी पुत्र यदि अपना कर्तव्य करे तो किसी भी माता को प्रसन्नता ही होगी। जा, तू अपने मौसाजी के साथ गया जाकर पितृ-श्राद्ध करके अपने पितरों को मुक्ति दे आ।"

नवद्वीप और मायापुर में श्रीअद्वैताचार्य और श्रीवास, ये दो आचार्य वहां के वैष्णवों के संरक्षक थे। इन दो पंडितों ने अपने प्रखर ज्ञान की भगवद्भक्ति में परिसमाप्ति कर दी थी। वैष्णव धर्म के ये दोनों सच्चे अध्वर्यु थे। दोनों ने ही अपनी-अपनी पाठशालाएं अपने शिष्योत्तमों के सुपुर्द कर दी थीं और अपना निवृत्ति का समय वे भगवद्भक्ति में व्यतीत कर रहे थे।

निमाई बीच-बीच में गदाधर पंडित के साथ अद्वैताचार्य और श्रीवास के दर्शनार्थ जाया करता।

श्रीवास के घर गांव के वैष्णव एकत्र होते। वहां श्रीमद्भागवत का नित्य पारायण चलता रहता। गदाधर पंडित के साथ निमाई श्रोताओं में जाकर दूर, एक ओर को, एकाग्र होकर बैठ जाता।

श्रोताओं के बीच इस तरह बैठे हुए निमाई पर श्रीवास की जब पहली

बार दृष्टि पड़ी, वे एक क्षण के लिए उसकी ओर देखते ही रहे। उसके अलौकिक तेज से उनकी आंखें एक क्षण के लिए चौंधिया गयीं। उनके होंठों के कोनों में मंद मुस्कान चमक उठी। आंखें चार होते ही श्रीवास का हृदय एकदम पुलकित हो गया। जिसका चरित्र मैं कह रहा हूं, जिसका गुणगान मैं गा रहा हूं, वही साक्षात...एक क्षण के लिए कुछ ऐसा आभास हुआ। वे संभले। उन्होंने कहा, "निमाई पंडित, आपको यहां देखकर आनंद हुआ। परंतु दिग्विजयी का भी पराभव करनेवाले आप महान ज्ञानी...ज्ञान-सागर..."

उनकी बात पूरी होने से पहले ही निमाई पंडित उठकर उनके पास गया। उनका वंदन करके उसने कहा, "आचार्य, आप जैसे आचार्य के कृपा-प्रसाद से मुझे ज्ञान-प्राप्ति हुई। पर भक्ति का प्रसाद मुझे अभी तक नहीं मिला। भक्तिकृपा से मुझे वंचित न रहने दीजिए। दो-चार अमृत-बिंदु मेरे भी हृदय में पड़ने दीजिए।"

श्रीवास कुछ न बोले। उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया।

रोज गदाधर पंडित के साथ निमाई श्रीवास के घर कथा सुनने के लिए श्रोताओं में जाकर बैठने लगा। वहां से फिर घाट पर, मित्रों के साथ, रात होने तक भगवद्भक्ति पर चर्चा करता।

गदाधर पंडित छाया की तरह निमाई के साथ रहा करता था। यह देखकर गांव के कुत्सित लोग उसकी हंसी उड़ाते, "क्यों, गदाधर पंडित! उस निमाई पंडित ने आप पर क्या जादू कर दिया कि आप रात-दिन किसी सेवक की तरह उसके साथ रहते हैं?"

गदाधर पंडित हंसकर कहते, "यदि तुम जानना चाहते हो कि निमाई पंडित में क्या जादू है तो उसके साथ रहे बिना तुम वह नहीं समझ सकोगे।"

"अजी, आप इतने प्रकांड पंडित हैं। उस पागल के पीछे क्यों लगे हुए हैं?"

गदाधर पंडित कहते, "ज्ञान की सच्ची सफलता भक्ति में होती है और सेवक बने बिना भक्तिभाव उत्पन्न नहीं होता।"

११

देखते-देखते यात्रा पर जाने का दिन आ गया। दूसरे दिन विजय-दशमी थी। उस दिन सवेरे सूरज निकलते ही लोग यात्रा पर रवाना होने-वाले थे।

निमाई का गया जाने का निश्चय हो जाने के बाद से शची मां के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। गौर पितृश्राद्ध करने के लिए गया जा रहा है। अपने पितरों को मुक्ति देना, यह उसका परम कर्तव्य ही है। उसे जाना चाहिए। गृहस्थाश्रम का यह कर्तव्य करना आवश्यक ही है। इस धार्मिक कार्य को करने के पश्चात् वह गृहस्थाश्रम की ओर अधिक ध्यान देगा। गृहस्थी में उसका मन उलझ जायगा। इस विचार से उसके मन को सांत्वना मिलती। परंतु तभी एक कुशंका उनके मन को पीछे खींच लेती। निमाई गृहस्थाश्रम के कर्तव्य पूरे करे तो ठीक है, परंतु संसार में उसे कोई आसक्ति है, यह दीख नहीं पड़ता। वह गया और लौटा ही नहीं तो ? उसे वहां पुनः भावावेश आ गया तो ?...

अद्वैताचार्य ने उस दिन कहा था :

"उसका प्रकृति-परिवर्तन हो रहा है। उसके प्रकृति-परिवर्तन का यह प्रारंभ है। जिस तरह कली खिलती है, उसी तरह उसका भावग्राही मन खिल रहा है।"

बोलते-बोलते एकदम उनका कंठ भर आया था। उनकी भावसमाधि लग गयी थी। मैं उनकी ओर देखती रही। उस तपस्वी की बंद आंखों से आंसू बह रहे थे।

"मां, मां, भोजन परोसती हो न ?"

शची मां होश में आईं। उनके समीप रक्खे हुए पीढ़े पर निमाई बैठा हुआ था। उसके सुंदर तेजस्वी चेहरे पर उत्साह उमड़ रहा था। आवाज में बालक की तरह निश्छलता थी। तप्त भूमि पर शीतल जल की बूंदें पड़ने जैसा उन्हें लगा।

निमाई भोजन करने लगा।

शची मां ने कहा, "निमाई, संभलकर जाना। वहां धूप में मत

घूमना। धार्मिक कार्य के लिए जा रहा है, पर व्रत और उपवास अधिक न करना। जो कार्य हम करते हैं, उस पर यदि हमारी श्रद्धा हो तो वह कार्य सफल हो जाता है। धार्मिक कार्य भी श्रद्धा से ही सफल होते हैं, व्रत और उपवास से नहीं। ज्यादा मेहनत मत करना। तेरी कोमल देह सहन नहीं कर पायेगी।"

"मां, तुम्हारी आज्ञा ध्यान में रक्खूंगा।"

"और...और, गौर काम पूरा करके जल्दी ही लौट...आ-ना..."

बोलते-बोलते उनका स्वर कांप उठा। गला भर आया।

निमाई ने कहा, "मां, तुम निश्चित रहो। श्राद्ध-कार्य पूरा हुआ कि मैं तुरंत लौट आऊंगा।"

रसोईघर का सारा काम पूरा कर विष्णुप्रिया देर से पति के कमरे गयी। उस समय वह चारपाई पर बैठा किसी ग्रंथ के पन्ने पलट रहा था।

उसकी आहट पाते ही उसने हाथ का ग्रंथ एक ओर रख दिया और कहा, "आओ, प्रिये।"

उसके कमरे में पैर रखते ही उसका हृदय आषाढ के बादल की तरह भर आया। पति का स्पर्श होते ही वह बरस पड़ेगा, इसका उसे विश्वास था। इसलिए उसे टालने के लिए, वह दोपहर को धोकर और सुखाकर, रस्सी पर तह करके रक्खे हुए उसके कपड़े निकालने लगी। होंठ दबाकर मन को संयमाधीन बनाने लगी।

निमाई ने पुकारा, "प्रिये..."

और उठकर, हाथ पकड़कर, उसे चारपाई पर अपने पास बिठा लिया।

उसके स्पर्श से उसका भरा हुआ हृदय बरस पड़ा। उसे बाहों में समेटकर वह मृदु स्वर में बोला, "प्रिये, तुम्हारी आंखों में आंसू! यह क्या? यह अल्प वियोग इतना असह्य? प्रिये, माता की आज्ञा से मैं पितृ-श्राद्ध करने जा रहा हूं। गृहस्थ का कर्तव्य..."

"प्रभो, मैं आपके कर्तव्य के आड़े नहीं आती।"

"प्रिये, मेरी अनुपस्थिति में तुम मां का ध्यान रक्खोगी, उन्हें संभा-लोगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। इसीलिए..."

"माताजी की सेवा करना मेरा कर्तव्य है। वह कर्तव्य मैं तथाशक्ति पूरा करूंगी।"

"प्रिये, गया से मैं तुम्हारे लिए क्या लाऊं ?"

"प्रभो, मेरी मांग आपके लिए बंधनकारक हो जायगी।"

"पत्नी के बंधन में रहना केवल भाग्यवान पुरुष के ही भाग्य में होता है। प्रिये, पति-पत्नी की दो आत्माओं के एक हो जाने पर बंधन कहां रह जाता है ? सारे बंधन गलकर गिर पड़ते हैं। तुम्हारी मांग क्या है, यह बताओ। वह मैं पूरी करूंगा।"

"प्रभो, आपके पद-कमल नित्य मेरे पास रहें।"

"तथास्तु। तुम्हारी इच्छानुसार होगा।"

उसके कपड़े और खूंटी पर टंगा बड़ा झोला लेकर वह धीरे-से कमरे से बाहर निकलकर रसोईघर की ओर चल दी। उसके प्रवास की तैयारी अभी थोड़ी और करनी थी। दोपहर को उसने काशी मां की सहायता से पोहा कूट लिया था। केले के पत्ते के एक बड़े दोने में गुड़ भर दिया था। प्रवास में प्रवासी को अपने साथ पाथेय रखना ही पड़ता है। आठ-दस दिन पहले केले के दो गुच्छ तोड़कर रख दिये थे। वे अब पक गए थे। उन गुच्छों में से कुछ केले रख देने और बाकी केलों को कल सवेरे निमाई के साथ जानेवाले लोग जब यहां आयंगे तो एक-एक उन्हें बांट देंने को शची मां ने उससे कह दिया था।

सारे सामान को बांधते और तैयार करते-करते आधी रात बीत गयी।

दूसरी ओर कमरे में शची मां सोयी हुई थीं, पर उन्हें नींद नहीं आई थी, ऐसा विष्णुप्रिया को अनुभव हो रहा था। बीच ही में :

हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे-हरे।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे !

उनके नित्य जप के ये शब्द उसके कानों में पड़ रहे थे।

काम पूरा हुआ। इसी समय शची मां उठकर रसोईघर में आईं। बोलीं, "बहू, अभी काम पूरा नहीं हुआ क्या ? थोड़ी देर सो जा। पोहों की पोटली बांधनी हो तो मैं बांधे देती हूं।"

"नहीं, मां। सब तैयारी हो चुकी है। अभी आधी रात बाकी है। आप सोइए।"

"बहू, तू थोड़ी देर सो जा। मैं यहां बैठी-बैठी जप करूंगी।"

"नहीं, मां, बिस्तर पर पड़े-पड़े जप कीजिए। आपको नींद नहीं आएगी, यह मैं जानती हूं। पर बाहर बड़ी ठंड है। आप यहां मत बैठिए। चलिये।"

"बहू, तू सो जा।"

"सोती हूं।"

वह रसोईघर की ओर जाती-जाती बरामदे में रुकी। फिर निमाई के कमरे की ओर मुड़ी। उसने भीतर झांककर देखा। कोने में ऊंची दीवट पर रक्खा दीया मंद-मंद जल रहा था। वह गहरी नींद में था। उसके ओढ़ने का शाल खूंटी पर रक्खा था। बाहर ठंड बढ़ रही थी। वह दबे पांव भीतर गयी। उसने खूंटी पर से शाल उतारा। पति की ओर देखती हुई वह चारपाई के पास खड़ी हो गयी। दीये के मंद प्रकाश में गहरी नींद में लिप्त उसका चेहरा शांत और सौम्य दिखाई दे रहा था। उसके मस्तक पर बिखरी हुई लंबी काली लटें उसके चेहरे पर फैल गयी थीं। जैसे काले-काले बादल पूर्णिमा के चंद्र-बिंब पर बिखर गए हों। उस दृश्य को वह एकटक देखती रही। देखते-देखते उसके हृदय में वात्सल्य का स्रोत उमड़ आया। कल यात्रा में कमल-दल जैसे ये लाल कोमल पग तप्त भूमि पर कैसे चलेंगे? यह सुकुमार देह कुम्हला जायगी।

उसकी आंखें भर आईं। एक क्षण के लिए वह उसी तरह खड़ी रही। फिर आंखें पोंछकर उसने धीरे से वह शाल पति को ओढ़ा दिया। उसकी निद्रा भंग नहीं हुई, जैसे उसकी आत्मा कहीं दूर घूमने चली गयी थी।

वह उसी तरह पीछे लौटी। रसोईघर में उसने चटाई बिछाई और उस पर सो गयी। पलकें बंद होने को तैयार नहीं थीं। उसके मन में कौन-से विचार आ रहे थे, कौन-सा तूफान सांय-सांय कर रहा था, यह वह स्वयं नहीं समझ पा रही थी। थककर कब उसकी आंख लग गयी, इसका उसे पता भी न चला।

सुबह काशी मां के आंगन बुहारने की आवांज से वह चौंककर जागी। उठी। शची मां पहले ही उठ गयी थीं। चूल्हे के पास बैठी वे आग ताप रही थीं। चूल्हे पर पानी गरम होने के लिए रक्खा हुआ था।

वह अपने काम में लग गयी। ठंडे पानी से स्नान करके वह बाहर आंगन में आई। आकाश में अभी तारे टिमटिमा रहे थे। पूर्व दिशा में शुक्र तारा चमक रहा था।

काशी मां ने आंगन गोवर-पानी से लीप दिया। तुलसी के सामने और आंगन में रांगोली कर दी। दीया रख दिया। इसी समय फाटक से गदाधर पंडित की पुकार सुनाई दी, "निमाई पंडित, उठ गए क्या ? सब कामों से निवृत्त होकर हमें अरुणोदय होते ही प्रयाण कर देना चाहिए।"

निमाई उठकर बाहर आया और स्नान की सामग्री लेकर उनके साथ घाट पर चल दिया।

विष्णुप्रिया ने अपनी तुलसी-पूजा समाप्त की और निमाई के लिए तुलसी-पूजा की तैयारी करके रख दी। आजकल वह तुलसी-पूजा किया करता था।

उसे तुलसी पूजा करते गदाधर पंडित ने जब पहली बार देखा तब आश्चर्यचकित होकर कहा था, "निमाई पंडित, आप तुलसी-पूजा करने लगे ?"

निमाई ने हंसकर कहा, "परसों हम अद्वैताचार्य का दर्शन करने गए थे। उस समय वैष्णव धर्म का महत्त्व बताते समय उन्होंने कहा था, केवल एक तुलसीपत्र और अंजली-भर जल भक्तिभाव से अर्पित किया तो भगवान अपनी आत्मा भी भक्त को दे देता है, इतना वह भक्तवत्सल है। वैष्णव को तुलसी-पूजा करनी चाहिए।"

अरुणोदय होने से पहले ही आंगन में निमाई के साथ जानेवाले यात्री एकत्र हो गए। उसकी पाठशाला के कुछ विद्यार्थी, उसके कुछ मित्र और गांव के अन्य वैष्णवजन इस यात्री मंडली में सम्मिलित थे। आंगन भर गया था। सभी का उत्साह उमड़ रहा था। हास्यध्वनि, सुखसंवाद और आनंद-लहरों से सारा वातावरण चैतन्यमय हो गया था।

शची मां बरामदे में बैठी हुई थीं। उनके पास दीपक मंद-मंद जल रहा था। आने वाला प्रत्येक मनुष्य उनके निकट आता, चरण छूता और आशीर्वाद तथा विष्णुप्रिया द्वारा उनके पास भरकर रखी हुई टोकनी से एक-एक केला लेकर फिर आंगन में लौट जाता।

निमाई की सारी तैयारी हो गयी। गदाधर पंडित उसकी सारी पोटलियां आंगन में ले आए। उन्हें उठाने के लिए अनेक लोग आगे बढ़े।

निमाई ने माता के चरणों पर मस्तक रक्खा। उन्होंने अपना वृद्ध कांपता हाथ उसके मस्तक पर रखा। उनके भरे हुए कंठ से एक शब्द भी बाहर नहीं निकल पा रहा था।

निमाई ने कहा, "मां-मां, तुम निश्चिंत रहो। कार्य होते ही लौट आऊंगा। चिंता न करो।"

हाथ का कंपन कम हो गया। कंठ से शब्द फूटे, "जाओ, गौर बेटा, संभलकर जाओ। मेरी चिंता न करना। बहू है।"

विष्णुप्रिया पास ही खड़ी थी। गया में धार्मिक कार्य के समय जिन वस्त्रों को धारण करना पड़ता है, जैसे पीतांबर, शाल आदि, उन वस्त्रों की कपड़े में बंधी गठरी लिये खड़ी थी।"

निमाई भीतर उसके सामने गया। विष्णुप्रिया आगे बढ़ी। उसके चरण छुए और रज अपने मस्तक से लगाई, और फिर कपड़ों की गठरी उठाकर पति के हाथ में दे दी।

उस गठरी को लेता हुआ वह बाहर निकला और जल्दी-जल्दी बरामदे की सीढ़ियां उतरने लगा। इसी समय कोई आगे बढ़ा और उसने उसके हाथ की गठरी ले ली। सामने पूर्व आकाश में अरुणोदय का लाल रंग फैल रहा था। वे लाल छटाएं चहुं ओर बिखरी हुई थीं।

निमाई को देखते ही सबके चेहरे खिल उठे। उस पर उनकी निगाहें टिक गयीं। उसका तेज अपूर्व था। उसके माथे पर चंदन का टीका लगा था। वह स्वच्छ सफेद धोती पहने हुए था। पीले रंग का शाल ओढ़ हुए था। उस शाल के दो छोर दोनों कंधों पर से आगे घुटनों तक हिल रहे थे। गले का जनेऊ अभी भी कुछ गीला था। उसके आपाद-मस्तक गौर अंग पर अरुण छटा प्रतिबिंबित हो रही थी।

सीढ़ियां उतरते-उतरते निमाई ने आंगन में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसने गदाधर पंडित से कहा, "सारी तैयारी हो गयी ?"

"हां, पर अभी तक यदुनाथ और पंडित मुरारी नहीं आए हैं।" यदुनाथ उसकी पाठशाला का सबसे छोटा और उसका सबसे प्रिय विद्यार्थी था, जो उसके साथ यात्रा पर जाने का हठ पकड़कर बैठ गया था। पंडित मुरारी उसका मित्र था।

रास्ते की ओर दूर तक निगाह फेंकता हुआ वह वहीं ठिठककर खड़ा हो गया। इसी समय यदुनाथ और मुरारी पंडित जल्दी-जल्दी फाटक से भीतर आए। दोनों भीड़ में से रास्ता बनाते हुए निमाई पंडित के पास आए। यदुनाथ के हाथ में केले के पत्ते में बंधा हुआ एक पुलिंदा था। मुरारी पंडित ने कहा, "हम दोनों कल शांतीपुर आचार्य के दर्शन को गए थे। रात को वहीं रह जाने का सीता मां ने आग्रह किया। इसलिए..."

अपने हाथ के पुलिंदे को जल्दी-जल्दी खोलता हुआ यदुनाथ बीच में ही बोला, "इसलिए हमें देर नहीं हुई, आचार्य। देर मेरे कारण हुई। वहां की पुष्प वाटिका के फूल देखकर मेरा मन नहीं भरता। आचार्य की अनुमति से मैंने फूल तोड़े। आप आज यात्रा पर जा रहे हैं ?..."

इतना कहकर उसने पुलिंदे से लंबा पुष्पहार निकाल कर बड़े आदर से निमाई के गले में पहना दिया। झुककर उसके चरण छुये। विभिन्न पुष्पों की मंद सुगंध चंदन की सुगंध में एकरूप हो गयी।

गले में लहराने वाले उस हार से निमाई का रूप और निखर उठा। अरुण देव के स्थान में अब सर्वांग में गुलाल लगे और रास-क्रीड़ा में भरी पिचकारियों से रंगे हुए कुंजवन के कृष्ण के समान वह दिखाई देना लगा। गदाधर पंडित तथा वहां एकत्र सब लोग अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर देखते रहे।

निस्तब्ध, निश्चल और अपने आपको भूले उस जनसमूह की ओर निमाई एक क्षण के लिए देखता रहा। उसके अधरों के कोनों पर हास्य रेखाएं उभर रही थीं।

दूसरेही क्षण वह झट-से सीढ़ियां उतरकर नीचे आया। बोला, "चलो, अब चलें। देर हो गयी।"

वह आगे-आगे चलने लगा। सारे लोग उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

विष्णुप्रिया देहली के बाहर बरामदे में खड़ी हुई देख रही थी। उन यात्रियों से घिरे हुए पति पर उसकी निगाह टिक गयी थी। वह दल जैसे-जैसे दूर जा रहा था, अनजाने उसके कदम आगे-आगे सरक रहे थे। गौर-हरी आकाश की ओर देखता हुआ दोनों हाथ उठाये भीड़ में चल रहा था। उसकी गंभीरता विलुप्त हो गयी थी। उसकी देह चंचल बन गयी थी। असीम उत्साह उमड़ रहा था। जिस तरह पिंजरे में बंद कोई पक्षी मुक्त होकर आकाश में स्वच्छंदता से विहार करता है, उसी तरह वह सक्रिय होकर चल रहा था। अरे नहीं, वह चल नहीं रहा था, तैर रहा था। अरुण छटा लिये हुए सफेद बादलों के ढेर आकाश में अठखेलियां कर रहे थे।

"प्रिये ! चलो न, प्रिये ! हम कहां जा रहे हैं, जान गयीं न ? अपना स्थान, अपना मूल स्थान, क्या तुम नहीं पहचान पातीं ? ठीक से देखो न !"

नीचे फैला हुआ वह विशाल सागर, वह पृथ्वी। पति के साथ बादलों पर बैठकर विष्णुप्रिया तैरती चली जा रही है !

"बहू ! बहू ! कहां जा रही हो ? ओ...ब-हू..."

विष्णुप्रिया एकदम होश में आई, जैसे पुनः पृथ्वी पर उतर आई हो।

वह फाटक के बाहर निकल आई थी, रास्ते पर आ गयी थी, उसके मस्तक पर का आंचल ढहकर कंधे से भी नीचे सरक गया था, पूरी पीठ पर फैले हुए गीले केश खुले पड़े थे, आंखों से आंसू बह रहे थे, ये बातें उसे महसूस हुई। वह शर्म से लाल पड़ गई।

उसने झट-से अपना आंचल ठीक किया। मस्तक पर से माथे तक खींच लिया। आंखें पोंछीं। यात्रियों का दल कभी का दृष्टि से ओझल हो गया था। रवि-बिंब अब क्षितिज पर दिखाई देने लगा था।

वह पीछे लौटी। धीरे-धीरे आंगन से सीढ़ियां चढ़कर बरामदे में आ गई।

शची मां आंखें बंद कर मन-ही-मन किंतु जरा जोर से प्रभु का नाम-स्मरण करने लगी थीं :

"हरे राम, हरे राम राम-राम, हरे-हरे।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥"

वहएक क्षण के लिए ठिठकर वहीं खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे रसोईघर की ओर चल दी।

१२

निमाई के गया-यात्रा पर जाने के बाद सारा घर सूना-सूना लगने लगा। घर का सारा चैतन्य और उत्साह ही जैसे उसके साथ यात्रा पर चला गया था। काम में विष्णुप्रिया का मन नहीं लगता था। वैसे अब दैनिक काम भी कम हो गये थे।

सुबह की झाड़-बुहार, आंगन की लिपाई, रांगोली काढ़ना, स्नान करना, कपड़े धोना, पानी भरना इत्यादि काम पूरे कर वह रसोई बनाती। भोजन के बाद शची मां अपने कमरे में थोड़ा विश्राम करतीं। विष्णुप्रिया रसोईघर के काम पूरे कर अपने कमरे में चली जाती।

उसे संस्कृत का ज्ञान था। मायके में उसने अनेक सरल संस्कृत ग्रंथ पढ़े थे। ससुराल आने के बाद भी अवकाश मिलने पर वह ग्रंथ पढ़ा करती थी। पढ़ने का उसे बड़ा शौक था। भजन और गीत गाने में भी उसे बड़ी रुचि थी। उसका गला भी मीठा था।

आजकल उसने श्री कृष्ण-चरित्र पढ़ना शुरू कर दिया था। उससे उसका मनोरंजन हो जाता। सास के विश्राम करने तक पढ़ती। उनके उठकर बाहर बरामदे में आने पर ग्रन्थ बंद करके वह भी बरामदे में आ जाती थी।

"मां, चरखा ला दूं?"

शची मां चरखे पर सूत काता करतीं। गांव में घर-घर दोपहर के समय सूत कातने का स्त्रियों का उद्योग ही था। तब तो समय व्यतीत करने के लिए वह एक बड़ा साधन था। चरखे के चक्र में मन अनजाने उलझ जाता। हाथ से चरखा और मुंह से हरिनाम-स्मरण!

उसने चरखा और अन्य सामग्री उनके सामने लाकर रख दी।

"वहू, निमाई को गए बहुत दिन हो गए, हैं न ?"

"बहुत कहां, मां ? कल आठ दिन होंगे।"

"बहू, तू आठ दिन मायके जाकर रह आ। अपने भाइयों और मनुष्यों में तेरा मन थोड़ा रम जायगा।"

"नहीं मां, आपको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगी। जाते समय वे आपका भार मुझे सौंप गए हैं।"

"वहू, तुझ-जैसी पुत्रवधू मिली, यह इस घर का इतना बड़ा भाग्य है ? पर..."

इस 'पर' के आगे वह क्या कहेंगी, यह विष्णुप्रिया को ही मालूम था। इसीलिए उसने जल्दी-जल्दी कहा, "मां मैंने आजकल श्रीकृष्ण-चरित्र पढ़ना शुरू किया है। आपको भी पढ़कर सुनाऊं ?"

"जरूर सुना, वहू। श्रीकृष्ण-चरित्र कितनी ही बार सुने, फिर भी हर बार नया ही लगता है। तू पढ़। मैं सुनती हूं।"

विष्णुप्रिया ग्रंथ लाने के लिए अपने कमरे की ओर मुड़ी। इसी समय फाटक से किसी ने पुकारा, "शची मां, ओ...शची मां..."

विष्णुप्रिया ने फाटक की ओर देखा। आचार्य रत्नगर्भ फाटक से भीतर आ रहे थे। आचार्य मूलतः श्रीहट (सिलहट) के ही थे। पंडित जगन्नाथ मिश्र के परम स्नेही थे। परम वैष्णव के नाते गांव में उनकी बड़ी ख्याति थी। बीच-बीच में शची मां का कुशल-क्षेम पूछने या कभी निमाई पंडित के साथ शास्त्र-चर्चा करने के लिए आते रहते थे।

आचार्य रत्नगर्भ सीढ़ियां चढ़कर बरामदे में आए। आचार्य करीब-करीब शची मां की उम्र के ही थे। कृश देह, मस्तक पर शुभ्र केश, झुर्रीदार चेहरे पर बालसदृश निरीहता, चाल में चपलता, दृष्टि में तनिक अंतर्मुखता। प्रकांड विद्वान, पर कृष्ण-कीर्तन करते हुए विभोर हो जाया करते थे।

आचार्य सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आए और विष्णुप्रिया द्वारा पहले ही बिछाकर रक्खे हुए आसन पर बैठकर उन्होंने कहा, "सुना है, निमाई पंडित यात्रा पर गए हैं !"

"हां, पंडित चन्द्रशेखर यात्रा पर जा रहे थे। उनके साथ वह पितृ-

श्राद्ध करने के लिए गयाधाम गया है। गृहस्थ का कर्तव्य करने की उसकी इच्छा हुई। पितृ-श्राद्ध करके लौट आयगा।"

"उसकी सभी लीलाएं आनन्ददायी हैं। गौरहरी...हरी...हरी..."

उनके नेत्र बंद हो गए। बोलते-बोलते इस प्रकार हरि के ध्यान में तल्लीन हो जाने की आदत शची मां को मालूम थी। थोड़ी देर बाद आचार्य ने आंखें खोलीं। उन्होंने कहा, "शची मां, आपका स्वास्थ्य ठीक है न? बहू कैसी है?"

"अब उम्र के हिसाब से ठीक हूं। बहू..."

रसोईघर से विष्णुप्रिया माथे का पल्लू थोड़ा आगे खींचकर बाहर आई। उसने आचार्य के चरण छुए।

उन्होंने आशीर्वाद दिया, "नित्य वंदनीय हो।"

शची मां ने कहा, "बहू आजकल श्रीकृष्ण-चरित्र पढ़ रही है। आचार्य, आपको अनेक कृष्ण-लीलायें कंठस्थ हैं। एकाध सुनाइए।"

आचार्य ने आरंभ किया, "नित्य की भांति श्रीकृष्ण और बलदाऊ गोप सखाओं के साथ वन में गायें चराने के लिए गये। आज अच्छे चरागाह की तलाश में वे लोग नित्य के स्थान से बहुत दूर निकल गये।

"गायों ने भर पेट हरी घास चरी, यमुना का शीतल पानी पिया और वृक्षों की सघन छांह में बैठ पगुराने लगीं।

"सूर्य माथे पर आ गया। ग्वालों को जोर की भूख लगी। सबके पेट में चूहे कूदने लगे। लेकिन छाछ लेकर आने वाली गोपियों का दूर तक पता नहीं था। ग्वाल-बाल भूख से व्याकुल हो गए। श्रीकृष्ण से बोले, 'सखा, भोजन का कुछ प्रबंध करो, नहीं तो प्राण निकल जायंगे।'

"परंतु श्यामसुन्दर कदंब से पीठ सटाये, ओठों पर मुस्कराहट लिए बंसी बजाने में मग्न थे। उन्होंने ग्वालों की गुहार जैसे सुनी ही नहीं।

"जब ग्वालों ने बार-बार आग्रह किया तो बोले, 'गायें रोज घास खाती हैं, आज हम भी घास खाकर क्यों न गुजर करें?'

"ग्वालों ने व्याकुल होकर रहा, 'अरे कृष्ण, यह ठिठोली छोड़, प्राण व्याकुल हो रहे हैं। कुछ-न-कुछ कर।'

"कृष्ण ने शांति से दूर तक देख बलराम से कहा, 'दादा, इस पेड़

पर चढ़कर.जरा देखो तो दाहिनी ओर। वहां मुझे कुछ धुंआं उठता हुआ दिखाई दे रहा है।'

"बलराम पेड़ पर चढ़ गये। उस दिशा की ओर ध्यान से देखकर बोले, 'हां रे कृष्ण, वहां यज्ञ होता दीख रहा है। बहुत से ब्राह्मण एकत्र हैं।

"कृष्ण ने अपने एक खास साथी से कहा, 'तुम दो-तीन मिलकर वहां जाओ। ब्राह्मणों से कहना कि हमें कृष्ण ने भेजा है। हमें भूख लगी है। इसलिए खाने को दो।'

"गोप दौड़ते हुए गये, पर ब्राह्मणों ने उन्हें फटकार दिया। देवताओं का यज्ञ-भाग वे कृष्ण के सखा ग्वाल-बालों को कैसे दे देते? बेचारे ग्वाले मुंह लटकाये लौट आये।

"कृष्ण ने कहा, 'उन ब्राह्मणों की दृष्टि स्वर्गसुख की ओर लगी हुई है। उन्हें हमारे दुःख की क्या परवा? इस बार तुम उनकी स्त्रियों के पास जाओ। स्त्री-हृदय कोमल होता है। वे तुम्हें निश्चित कुछ देंगीं। उन्हें मेरा नाम बताओ। वे मुझे पहचानती हैं।

"जैसे ही गोपों ने ब्राह्मण पत्नियों से कृष्ण का सन्देश कहा, वे प्रसन्न होकर भोजन के थाल लिये उस ओर उमगती हुई चल दीं, जहां कृष्ण बैठे थे।

"कृष्ण उन्हीं की ओर चले आ रहे थे। ब्राह्मण पत्नियों ने सामने देखा। मन को मोहित करनेवाला, हृदय को रोमांचित कर देनेवाला, वह श्यामसुंदर! उस समय की कृष्णमूर्त्ति का भगवान व्यास ने बड़ा सुंदर वर्णन किया है। व्यास कहते हैं:

"उसके शरीर का मेघ के समान श्याम रंग है। उसने पीताम्बर धारण किया है। गले में वनमाला झूल रही है। माथे पर चन्दन का तिलक है। सर्वांग पर रंगबिरंगे मिट्टी के दाग हैं। कंधे तक लहरानेवाले उसके काले केश हवा में उड़ रहे हैं। घुंघराली लटें मस्तक पर, गालों पर लटक रही हैं...अ हा हा!"

कृष्णमूर्त्ति का वर्णन करते-करते आचार्य का गला भर आया। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

और शची मां की आंखों के सामने गौरहरी की बालमूर्त्ति साकार हो उठी। उसकी याद से उनका हृदय भर आया। आंखों से आंसू बहने लगे।

विष्णुप्रिया अपनी ही स्मृतियों में खो गयी।

तभी शची मां ने आंखें पोंछकर कहा, "बहू, आचार्य के लिए दूध और फल ले आ।"

आचार्य फलाहार करके चले गये। विष्णुप्रिया ने कहा, "मां, बाहर ठंड बढ़ रही है। भीतर चलिए न ?"

मां अपने विचारों में खोयी हुई थीं। बोलीं, "बहू, निमाई को गए बहुत दिन हो गए। अब तक तो उसे आ जाना चाहिए था। इतने दिन लग गए..."

विष्णुप्रिया ने कहा, "मां, बहुत दिन कहां हुए हैं ? एकादशी को एक महीना हुआ है। विजयादशमी को गए थे। गया जाने के लिए, सब धार्मिक कार्य पूरे करने और आसपास के तीर्थ देखने के लिए इतने दिन चाहिए ही। चलिए भीतर। थोड़ा दूध लीजिए। जलपान कीजिए।"

दोनों का जलपान समाप्त हुआ। विष्णुप्रिया ने सास के सोने की व्यवस्था कर दी। फिर घर का सब काम पूरा करके वह अपने कमरे में चली गयी।

चारपाई पर निमाई का बिस्तर उसने झटककर पुनः ठीक से लगा दिया। फिर चारपाई के पास नीचे चटाई बिछा ली। शाल पैताने रक्खी। सिरहाने के पास दीया रखा और भगवद्गीता लेकर चटाई पर बैठ गयी।

बहुत देर तक वह पढ़ती रही। फिर जब पलकें झपकने लगीं तो चिह्न रखकर उसने ग्रंथ बंद कर दिया। उसे मस्तक से लगाया, यथा-स्थान रक्खा। शाल ओढ़कर सोने से पहले, नित्यनियमानुसार उसने चारपाई के किनारे पर मस्तक रख मन-ही-मन पति का ध्यान किया और चटाई पर सो गयी।

गहरी नींद से वह सहसा किसी आवाज से जाग गयी। कोई मंत्र-पाठ कर रहा था। दूर कहीं से अस्पष्ट-सी आवाज आ रही थी। उसने आहट ली। आसपास देखा। सब तरफ नीरवता का साम्राज्य था। वृक्ष के पत्ते हिलने की भी आवाज नहीं आ रही थी। निस्तेज, चन्द्रबिंब सामने की

ऊंची खिड़की के झरोखे से दीख रहा था।

उसने सजग होकर कान खड़े किये। मंत्र की आवाज आ रही थी। शब्द उसे अस्पष्ट-से सुनाई पड़ने लगे। फिर, 'गोपीजनवल्लभाय नमः' यह दशाक्षरी मंत्र उसके कानों में स्पष्ट पड़ने लगा। मंदिर के गर्भ-गृह में जिस तरह गूंजती है, उसी तरह यह आवाज उस कमरे में गूंज रही थी।

उसने आसपास देखा। कहीं कोई नहीं था। कमरे में सब तरफ चंदन की सुगंध महक उठी। चंदन की सुगंध ? वे नित्य चंदन का उबटन मलते हैं। लेकिन वे तो इस समय यहां हैं नहीं। फिर भी चंदन की सुगंध! यानी...यानी...

वह झट-से उठकर बैठ गयी। आंखें बंदकर टोह लेती रही। हृदय की धड़कन की ही तरह वह मंत्रोच्चार उसके कानों में गूंजता रहा, 'गोपीजन-वल्लभाय नमः।'

वह बहुत देर तक उसी तरह बैठी रही। हल्के-हल्के वह आवाज कम होने लगी। फिर विलुप्त हो गयी। पर उसका मन उल्लसित हो गया। एक अनिर्वचनीय दिव्यानुभूति उसे देर तक होती रही।

उसने अपने बदन के आसपास शाल लपेटा और चारपाई के किनारे पर मस्तक रखकर उठ खड़ी हुई।

कुछ दिन बाद, सवेरे विष्णुप्रिया ने पूजा समाप्त की ही थी कि पाठ-शाला के कुछ छात्रों ने दौड़े आकर शुभ समाचार दिये, "आचार्य लौट आये हैं, मां!"

और थोड़ी ही देर में गदाधर पंडित और मुरारी पंडित के साथ निमाई पंडित आया।

आंगन में आते ही 'मां-मां' कहता हुआ वह सीढ़ियां चढ़कर बरा-मदे में पहुंचा और शची मां के चरणों पर उसने अपना मस्तक टिका दिया।

शची मां ने अपने थरथराते हाथों से उसे उठाया और छाती से लगा लिया। उनके नेत्रों से आनंद के अश्रु बह रहे थे।

रसोईघर के दरवाजे में विष्णुप्रिया खड़ी थी। उसने वहीं से गौर हरि की ओर देखा। उसका गौर वर्ण तप्त सुवर्ण की तरह लाल-सा दिखाई द

रहा था। इसके अतिरिक्त उसके तेजस्वी चेहरे पर एक प्रकार की गंभीरता व्याप्त थी।

निमाई पंडित के आने का समाचार पाते ही उससे मिलने के लिए, उसका दर्शन करने के लिए, लोगों का तांता लग गया। सब उससे गया-यात्रा का वर्णन सुनना चाहते थे।

गदाधर पंडित ने सबको तीसरे पहर आने के लिए कहकर उस समय टाल दिया।

तीसरे पहर भीड़ लग गई।

निमाई ने शुरू किया, "गया का वर्णन क्या करूं? धन्य है वह शिला! उस शिला पर प्रभु का पद-चिह्न अंकित है। पर मेरा हृदय उस शिला की अपेक्षा भी कठोर है। मेरे इस पत्थर से भी कठोर हृदय में अभी तक श्रीकृष्ण का पद-चिह्न अंकित नहीं हो रहा है। हे कृष्ण! हे कृष्ण...!"

बोलते-बोलते वह एकदम मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके चेहरे का भाव बदल गया। कोई उसे सचेत करने के लिए हवा झलने लगा। कोई उसके चेहरे पर छींटे मारने के लिए पानी ले आया।

गदाधर पंडित ने सबको इशारे से मना कर दिया।

उधर बरामदे में बैठी शची मां के प्राण मुंह में आ गये। हे भगवान, क्या इसे फिर भावावेश होने लगा!

विष्णुप्रिया ने देखा तो निमाई के चेहरे पर मूर्च्छा का कोई लक्षण नहीं था, उलटे चेहरा और दैदीप्यमान हो गया था।

थोड़ी देर में निमाई ने आंखें खोलीं और उठकर बैठ गया। उसने आसपास एकत्र लोगों की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव पूरी तरह बदल गया था। सभी को ऐसा लगा मानो वह उन पर कृपा-दृष्टि डाल रहा है और गया में शिला पर अंकित विष्णु-पद-चिह्न उसके हृदय में अंकित हो गया है।

तभी गदाधर पंडित ने कहा, "निमाई पंडित, आप गया-यात्रा का वृत्तांत इन लोगों को सुना रहे थे।"

निमाई पंडित एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। फिर उसके होंठों के कोनों पर मंद मुस्कान चमक उठी। उसने कहा, "गदाधर पंडित, गया-

यात्रा में तो आप भी थे। वह सारा वृत्तांत आप ही बताइए। मुझे श्रीवास पंडित ने बुलाया है। उनका दर्शन करने जा रहा हूं। आप सब लोग बाद में वहीं आ जाइए।"

उसने कंधे पर शाल डाला और जल्दी-जल्दी फाटक से बाहर निकल गया।

गदाधर पंडित जाते हुए निमाई की पीठ को विभोर होकर देर तक देखते रहे, फिर सबके आग्रह-अनुरोध पर उन्होंने आरंभ किया :

"निमाई पंडि · का हृदय-परिवर्तन हो गया है। युगों में किसी महा-योगी का भाग्योदय हो, इस तरह विष्णु-पद-चिह्न निमाई पंडित के हृदय पर अंकित हो गया है। वह अपूर्व घटना मैंने अपनी आंखों से देखी है।

"निमाई पंडित के साथ हम सब लोगों ने ब्रह्मकुंड में स्नान किया। फिर पितृ-श्राद्ध आदि धार्मिक कार्य पूरी तरह संपन्न किये। उसके बाद हम सब विष्णु-मंदिर में गए। मध्य भाग में काले चिकने पत्थर का एक हाथ गहरा चौकोन है। वही साक्षात् विष्णु का पादपद्म है।

"हम सबने उस पवित्र पादपद्म पर फूल चढ़ाये। निमाई पंडित की उस पादपद्म की ओर टकटकी लग गई। हाथ में फूलों की माला उसी तरह रखी रही। उनका शरीर कांपने लगा। होंठ थरथराने लगे। दृष्टि उस पद-चिह्न पर स्थित हो गयी। चेहरे पर विलक्षण तेज उभर आया। नेत्रों से अविरल अश्रु बहने लगे। फिर उनके नेत्रों से उस पद-चिह्न पर दिव्य किरणें पड़ीं, केवल एक क्षण के लिए। हमें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। और मैंने सबकुछ प्रत्यक्ष देखा। मैं उनके निकट ही था।

"निमाई पंडित फिर थरथर कांपने लगे। उन्हें संभालने के लिए मैं आगे बढ़ ही रहा था कि भीड़ को चीरता हुआ एक तेजस्वी संन्यासी वहां आया। उसका चेहरा आनंद से खिला हुआ था। उसने निमाई पंडित को संभाला और कसकर अपने आलिंगन में समेट लिया।

"निमाई पंडित क्षणार्ध में सचेत हो गए। उन्होंने उस तेजस्वी संन्यासी की ओर देखा, और झट से उसके चरण स्पर्श कर बोले, 'प्रभो, आज उचित समय पर आपके दर्शन हुए। मैं कृतार्थ हो गया। मेरी यात्रा

सफल हो गयी । तीर्थस्थान में जिसके नाम से श्राद्ध कार्य किया जाता है उसे मुक्ति मिल जाती है । पर आप जैसों के दर्शन दुर्लभ...'

" संन्यासी निमाई पंडित को हाथ पकड़कर उस भीड़ में से रास्ता बनाता हुआ एक ओर ले गया । हम सब अवाक् उनके पीछे-पीछे हो लिये ।

" संन्यासी कह रहा था, 'निमाई पंडित, आज मैं धन्य हो गया । मैं पहले नवद्वीप आया था । उस समय मेरा मन स्वभावतः तुम्हारी ओर आकर्षित हुआ । आत्मा आत्मा को पहचान ले, उसी तरह तुम्हारा हृदय मैं पहचान गया । मैंने 'श्रीकृष्णलीलामृत' ग्रंथ लिखा है । उसे तुम्हें पढ़कर सुनाने की मेरी इच्छा उस समय भी थी और आज भी है ।'

श्रोताओं में से किसी ने कहा, "वे संन्यासी ईश्वर पुरी होने चाहिए । उन्हींने 'श्रीकृष्णलीलामृत' की रचना की है । वे अद्वैताचार्य के गुरु-बंधु हैं और कुछ दिन उनके आश्रम में रह भी गये हैं ।"

"हां, अपने गुरु के इस प्रधान शिष्य को अद्वैताचार्य गुरुतुल्य ही मानते हैं ।" गदाधर पंडित ने आगे कहा, "निमाई पंडित ने ईश्वरपुरी को दूसरे दिन अपने यहां भोजन पर बुलाया । भोजन के बाद हम सब बैठे हुए थे । ईश्वरपुरी मथुरा-वृंदावन का वृत्तांत बता रहे थे । इसी समय निमाई पंडित एकदम हाथ जोड़कर उनके आगे झुक गए, और बोले, 'भगवान्, मुझे भी थोड़ी कृष्ण-भक्ति सिखा दीजिए ।'

"पुरी उनकी ओर एकटक देखते रहे । देखते-देखते जैसे उनकी समाधि लग गयी । वे अपने आपसे ही बोले, 'गौरहरि, आप स्वयं कृष्ण-स्वरूप हैं । आप ही सबको भक्ति सिखाएंगे । कृष्ण-प्रेम का दान आपही से संसारी लोगों को मिलेगा ।'

" उनका हाथ पकड़ कर निमाई पंडित ने कहा, 'पुरी महाशय, ऐसा कुछ भी कहकर आप मुझे टाल रहे हैं । मेरी प्रार्थना सुनिए । मुझे कृष्ण-मंत्र प्रदान कीजिए ।'

" निमाई पंडित, आपको मंत्र दूं, इतनी मेरी योग्यता नहीं । मैं स्वयं अधम हूं । आप-जैसे कुलीन विद्वान ब्राह्मण को मंत्र देने का मुझे अधिकार नहीं । मैं जाति का कायस्थ...'

" 'भगवन्, संन्यासी की कोई जाति नहीं होती । आप सर्वशक्तिमान

हैं। आपका अधिकार कितना श्रेष्ठ है, यह मैं जानता हूं। आप मुझे मंत्र देकर मेरा कल्याण कीजिए।' "

शची मां सब सुन रही थीं। उन्होंने तनिक अधीरता से पूछा, "गदाधर पंडित, गौरहरि ने मंत्र दीक्षा ली ?"

"हां, मां, गया जैसे पवित्र स्थान में शुभ तिथि को श्री ईश्वरपुरी से मंत्र-दीक्षा प्राप्त होना परम भाग्य की बात है। उस समारोह को देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ।"

इसी समय श्रीवास का छोटा लड़का श्याम भीतर आया और बोला, "निमाई पंडित ने सबको श्रीवास घर बुलाया है।"

शची मां के चरण छूकर सब लोग उधर चल दिये।

13

रात को भोजन के बाद रसोईघर का सब काम पूरा कर विष्णुप्रिया बाहर आई। उस समय भी निमाई शची मां के कमरे में बैठा उनसे बातें कर रहा था।

अपने कमरे में आकर उसने रोज की तरह पति का बिस्तर झटककर साफ किया और नीचे चटाई पर बैठकर निमाई के धुले हुए कपड़ों की तह करने लगी। निकट भविष्य में यात्रा का कोई कार्यक्रम नहीं था। इसलिए उन कपड़ों को ठीक से गठरी में बांधकर रख देना चाहती थी।

वह तह करने में खोयी हुई थी कि चंदन की मंद सुगंध ने कमरे में प्रवेश किया। सूर्य के आगमन से पहले जैसे अरुण आता है, उसी तरह यह चंदन की सुगंध थी। उस सुगंध के तुरंत बाद पति के पैरों की आहट उसके कानों में पड़ी। उसका हृदय थरथरा उठा।

वह आकर चारपाई पर बैठ गया। आगे झुककर, उसका हाथ पकड़, अपने समीप बिठाकर, उसने पूछा, "प्रिये, कुशल है न ?"

वह तनिक हंसी। उसके कंधे पर मस्तक रखकर उसने पूछा, "आपकी

यात्रा सफल हुई न ?"

"हां, यात्रा सफल हुई। सारे धार्मिक कार्य मैंने यथाविधि और शांत मन से किये। प्रिये, इसका सारा श्रेय तुम्हें है।"

"मुझे ? सो कैसे ?"

"तुमने मां की खूब सेवा और अच्छी देखभाल की। आगे यदि कहीं जाना पड़ा तो मां की मुझे जरा भी चिंता न रहेगी।"

"और मेरी चिंता ?"

पत्नी को अपनी छाती से लगाकर उसने कहा, "हम दोनों तो अभिन्न हैं। प्रिये ! जो तुम वही मैं; फिर चिंता कैसी ?"

पति के वक्ष पर अपना सिर टिकाये वह उसके हृदय-स्पंदन को सुन रही थी। देखते-देखते उसकी आंखें बंद हो गयीं। उस स्पंदन के साथ अस्पष्ट से शब्द भी सुनाई पड़ने लगे। आसपास चंदन की सुगंध महक रही थी। सर्वत्र सन्नाटा—जैसे उत्तर रात्रि का समय हो। क्रमशः शब्द स्पष्ट हुए और उसके ओठों से सुनाई पड़ने लगा, "गोपीजनवल्लभायनमः--गोपीजनवल्लभायनमः—गोपीजनं..."

वह स्थल और काल की सुध भूल गयी। अपने ही होंठों से ये शब्द निकल रहे हैं, इसका भी होश उसे नहीं रहा।

"प्रिये...प्रिये ! गौरांगे, विष्णुप्रिये, लक्ष्मी, सावधान हो।"

उसके मस्तक पर हाथ फेरता हुआ वह उसे सावधान कर रहा था।

वह सचेत हुई। पति के दृढ़ आलिंगन से मुक्त होकर वह एक ओर सरक कर बैठ गयी। उसने उसकी ओर देखा। उसके अधरों के कोनों पर मृदु मुस्कान प्रकट हुई। उसके नेत्रों का तेज उसके हृदय के मध्य भाग में गया। वह तनिक हंसी और उस पर टिकी हुई अपनी नजर मोड़कर नीचे देखते हुए उसने धीरे-से पूछा, "प्रभो, यात्रा पर जाते समय आपने मुझसे क्या पूछा था, याद है ?"

"हाँ, याद है। पूछा था, तुम्हारे लिए यात्रा से क्या लाऊं ?"

"और मैंने कहा था, आपके चरणों के सिवा मुझे इस दुनिया में दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं। उन्हें ठीक से सुरक्षित और संभालकर वापस ले आइए। पर आपने उनकी क्या दुर्दशा कर डाली है।"

कहते-कहते वह उठी, आले में रखी बादाम के तेल की कटोरी उठा लायी और उन चरणों को अपनी गोद में रखकर उनपर तेल मलने लगी।

आचार्य निमाई पंडित तनिक हंसे। कितनी प्यारी वह हंसी थी।

○

उन्होंने कहा, "ठीक है। चलो, आरंभ करें।"

पाठशाला में दूसरे दिन एक विद्यार्थी ने निमाई पंडित से पूछा, "गुरुजी, 'सिद्धवर्ण सामाम्नाय' का अर्थ बताइए।"

"नारायण सारे वर्णों में सिद्ध वर्ण है।"

"गुरुजी, वर्ण की सिद्धि कैसे होती है ?"

"श्रीकृष्ण के केवल एक दृष्टि-क्षेप से सारे वर्ण सिद्ध हो जाते हैं।"

निमाई पंडित के इन उत्तरों को सुनकर सारे विद्यार्थी अवाक् हो गये। जिनके विद्वत्ताप्रचुर अध्यापन से सारे विद्यार्थी ध्यानमग्न हो जाते थे, वे निमाई पंडित यही हैं क्या ?उनके मस्तिष्क में कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गयी ? ये आज ऐसे उत्तर क्यों दे रहे हैं ?

एक गंभीर विद्यार्थी ने कहा, "गुरुजी, आज आप यह क्या कह रहे हैं ? यह हमारी समझ में नहीं आता। आप शास्त्रीय व्याख्या कीजिए।"

"मैं एक ही शास्त्र नहीं, सारे शास्त्रों का सार बता रहा हूं, किसी भी पंडित से जाकर पूछ लो, वह यही बतावेगा कि सारे शास्त्रों का सार श्रीकृष्ण-पद की प्राप्ति है।"

एक छात्र ने जरा तीव्र स्वर से कहा, "गुरुजी, हम भक्ति की चर्चा नहीं चाहते। हम यहां शास्त्र का अध्ययन करने आए हैं।"

"श्रीकृष्ण का नाम ही सच्चा शास्त्र है। किताबी पंडित मत बनो। प्राणिमात्र का आश्रय-स्थान श्रीकृष्ण ही हैं। इस जग की उत्पत्ति, स्थिति और लय श्रीकृष्ण की इच्छा से ही होते हैं। श्रीकृष्णनाम आनंदधाम है। सर्वसुखनिधान है। इन पोथियों को एक ओर रख दो और श्रीकृष्ण के नाम का भजन करो।"

कहते-कहते निमाई पंडित को भावावेश हो गया और उन्होंने उच्च स्वर से श्रीकृष्ण के नाम का घोष शुरू कर दिया।

○

"निमाईऽऽ, शची मां...क्या कोई घर में है ?"

चौथा पहर था। शची मां बरामदे में बैठी सूत कात रही थीं। विष्णुप्रिया आंगन में बैठी चावल साफ कर रही थी। उसने फाटक की ओर देखा। वृद्ध आचार्य गंगादासजी लाठी टेकते हुए फाटक से भीतर आ रहे थे।

शची मां ने उनका स्वागत करते हुए कहा, "आइए, गंगादासजी, आज बहुत दिनों में पधारे।" पंडित गंगादास विद्वान वैयाकरणी थे। दूर-दूर के विद्यार्थी व्याकरण सीखने के लिए गंगानगर की उनकी पाठशाला में आते थे। पंडित जगन्नाथ मिश्र ने उपनयन के बाद निमाई को इन्हीं की पाठशाला में भेजा था।

गंगादासजी आसन पर बैठ गये और बोले, "वृद्धावस्था हो गयी। अब कहीं आना-जाना नहीं होता। अध्यापन-कार्य से निवृत्त हो जाने के पश्चात् मैंने बाहर जाना छोड़ दिया है। दृष्टि भी थोड़ी मंद हो गयी है। क्या निमाई घर में नहीं है ?"

"जी नहीं, श्रीवास के घर गया है।"

"मैंने भी सुना है कि रोज श्रीवास के घर भजन के लिए जाता है। वहां ढोल-मंजीरा बजाने में अपनी बुद्धि और समय का व्यर्थ अपव्यय करता है। आजकल अध्यापन में उसका मन नहीं लगता। उसकी पाठशाला के विद्यार्थी मेरे पास शिकायत लेकर आये थे कि आचार्य निमाई पंडित नियम से पाठशाला नहीं आते और शास्त्र पढ़ाने के बजाय श्रीकृष्ण-भक्ति की महिमा गाया करते हैं। शची मां, ये लक्षण अच्छे नहीं।"

शची मां कुछ कहने जा रही थीं कि निमाई पंडित फाटक से भीतर आता हुआ दिखाई दिया। आचार्य गंगादास को देखते ही दौड़ कर उसने गुरुजी की चरण वंदना की।

उसकी विनम्रता और गुरुभक्ति देखकर गंगादास गद्गद हो गए। उन्होंने वात्सल्य से उसे अपने आलिंगन में कस लिया, और उसके मस्तक पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया।

निमाई ने नम्रतापूर्वक कहा, "भगवन्, आज मेरा परम भाग्य कि आपके दर्शन हुए। आपकी आज्ञा हुई होती तो मैं ही आपके दर्शन के लिए चला आता। इस वृद्धावस्था में आपने इतने दूर आने

का कष्ट..."

"निमाई, बात सच है। आजकल चलना मुझसे होता नहीं। दृष्टि भी मंद होती जा रही है। फिर भी, विशेष उद्देश्य से यहां आया हूं।"

"गुरुजी, आज्ञा कीजिए।"

"निमाई, तेरे पिता ने तुम्हें मेरे हाथों सौंपा था। तुम्हें देखते ही मेरे हृदय में वात्सल्य उमड़ पड़ा था। अभी भी मैं तुम पर पुत्रवत् प्रेम करता हूं। तुम जानते हो कि मेरे सब विद्यार्थियों में तुम मुझे अत्यंत प्रिय थे। पुत्र के मुंह पर उसकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे उसकी आयु कम हो जाती है। पर सत्य बात आप-ही-आप मुंह से निकल पड़ती है।

" निमाई, मेरी पाठशाला का नाम तूने उज्ज्वल किया। तेरे कारण मेरी पाठशाला की कीर्त्ति सर्वत्र फैली। अपने प्रकांड पांडित्य से तूने मेरा नाम ऊंचा कर दिया।"

आचार्य के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर निमाई की गर्दन झुक गयी। लज्जा से उसका चेहरा लाल हो गया।

उधर आचार्य अपनी ही रौ में बहे जा रहे थे, "निमाई, अध्ययन पूर्ण हो जाने पर छोटी उम्र में पाठशाला खोलकर अध्यापन का कार्य तूने शुरू किया। थोड़े ही दिनों में तेरी ख्याति फैल गयी। दूर-दूर के विद्यार्थी तेरी पाठशाला में आने लगे। तेरे विद्यार्थियों को दूसरे किसी का भी अध्यापन पसंद नहीं आता। लेकिन कल तेरे विद्यार्थी मेरे पास आकर दुःखित मन से कह रहे थे कि आजकल पाठशाला में तुम ठीक से नहीं पढ़ाते। पढ़ाते-पढ़ाते बीच ही में श्रीकृष्ण के गीत शुरू कर देते हो, तालियां बजाकर भजन करते हो, विभोर होकर नाचने लगते हो। निमाई, एक प्रकांड पंडित को—एक ख्यातनामा अध्यापक को, ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।

"निमाई, मैंने यह भी सुना है कि तू श्रीवास के घर भजन-मंडली में डूबा रहता है। ये धूर्त लोग, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ईश्वर के नाम से मंजीरे बजाते, मृदंग ठोकते और गला फाड़कर चिल्लाते हैं। यह सब ढोंग हैं। तुम्हें इसकी क्या आवश्यकता। तुम स्वयं विद्वान हो। फिर ऐसी मूर्खता क्यों करते हो। ? तेरे मस्तिष्क में यह व्यर्थ का पागलपन कहां से घुस गया ?"

निमाई ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप गर्दन झुकाये बैठा रहा।

गंगादासजी ने आगे कहा, "निमाई, तेरे नाना नीलांबर चक्रवर्ती प्रसिद्ध पंडित थे। तेरे पूज्य पिताश्री भी पंडित थे। तेरे मातृ और पितृ दोनों कुलों में परंपरा से पांडित्य चला आ रहा है। तेरी विद्वत्ता देखकर ही सनातन मिश्र जैसे राजपंडित ने अपनी लक्ष्मी समान रूप गुणवती कन्या तुम्हें दी। नवद्वीप के सारे विद्वान तेरा सम्मान करते हैं। विद्यार्थियों में तू अत्यंत लोकप्रिय है। यह सब होते हुए तुम्हें भजन-मंडली के साथ रहने की कुबुद्धि कैसे सूझी ? अध्यापक का पद प्राप्त होने के लिए कितने पूर्व जन्मों का पुण्य चाहिए, क्या यह तुम नहीं जानते ? अरे, बोलते क्यों नहीं ? तेरे मन में क्या है, कम-से-कम यह तो बता दो।"

निमाई ने धीरे-से गर्दन उठाई और हाथ जोड़कर कहा, "गुरुजी, आपका उपदेश मेरे सिर आंखों पर। आपकी आज्ञा का पालन करने का मैं पूरा प्रयत्न करूंगा। पर..."

"पर क्या ?"

"कभी-कभी मेरा मन मेरे अधिकार में नहीं रहता। विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते कुछ दूसरे ही शब्द मेरे मुंह से निकल पड़ते हैं। कब और कैसे निकल पड़ते हैं, यह मैं स्वयं ही नहीं समझ पाता।"

"घबराओ नहीं, बेटा, सबकुछ ठीक हो जायगा। तुम जैसे पंडित को अपना मन स्थिर रखना चाहिए।"

निमाई थोड़ी देर चुप रहा, फिर अत्यंत विनम्रता से उसने कहा, "आचार्य, मेरे स्थिर मन में श्रीकृष्ण की ही मूर्ति विराजमान हो गयी है। अब दूसरी किसी भी बात पर मेरा मन जम नहीं पाता।"

"निमाई पंडित..."

"भगवन्, अध्यापकी के अंत होने का समय आ गया है। अब 'पंडित' उपाधि गलकर गिर पड़े और इच्छित हेतु साध्य हो, ऐसा मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

बोलते-बोलते, ज्ञान का पहला पाठ पढ़ाने वाले अपने तपोवृद्ध, ज्ञान-वृद्ध गुरुजी को उसने साष्टांग प्रणिपात किया।

उसके मस्तक का उनके चरणों को अस्पष्ट-सा स्पर्श होते ही गुरुजी के हृदय में अनभूत दिव्य लहरें उठने लगीं। वे विरोधी विचार लेकर उपदेश देने आये थे, यह भी वे भूल गए। उसके मस्तक पर अपना थरथराता हुआ हाथ रखकर उन्होंने कहा, "गौरहरी, तथास्तु।"

१४

निमाई पंडित का अध्यापन समाप्त हो गया। इसके साथ ही 'निमाई पंडित' नाम भी जाता रहा। अब वह 'गौरहरी' हो गया। भक्ति और ज्ञान एकरूप हो गये। निर्गुण निराकार भाव, सगुण साकार हो गया। अंधश्रृद्धा को जाग्रति भक्ति का और व्यापक शक्ति का स्वरूप प्राप्त हो गया।

श्रीवास का घर भजनों का केन्द्र स्थान बन गया। रोज रात को मुख्य-मुख्य वैष्णव भक्त वहां एकत्र होते। श्रीकृष्ण मूर्त्ति की पूजा और आरती के बाद मुख्य द्वार बंद हो जाता और भजन शुरू हो जाते। झांझ, मजीरे, मृदंग और तालियां एक स्वर और एक लय में बजने लगतीं। भजन की आवाज चारों दीवारों से बाहर निकलकर आसपास गूंजने लगती। भजन के रंग में रंगे भक्तों को सुध ही न रहती कि रात समाप्त होकर बाहर अरुणोदय हो गया है।

श्रीवास के घर श्रीमद्भागवत का सप्ताह चल रहा था। उसकी आज पूर्णाहुति थी। उनके घर निरंतर सप्ताह-पाठ चलता रहता था।

माघ मास हाल ही में शुरू हुआ था। माघ मास में श्रीमद्भागवत के साप्ताहिक पारायण का विशेष महत्त्व और पुण्य होता है। इसलिए शची मां भी रोज भागवत सुनने जाती थीं।

आज भी वे गंगाकाकी के साथ श्रीवास के घर आईं। सीतादेवी ने उनका स्वागत कर उन्हें नित्य के स्थान पर बिठा दिया। पूजा, आरती और महाप्रसाद के कार्यक्रम समाप्त हुए।

अब भक्तों ने भजन के लिए बैठक जमाई। मृदंग, झांझ, मंजीरे वगैरह वाद्य लाकर रखे गये। कमरे में वैष्णव श्रोताओं की भीड़ लगी थी। भीतर के कमरे के द्वार के सामने स्त्रियां बैठी हुई थीं। भजन की बैठक पर श्रीवास, मुरारी, गदाधर, मुकुंद, वासुदेव, पुंडलीक और अन्य भक्त थे। बीच में गौरहरी आकर बैठा। बारीक लाल किनारी की धोती पहने हुए था। बदन पर लाल किनारी का सफेद उत्तरीय था। काले केशों की लटें कंधे पर लहरा रही थीं। महाप्रसाद सेवन करने के बाद पान खाने के कारण होंठ लाल हो गये थे। चेहरा किंचित गंभीर, किंतु अत्यंत प्रसन्न था। शची मां अपने पुत्र की ओर एकटक देख रही थीं।

मृदंग पर थाप पड़ी और श्रीवास के अनुरोध पर गौरहरी ने पुष्पों से सुशोभित कृष्ण की मूर्त्ति की ओर हाथ जोड़कर देखते हुए भजन आरंभ किया—'अनाथ बंधो ! करुशीक सिंधो !'

धीरे-धीरे भजन पर रंग चढ़ा। वाद्यों की गूंज बढ़ी। भक्तों का स्वर ऊंचा हुआ। कृष्ण नाम का घोष आसपास गूंजने लगा। और सहसा गौरहरी खड़ा होकर नृत्य करने लगा। उसके साथ सारी भजन-मंडली भी खड़ी हो गयी। गौरहरी के साथ वे भी विभोर होकर नाचने लगे। चपल गति से नृत्य कर रहे गौरहरी पर नजर नहीं ठहर रही थी।

शची माँ अपने पुत्र के नृत्य को टकटकी लगाये देख रही थीं। चंदन की सुगंध सब तरफ फैल रही थी। सामने उन्हें पुरी मंदिर के गर्भ-कक्ष की बलराम-कृष्ण मूर्त्तियां दीख रही थीं। कृष्ण मूर्त्ति पर उनकी नजरें टिक गईं। उन्हें लगा, जैसे वही मूर्ति सामने भजन करने वाले भक्तवृंदों में नाच रही है। क्षण में बड़ी हो जाती है, क्षण में बाल रूप धारण कर लेती है।

"शची मां...शची मां...अपने पुत्र की यह अलौकिक भक्ति देखो ? कितना तल्लीन होकर नाच रहा है ?"

गंगाकाकी की आवाज सुनकर शची मां होश में आईं। सामने उनके गौरहरी को गदाधर और मुरारी पकड़े हुए थे। अब सारे वाद्य बंद हो गये थे। गौरहरी के सर्वांग से पसीना चू रहा था। बालों की लटें बिखर गयी थीं। चेहरा लाल-लाल और विलक्षण तेजस्वी दिखाई दे रहा था। कोई उसे

पंखे से हवा झल रहा था। कोई महीन वस्त्र से उसका शरीर पोंछ रहा था।

इसी समय श्रीवास सुगंधित पुष्पहार लेकर आगे बढ़े। उनके नेत्रों से आनंदाश्रु बह रहे थे। गौरहरी के गले में हार पहनाकर उन्होंने कहा, "प्रभो, आज मैं धन्य हो गया। मुझे श्रीमद्‌भागवत के पारायण की फलश्रुति हुई। अपने इष्टदेव का साक्षात दर्शन हो गया।"

बोलते-बोलते उनका कंठ भर आया और झुककर उन्होंने गौरहरी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

इसी समय गौरहरी ने उन्हें उठाया और कहा, "वंदनीय, भक्तश्रेष्ठ, आप यह क्या कर रहे हैं ? आप मेरे लिए पिता के समान हैं। मैं आपका बालक..."

ऐसा कहते हुए गौरहरी ने उनके चरणों पर अपना सिर टिका दिया।

○

शची मां तुलसी की पूजा में निमग्न थीं कि गदाधर फाटक से भीतर आया और बोला, "मां, प्रभु ने खबर भेजी है कि अवधूत नित्यानंद को लेकर वे यहां आ रहे हैं। नित्यानंदजी आज यहीं भोजन करेंगे।"

आजकल गौरहरी के सारे अंतरंग मित्र उसे 'प्रभु' कहकर संबोधित करने लगे थे और स्वयं को वे प्रभु के अंतरंग भक्त मानते थे।

शची मां ने पूछा, "ये अवधूत नित्यानंद कौन हैं ?"

"वे कौन हैं, कहां के हैं, इसका अभी तक हमें भी पता नहीं चला।"

शची मां ने पूजा समाप्त की। विष्णुप्रिया रसोई की तैयारी में लग गयी।

गदाधर ने आंगन में बरगद की छाया तले दो बड़ी चटाइयां बिछा दीं और कुछ चीजें लाने के लिए बाजार चल दिया।

घंटे भर आंगन में प्रतीक्षा करने के बाद गदाधर ने चिल्लाकर कहा, "मां...मां...प्रभु आ गए। नित्यानंद को ले आए।"

शची मां बरामदे में आईं। गौरांग के साथ लंगोटी पहने, घुटे सिर, सत्ताईस-अट्ठाईस साल की उम्र का एक गोरा सुंदर तेजस्वी संन्यासी

भीतर आ रहा था। उन दोनों के पीछे-पीछे नंदनाचार्य थे।

शची मां की नजर उस संन्यासी पर जम गयी। उनके हृदय की गहराई में वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ा। पूर्व स्मृतियां एकाएक जाग उठीं। यह कहीं विश्वरूप तो नहीं ? उसी के समान दीखता है। वही सुंदर रूप, वही तेज ! क्या इतने वर्षों के बाद वह आज लौट आया है ? दोनों भाई कैसे शोभादायक दिखाई दे रहे हैं, जैसे कृष्ण-बलराम ही हों। यह...यह..."

"मां...मां...ये हैं नित्यानंद महायोगी।"

नित्यानंद ने शची मां के चरण छूकर कहा, "मां, आप मुझे आशीर्वाद दें।"

शची मां ने गद्‌गद होकर वात्सल्य-भरे स्वर में कहा, "मेरे गौरांग का नित्य सहायक होकर रह।"

"मां, यही आशीर्वाद मैं चाहता हूं। आपकी आज्ञा मेरी सिर-आंखों पर।"

जलपान करते हुए गौरांग ने नित्यानंद से कहा, "प्रभो, आज आपके दर्शन से हम धन्य हो गए, नहीं तो आपके समान सर्वसंगपरित्यागी अवधूत के दर्शन, घर-बैठे हम जैसे संसारी लोगों को कैसे हो सकते थे ?"

नित्यानंद गौरांग की ओर एक क्षण के लिए देखते रहे। फिर किंचित् हंसे और अपने आप डोलने लगे। डोलते-डोलते नेत्र बंद करके अस्फुट स्वर से कहने लगे, "अद्‌भुत है कृष्ण, संसार में रहकर भी कमल पत्र के समान अलिप्त अवधूत रहता है। अवधूतों का अवधूत है कृष्ण !..."

कहते-कहते भावावेश में तालियां बजाने लगे। गौरांग ने उनके हाथ पकड़ लिये और सावधान किया, "नित्यानंदजी, सचेत हो जाइए।"

उनका स्पर्श होते ही नित्यानंद ने आंखें खोल दीं। उनके चेहरे के भाव बदल गए। वे पूर्व स्थिति में आ गए और चुपचाप जलपान करने लगे।

जलपान समाप्त होते ही गौरांग उठकर खड़े हो गए और बोले, "चलिए, अवधूत। श्रीवास आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मां, भोजन तैयार होते तक हम वहां हो आते हैं। भोजन के लिए श्रीवास भी आयंगे।"

उन्होंने नित्य नियमानुसार मां के चरण छुये। नित्यानंद ने भी उनका अनुकरण किया। फिर दोनों बाहर निकल गये।

शची मां दोनों की ओर देखती रहीं। उन्हें लगा, जैसे निमाई के साथ विश्वरूप ही जा रहा हो। बोलीं, "इसे देखने के बाद से मेरे मन में यही आ रहा है कि निमाई का भाई विश्वरूप ही निताई (नित्यानंद) के रूप में आया है।"

"मां, बिलकुल ठीक कहा आपने। नित्यानंद के गांव में सब लोग उन्हें 'निताई' नाम से ही संबोधित करते हैं। निमाई का भाई निताई!"

और फिर सबके आग्रह पर वंदनाचार्य ने नित्यानंद का अद्‌भुत चरित्र सुनाया :

"वीरभूमि जिले के चाका गांव में हाडाई ओझा और पद्मावती देवी के यहां इनका जन्म हुआ। चाका गांव में मोडेश्वर का प्रसिद्ध शिवलिंग है। विष्णु भक्त होते हुए भी ओझा दंपति शिवोपासक हैं और नित्य मोडेश्वर की पूजा करते हैं।

"ओझा-परिवार में खाने-पीने की कमी नहीं थी, पर घर में कोई बाल-बच्चा नहीं था। एक रात पद्मावती देवी को सपना आया कि तुम्हारे गर्भ से एक महापुरुष का जन्म होने वाला है। उचित समय पर पुत्र जन्म हुआ। नाम रखा नित्यानंद।

"हाडाई पंडित साधु-भक्त हैं। उनके घर नित्य साधु-संतों का आना-जाना लगा रहता है। एक दिन एक युवा संन्यासी उनके पास आया। हाडाई पंडित उस युवा संन्यासी की विद्वत्ता, संस्कारिता, तपस्या, गंभीरता और तेजस्विता देखकर प्रभावित हो गए। उन्होंने उसे आग्रहपूर्वक दो दिन अपने यहां रख लिया।

"हाडाई पंडित के आदर-भाव से वह संन्यासी प्रसन्न हो गया। उसने कहा, 'पंडितजी, मैं आपसे एक भिक्षा मांगता हूं। क्या आप देंगे?'

"हाडाई पंडित ने कहा, 'भगवन्, अपने प्राणों की अपेक्षा मनुष्य को अधिक कुछ भी प्रिय नहीं होता। आपकी आज्ञा हो तो अपने प्राणों की भिक्षा देने के लिए भी मैं तैयार हूं।'

"संन्यासी बोले, 'पंडितजी, आपके प्राणों की अपेक्षा भी प्रिय वस्तु

आपका यह ज्येष्ठ सुलक्षणी पुत्र निताई मुझे दे दीजिए। चारों दिशाओं की यात्रा करने की मेरी इच्छा है। मैं एक साथी चाहता हूं।'

" संन्यासी की बात सुनकर हाडाई पंडित सन्नाटे में आ गए। लेकिन वचन दे चुके थे। पत्नी को किसी तरह समझा-बुझाकर अपने वचन का पालन किया।

" वह युवा तेजस्वी संन्यासी बारह वर्ष के नित्यानंद को लेकर चल दिया। उसके साथ निताई ने बद्रीनाथ से लेकर सेतुबंध रामेश्वर, द्वारका-पुरी, जगन्नाथ पुरी—चारों धामों की यात्रा की। पुनः वृन्दावन आया। एक दिन वह तेजस्वी संन्यासी कहां विलुप्त हो गया, इसका पता ही न चला। विलुप्त होने की पिछली रात उस संन्यासी ने निताई से कहा था, 'जा। कार्य कर।'

" कहां जाकर कौन-सा कार्य करना है, इस विषय में उसने कुछ भी नहीं बताया। तब से घूमता-फिरता नित्यानंद संन्यासी आज हमारे गांव के घाट पर निकल आया।"

१५

विष्णुप्रिया आंगन में लीपकर रांगोली कर रही थी। लाल किनारी की फीके नीले रंग की साड़ी पहने हुए थी। खुले गीले केश पूरी पीठपर फैले हुए थे। सूर्य अभी-अभी ही निकला था। वट वृक्ष की शाखाओं में से सूर्य की कोमल किरणें उसके शरीर पर पड़ रही थीं। विष्णुसहस्रनाम जपती हुई वह रांगोली करने में तल्लीन थी। एक अलौकिक दिव्य प्रभा उसके सर्वांग पर फैली हुई थी।

इस दिव्य दृश्य को कांचना फाटक में खड़ी हुई बड़ी देर से एकटक देख रही थी। लगभग ग्यारह महीनों के बाद वह विष्णुप्रिया से मिलने आयी थी।

निमाई पंडित गौरहरी से गौरांग प्रभु हो गये, यह उसने सुना था और

उनकी वैष्णव भक्ति की ख्याति तो वह मथुरा-वृन्दावन में ही सुन चुकी थी। जिस नवद्वीप की प्रसिद्धि पहले विभिन्न शास्त्रों की पाठशालाओं के कारण थी, अब वह वैष्णव भक्ति के केंद्र और गौरांग प्रभु के धाम के रूप में जाना जाने लगा था।

रांगोली करने में तल्लीन विष्णुप्रिया के बाल आंखों और चेहरे पर उतर आये थे। उसने बालों को हटाने के लिए चेहरा तनिक उठाया तो दृष्टि अनायास फाटक की ओर चली गयी। वहां दाहिने हाथ में सामान से भरा झोला लिये कांचना को खड़े देख अनपेक्षित आनंद से पुकार उठी, "कांचना दीदी !" और रांगोली तथा रंग की थाली नीचे रख फाटक की ओर दौड़ पड़ी।

"दीदी, दीदी, बिलकुल सूर्य की तरह उदित हुई है ! सूर्य ग्यारह-साढ़े ग्यारह घंटे के बाद उदित हो जाता है, तू साढ़े ग्यारह महीने के बाद उदित हुई है।"

कांचना के हाथ का भारी झोला उसने ले लिया और अपनी दीदी पर आपाद-मस्तक नजर डाली। कांचना मूलतः श्याम वर्ण की थी, जो अब काफी काला पड़ गया था। परंतु उस कालेपन पर एक निराली तेज और एक निराली चमक चढ़ गयी थी। उसकी नित्य की निर्मल और स्निग्ध आंखों में शांत भाव दीख रहा था। वह शरीर से थोड़ी कृश हो गयी थी। सफेद किनार की साड़ी उसकी देह पर थी। मस्तक और पीठ पर का आंचल गीले खुले केशों से भीग गया था।

"यात्रा से कब लौटीं ?"

"आठ दिन हो गए। एक साल तक वीरान पड़ी हुई अपनी धर्मशाला यानी आश्रम की सफाई करने में ही सात दिन बीत गए। कल दोपहर को श्रीवास के घर मालती देवी को उनकी चीजें और प्रसाद देने गयी थी।" उन्होंने आग्रह से मुझे वहीं रोक लिया। सुबह उनके साथ घाट पर नहाने गयी और नहाकर सीधी यहां आ गयी। मां कहीं दीख नहीं रही हैं ? घाट पर गयी हैं क्या ?"

"हां, सुबह घाट पर जाने का उनका नियम अभी भी अखंडित है। घाट पर स्नान, फिर मंदिर में देव-दर्शन करके धीरे-धीरे लौटती हैं। वृद्धा-

वस्था के कारण उनसे अब अधिक चला नहीं जाता। परंतु उनके लगातार चलने वाले व्रतों में कोई परिवर्तन नहीं है।"

यह कहते हुए उसने रंग-रांगोली की थाली उठाई और बोली, "चल, भीतर। मेरी रांगोली पूरी हो गई।"

दोनों रसोई घर में गयीं। विष्णुप्रिया ने एक पीढ़ा लाकर रख दिया। कांचना उस पर बैठ गयी। उससे बातें करते-करते विष्णुप्रिया ने चूल्हे में लकड़ियां सरकाईं और दूध का वर्तन चूल्हे पर चढ़ाया।

कांचना ने कहा, "निमाई पंडित, अरे नहीं, गौरांगप्रभु का क्या समाचार है ?"

"प्रभु कुशल हैं। तू कहां-कहां की यात्रा कर आयी, यह बता ! और देख बिना भोजन कराये तुझे मैं जाने नहीं दूंगी।"

कांचना ने हंसकर कहा, "अतिथि भोजन करके तृप्त हुए बिना नहीं जायगा।"

"तो यह गरम दूध ले और यात्रा का सारा हाल बता। मैं काम करते-करते सुनती हूं।"

कांचना ने झोले से एक-एक चीज बाहर निकालते हुए कहा, "काशी से यह गंगा लायी हूं।" और उसने तांबे का एक सीलबंद लोटा उसके सामने रखा।

फिर वृन्दावन से लायी हुई राधाकृष्ण की एक मूर्ति निकालकर उसके सामने रखी। काले चिकने घुटे हुए पत्थर की वह मूर्ति अत्यंत सुडौल और सुंदर थी। चेहरे के भाव बड़े मनोहर थे। आंखें मुखर थीं।

विष्णुप्रिया ने वह मूर्ति हाथ में उठा ली। एकटक उसकी ओर देखती रही, फिर बोली, "दीदी, वृन्दावन मैं प्रत्यक्ष रूप से नहीं गयी, फिर भी..."

कांचमा ने बीच ही में कहा, "अब तो राधाकृष्ण सहित वृन्दावन यहीं आ गया है। सारे भक्तगण कहते हैं कि गौरांगप्रभु ने नवद्वीप में दूसरा वृन्दावन निर्मित कर दिया। ज्ञान की गंगा पर भक्ति का बाग खिला रहे हैं।"

"जब से गया-यात्रा से लौटकर आये हैं, उनमें बहुत परिवर्तन हो गया है। धर्म ग्रंथ पढ़ते हैं और बार-बार कहते हैं कि ज्ञान में भाव न हो तो वह ज्ञान व्यर्थ है। ज्ञान और भक्ति धर्म के दो नेत्र हैं।"

"बिलकुल सच है, री। अद्वैताचार्य भी कहते हैं कि ज्ञान धर्म का उद्गम स्थान है। पर भक्ति के बिना धर्म नहीं टिकता, समझी? और यह रहा सभी यात्रा-स्थानों का प्रसाद।" कांचना ने बहुत सी पुड़ियां झोले से बाहर निकालीं।

इसी समय बाहर शची मां की पुकार सुनाई दी, "बहू..."

विष्णुप्रिया झट से उठकर बाहर गयी। मां के कंधे पर पड़े धुले वस्त्र और हाथ का लोटा उसने ले लिया।

इसी समय कांचना बरामदे से नीचे आंगन में आई और उसने शची मां के चरण छुए।

मां ने उसे आशीर्वाद देकर हंसते हुए कहा, "कांचना, वयोवृद्ध व्यक्ति की अपेक्षा तीर्थ-यात्रा करके आया हुआ मनुष्य अधिक वंदनीय होता है। अभी घाट पर गायत्री वैष्णवी मिली थी। कह रही थी, तुम लोगों ने काफी यात्रा की।"

"हां, मां, जितना देखते बना, देख लिया।"

मां आंगन में सीढ़ियों पर बैठ गयीं और कांचना से यात्रा का वृत्तांत सुनने लगीं।

विष्णुप्रिया ने पूजा की सामग्री तुलसी वृन्दावन के पास लाकर रख दी। मां के लिए वहां आसन बिछा दिया और उनकी पोथी दूसरे छोटे आसन पर रख दी।

शची मां ने कहा, "बहू, तू अब बैठकर कांचना के साथ बातें कर। आज गौरहरी खाने नहीं आयेगा, इसलिए रसोई विशेष कुछ बनाना नहीं है। वहां मैं देख लूंगी।"

विष्णुप्रिया ने कहा, "मां, दीदी झोला भरकर प्रसाद ले आई है सारे तीर्थ-स्थानों का, इसलिए मैं सिर्फ चावल बनाऊंगी।" और कांचना को लेकर वह अपने कमरे में चली गयी।

चंदन की मंद सुगंध से गमक रहे उस कमरे का बाह्यांग तो अधिक

नहीं बदला था, परंतु अंतरंग पूरी तरह बदल चुका था। आले में विभिन्न शास्त्रों की पुस्तकें पहले की ही तरह करीने से रखी हुई थीं। पहले खूंटियों पर सिर्फ वस्त्र रहा करते थे। अब कुछ खूंटियों पर मृदंग, झांझ, मंजीरे इत्यादि सायुज्य भक्ति के साधन भक्तों के गलों और हाथों की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले यह कमरा एक प्रखर पंडित का लगता था, अब वही वृन्दावन गोकुल के किसी मंदिर के कमरे जैसा दिखाई दे रहा था।

विष्णुप्रिया ने कांचना का हाथ पकड़कर चारपाई के पास बिछी हुई चटाई पर बिठा दिया, और वहां रखे एक खुले ग्रंथ के भीतर चिह्न के लिए पीपल का एक सूखा पत्ता दबाकर चारपाई पर रख दिया।

"कौन-सा ग्रंथ पढ़ती है ? श्रीमद्भागवत है क्या ?"

"नहीं, श्रीकृष्ण की भगवद्गीता पढ़ती हूं। प्रभु की इच्छा है कि मुझे यह ग्रंथ बीच-बीच में नित्य पढ़ना चाहिए।"

"पर समझना बहुत कठिन है।"

"कठिन तो है। मायके में मैंने एक दो बार गीता सुनी थी। पर अब प्रभु समझाकर बताते हैं।"

कांचना ने कहा, "गीता में भगवान श्रीकृष्ण का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है, उनके कार्य और अवतार का उद्देश्य ध्यान में आ जाता है। कौन-सा अध्याय चल रहा है तेरा ?"

विष्णुप्रिया ने चारपाई पर से ग्रंथ उठाकर चिह्न लगा हुआ पृष्ठ खोला और कहा, "मैं कल रात यह श्लोक पढ़ रही थी :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

"प्रभु मुझे इस श्लोक का अर्थ समझाकर बता रहे थे।"

कांचना ने आश्चर्य से पूछा, "कब बता रहे थे ?"

"कल रात।"

कांचना ने आश्चर्य से पूछा,

"कल रात ? पर कल रात तो श्रीवास के घर भजन था। प्रभु कल रात वहां थे।"

"वहां रोज रात में भजन होता है। प्रभु रोज भजन करने जाते हैं।"

"कल रात प्रभु घर किस समय आए?"

कांचना के नित्य के शांत स्वर में विलक्षण उत्सुकता थी। विष्णुप्रिया को मजाक करने की सूझी। उसने हंसकर कहा, "दीदी, तू वैष्णवी होकर हम गृहस्थों की गहन रात में प्रवेश करने लगी।"

कांचना एकदम झेंप गयी और चकित भी हुई। सारी रात वह मालती देवी के साथ बैठी भजन सुनती रही थी। उस समय प्रभु वहीं थे। उसने उन्हें देखा था। और विष्णुप्रिया कहती है कि वे रात में आये और इसे गीता का श्लोक समझाया...

कांचना के झेंपे हुए चेहरे पर असमंजस की छाया गहराते देख विष्णु-प्रिया को लगा कि मेरी बात से दीदी का मन शायद दुःखित हो गया है। मृदु स्वर में बोली, "दीदी, भजन में लीन प्रभु के घर आने का समय भी कहां निश्चित है? कभी समय पर आ जाते हैं, कभी बहुत देर से आते हैं तो कभी आज प्रभु नहीं आयंगे, ऐसा गदाधर के हाथ संदेशा आ जाता है। समय पर आ गए तो रसोईघर में बैठकर भोजन करते हैं, मां से थोड़ी देर बातें करते हैं और फिर यहां मेरा अध्ययन होता है। देर से आए तो मालती मां उन्हें प्रसाद की पुड़िया दे देती हैं। मां की नींद न टूटे, इसलिए हम दोनों का यही सहभोजन होता है। ऐसे समय प्रभु बहुत थके हुए होते हैं। इसलिए मैं अनुरोध करती हूं, आप अब सो जाइए। मुझसे थोड़ी चरण सेवा हो जाने दीजिए। लेटे-लेटे ही मुझे बताइए। आपको तो सारी गीता कंठस्थ है।

"कल रात भी यही हुआ। प्रभु बहुत देर से आए। मैं ऊंघ रही थी। पर चंदन की तेज महक ने मुझे जगा दिया, उनके हाथ में नित्य की भांति प्रसाद की पुड़िया थी। हमारा सहभोजन हुआ। मैंने लेटने का अनुरोध किया और उनके चरण दबाने लगी, वे मुझे 'ये यथामां प्रपद्यन्ते' का अर्थ समझाने लगे। सुनते-सुनते कब नींद लग गयी, पता ही नहीं चला। सवेरे जागी तो प्रभु जा चुके थे...।"

कांचना का विस्मय और भी बढ़ गया। फिर भी उसने किंचित हंस-कर कहा, "विष्णुप्रिये, अंत में तू अपनी वैष्णवी दीदी को गृहस्थों की

गहन रात्रि में घुमा ही लायी।"

भोजन के बाद विष्णुप्रिया रसोईघर का काम पूरा करने लगी। कांचना उसके कमरे में थोड़ा आराम करने के लिए चटाई पर लेट गयी और उधेड़बुन करने लगी। सब तरह से सोचकर भी यह बात उसके गले उतर नहीं पाती थी कि गौरांग प्रभु रात में घर लौटे, विष्णुप्रिया के साथ भोजन किया और उसे गीता के श्लोक का अर्थ समझाया। रात-भर वह श्रीवास के घर में रही और अपने कानों से गौरांग प्रभु के भजन-कीर्तन सुने। जितना सोचती थी, यह गुत्थी उतनी ही उलझती जाती थी।

जाने कितनी देर वह इन्हीं विचारों में खोयी रही। अंत में विष्णुप्रिया काम पूरा करके अपने कमरे में आई। मुंह से वह धीरे-धीरे श्लोक गुनगुना रही थी, "ये यथा मां प्रपद्यंते..."

उसकी आहट पाते ही कांचना ने आंखें खोलीं और उठकर बैठ गयी।

विष्णुप्रिया ने कहा, "अरी, यह क्या? इतनी जल्दी उठ गयी? नींद आई या नहीं?"

"नींद भी आयी और एक चमत्कार भी देखा।"

"कौनसा चमत्कार?"

"एक ही व्यक्ति को एक ही समय अनेक स्थानों में।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "हां, ऐसा भी होता है। रात में प्रभु ने गीता का श्लोक समझाते हुए कहा था कि भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मेरा भक्त जिस स्वरूप में मेरा स्मरण करता है, उस स्वरूप में मैं साक्षात उसके सामने खड़ा हो जाता हूं। इसलिए दीदी जब एक ही समय अनेक भक्त अपने-अपने इष्टदेवों के रूप में उसका स्मरण करते हैं तो वह एक ही समय सभी को अलग-अलग रूपों में दिखाई देगा ही।"

चौथे पहर शची मां के चरण छूकर और विष्णुप्रिया को एक दिन ले जाकर अपना आश्रम दिखाने का वादा कर कांचना चली गयी। उसके खाली झोले में वाड़ी की सब्जियां, केले और पोहे ठूंस-ठूंस कर भर दिए गए थे।

उतरती धूप में अपने द्वार पर खड़ी विष्णुप्रिया देर तक कांचना दीदी की पीठ की ओर देखती रही। जब वह ओझल हो गयी तो जैसे ही घर में

जाने को मुड़ी किसी बालिका स्वर ने पुकारा, "प्रिया दीदी !"

घूमकर देखा तो शुभा की आठ वर्षीया बहन कणिका पास खड़ी थी। उसने लहंगे में छिपाकर रखा एक पत्र बाहर निकाला और विष्णुप्रिया को देकर कहा, "दीदी ने यह पत्र तुम्हें देने को कहा है। उसने कहा था कि तुम्हारे सिवा और किसी को भी यह पत्र न दूं।" पत्र उसको थमाकर कणिका एकदम भाग गयी।

शुभा के पुत्र रत्न होने की खबर विष्णुप्रिया को पहले ही मिल गयी थी। शुभा को उससे कोई काम होता तो वह कणिका के साथ अथवा अपनी नौकरानी के द्वारा खबर भेज देती थीं। आज उसने खास पत्र भेजा था।

उस पत्र को लेकर वह आंगन के बरगद के चबूतरे पर जाकर बैठी और पत्र खोलकर पढ़ा।

"कल बालक का नामकरण समारोह है। नाम रखने के लिए तुझे यहां होना चाहिए। ससुराल के रिश्ते से यह नहीं कह रही हूं, सहेली के अधिकार से बुला रही हूं। तू यदि नहीं आई तो कल का समारोह नहीं होगा। अधिक क्या कहूं ?

तेरी शुभा।"

घंटे भर बाद शुभा की मां शची मां के घर विधिवत् निमंत्रण देने आई। शची मां ने विष्णुप्रिया को बुलाकर कहा, "बहू, सुन लिया ? कल तुझे जाना होगा।"

१८

दूसरे दिन सुबह काम पूरा करके विष्णुप्रिया शुभा के घर गयी। शुभा ने आगे बढ़कर विष्णुप्रिया के चरण छुए।

"यह क्या, शुभा ?"

"तुम जेठानी हो। इसलिए तुम्हें उचित आदर देना ही चाहिए। और अब सहेली के नाते स्वागत करती हूं।"

ऐसा कहकर उसने अपनी सहेली को कसकर आलिंगन में भर लिया और अपने पास चारपाई पर बिठा लिया।

विष्णुप्रिया ने पूछा, "बालक जब चार महीने का हो जाता है तब उसका नामकरण करने का रिवाज है। फिर आज ही षष्ठी पूजन और नामकरण क्यों ?"

"मुझे जल्दी ससुराल जाना होगा। परसों खबर आई है कि सासजी बीमार हैं। उन्हें जूड़ी बुखार आ रहा है।"

बोलते-बोलते उसने बालक को चारपाई पर से उठाकर विष्णुप्रिया की गोद में दे दिया। शिशु स्वस्थ और सुंदर था। मिश्र घराने की ही तरह गौर वर्ण और सुंदर बालक की ओर एकटक देखते हुए विष्णुप्रिया ने कहा, "बालक सुंदर है और सुलक्षण भी।"

"नाम क्या रखा जाय बालक का, बता ?"

"तू ही अपनी पसंद का नाम चुन ले।"

"मैंने तो चुन भी लिया है।"

"क्या ?"

"अ हं। अभी नहीं बताती। पलने में डालते समय बताऊंगी।"

थोड़ी देर में टोले-मुहल्ले की स्त्रियां आ जुटीं, बालक को गंगास्नान और षष्ठी पूजन के लिए ले जाया गया। उसके बाद मिष्ठान्न भोजन हुआ। भोजन समाप्त होने पर बाहर के कमरे में नामकरण विधि की तैयारी शुरू हुई। भीतर नये कपड़े और गहने पहने हुए बालक चारपाई पर पड़ा मुट्ठी चूसता खेल रहा था। विष्णुप्रिया वहीं नजदीक बैठी थी।

सामने दीवार पर षष्ठी देवी का चित्र रंगों से चित्रित कर दिया गया था। आसपास अल्पना रंगी हुई थी। देवी का पूजन हो चुका था।

शुभा ने वहां एक आसन बिछाया और कहा, "विष्णुप्रिया इस आसन पर थोड़ी देर बैठो।"

"क्यों, किसलिए ?"

"बाहर के बड़े नामकरण समारोह से पहले यहां एक छोटा समारोह

होगा। आओ, बैठो।"

विष्णुप्रिया आसन पर बैठ गयी। शुभा ने उसकी मांग में सिंदूर भरा, माथे पर कुंकुम लगाया। केले का गुच्छा और नारियल उसके चरणों के पास रखे। दो फल उसकी गोद में डाले और बालक को लाकर उसकी गोद में देते हुए धीरे से बोली, "षष्ठी देवी की साक्षी में यह पुत्र मैंने तेरी गोद में डाला है।" और फिर उसके कान में कहा, "बालक का नाम तेरे कान में कहती हूं। बालक का नाम है प्रियांग...प्रियांग...प्रियांग!"

इस अनपेक्षित समारोह से गोद में खेल रहे बालक के स्पर्श से और कान में कहे गए नाम से विष्णुप्रिया रोमांचित हो गयी। एक क्षण के लिए वह अपने को भूल गयी, लेकिन दूसरे ही क्षण सचेत होकर हंसते हुए उसने कहा, "तेरा यह पुत्र मिश्र घराने का नाम उज्ज्वल करे। अब ले इसे।"

नामकरण समारोह समाप्त होते ही विष्णुप्रिया शुभा और शुभा की मां से विदा लेकर घर लौटी। गोद में लिए शिशु का स्पर्श उसे अब भी रोमांचित कर रहा था। बालक का प्रियांग नाम उसके कानों में गूंज रहा था। सोचने लगी, शची मां कितना चाहती रहीं कि उनके यहां भी एक बच्चे का जन्म होता, लेकिन शायद अब आशा छोड़ दी है, इसलिए कभी वे इस प्रसंग को मुंह पर नहीं लातीं। मन का सारा दुःख उन्होंने मन में दबा लिया है। इसमें किसी का क्या बस! जैसी भगवान की मरजी...

इन्हीं विचारों में डूबती-उतराती घर के पास पहुंची तो आंगन में भक्तों की भीड़ दिखाई दी। माथे का आंचल खींचकर अंदर आई तो देखा, चटाई पर एक प्रौढ़ संन्यासी मूर्च्छित पड़ा हुआ था। उसके सारे शरीर पर मार के निशान उभरे हुए थे। कुछ में खून लगा हुआ था। मुंह सूज गया था। प्रभु हाथ में कटोरी लिये उसके शरीर पर ओषधि लगा रहे थे। मुरली और गदाधर उसे पंखा झल रहे थे। आंगन में भक्तों की भीड़ थी। बरामदे में आसपास की बहुत-सी वृद्ध स्त्रियां एकत्र हो गयी थीं।

घर के अंदर जाते हुए विष्णुप्रिया ने लोगों के मुंह से जो कुछ सुना उसका सार यह था कि फुलिया गांव के महात्मा हरिदास को दुष्ट काजी ने बेहोश हो जाने तक पीटा और मरा हुआ समझकर गंगा में फेंक दिया। हरिदासजी का अपराध यही था कि वे परम वैष्णव हैं और हरिकीर्तन

करते हैं। यवनों की अमलदारी में वैष्णवों को हरिभजन तक का अधिकार नहीं रहा। अपने ही लोग विरोधी होते जा रहे हैं। श्रीवास के घर भजन होते हैं तो गोविंद पंडित और दिगंबर पंडित जैसे लोग उसका विरोध करते हैं।

शची मां बरामदे में रसोईघर के द्वार के पास बैठी हुई थीं। बहू को आते देख उन्होंने कहा, "बहू, हरिदास होश में आ रहे हैं। थोड़ा दूध गरम करने को रख दे।"

विष्णुप्रिया ने रसोईघर में जाकर दूध गरम करने के लिए चूल्हे पर चढ़ा दिया।

हरिदास को होश आया। उन्होंने आंखें मिचमिचाईं और खोल दीं। गौरांग ने उनके मुंह में थोड़ा पानी डाला। पानी पीकर उन्होंने आंखें बंद कर लीं और बुदबुदाये :

'हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'

उनका स्वर बहुत क्षीण हो गया था। आंखें बंद किये हुए उसी क्षीण स्वर में वे कहने लगे, "बादशाह सलामत, विश्वास तो संस्कारजन्य होता है। मैं मुसलमान हो गया, फिर भी भगवान के नाम पर मेरी निष्ठा है। कई हिंदू इस्लाम धर्म पर विश्वास कर मुसलमान हो जाते हैं तो आप उन्हें दण्ड क्यों नहीं देते? 'तुम हिंदू ही बने रहो', ऐसी सख्ती आप उन पर क्यों नहीं करते? मुझी पर सख्ती क्यों? हिंदू होने की स्वतंत्रता मुसलमानों को भी मिलनी चाहिए।" बोलते-बोलते वे फिर बेहोश हो गए।

कुछ देर बाद पुनः सचेत हुए। इस बार उन्होंने पूरी तरह आंखें खोल दीं। उनके मुंह में पानी डालने के लिए आगे झुके हुए गौरांग प्रभु का चेहरा उन्हें दीख पड़ा। विस्मित होकर बोले, "हरे कृष्ण! हरे राम! मैं कहां हूं? वृन्दावन में हूं क्या? हे प्रभो श्याम मुरारी!...अरे, बंसी के स्वर मेरे कानों में गूंज रहे हैं। मैं...मैं...मैं हूं कहां?"

गौरांग ने कहा, "भक्तश्रेष्ठ, सचेत होइए। अच्छी तरह आंखें खोलिए।"

"पर मैं कहां हूं ?"

"आप बिलकुल उचित स्थान पर हैं । मुंह खोलिए । यह दूध पीजिए।"

कुछ देर बाद वे उठकर बैठ गए। आसपास देखते हुए उन्होंने पूछा, यह घर किसका है। साक्षात् भगवान की तरह दीखनेवाले आप कौन हैं ?"

गौरांग ने हंसकर कहा, "भक्तश्रेष्ठ हरिदास, मैं एक वैष्णव भक्त हूं ? मेरा नाम गौरांग है ।"

नाम कानों में पड़ते ही हरिदास ने तुरंत झुककर गौरांग के पांव पकड़ लिये और हर्षित होकर बोले, "आप गौरांग प्रभु हैं ? धन्य हे प्रभो, सचमुच मैं ठीक स्थान पर आ पहुंचा हूं । काजी ने मुझे दंड दिया, उसका शुभ फल मिल गया ।"

यह समाचार पाकर श्रीवास भी वहां आ गये। उनके पीछे-पीछे गोविंद पंडित और दिगंबर पंडित भी आये। उन्हें देखकर श्रीवास ने गौरांग की ओर अर्थ-भरी दृष्टि डाली। गौरांग मुस्करा दिये और बोले, "आइए, आइए, पंडित महाशयो, आप जैसों की चरणधूल से मेरा घर पवित्र हो गया। गदाधर, ये सज्जन भक्तश्रेष्ठ हरिदास की कुशल पूछने आए हैं, इन्हें आसन दो।"

गदाधर ने भीतर से चटाई लाकर बिछा दी। उस पर बैठकर गोविंद पंडित बोले, "अरेरे! काजी ने बड़ा कठोर दंड दिया। बादशाह के कानून ही कड़े हैं, फिर भी इतना क्रूर दंड नहीं देना चाहिए था। सारा शरीर लहूलुहान हो गया है।"

हरिदास ने कहा, "पंडित महाशय, इसमें काजी का दोष नहीं। मनुष्य के भाग्य में जो बदा होता है, वह उसे भुगतना पड़ता है।" और आंखें बंद करके उन्होंने 'हरे राम' का जप शुरू कर दिया।

दिगंबर पंडित बोले, "भक्त हरिदास, आप तो मुसलमान हैं न ?"

"जी हां। मेरे माता-पिता मुसलमान थे, पर बचपन से ही मुझे नाम-

जप और भजन का शौक है।"

"आप मुसलमान हैं, इसलिए आपको नामजप तथा भजन करने का अधिकार नहीं है। यह अधर्म है, शास्त्र के विरुद्ध है।"

"शास्त्र का मर्म जानने की शक्ति तो मुझमें नहीं, परंतु आप के ही समान विद्वानों के मुंह से मैंने सुना है कि भगवान का नाम लेने, जप और भजन करने का अधिकार सभी को है।

गदाधर ने समर्थन किया, "श्रीमद्भागवत् में स्वयं भगवान ने ही अपने श्रीमुख से यह अधिकार मनुष्य-मात्र को दिया है।"

गोविंद पंडित ने आपत्ति की, "हां, अधिकार दिया तो है, परंतु जोर-जोर से चिल्लाकर नाम जपने और मंत्र पढ़ने को तो नहीं कहा है। आप लोग मन-ही-मन जप और भजन क्यों नहीं करते ?"

"पंडित महाशय, अपने गुरुदेव श्री अद्वैताचार्य के मुंह से मैंने थोड़ा-बहुत शास्त्र सुना है। मन-ही-मन जप और भजन करने वाला स्वयं पवित्र होता है और अकेले पुण्यार्जन करता है, पर उच्च स्वर में जप और भजन करनेवाला अपने साथ आसपास के सभी जड़-चैतन्य को आनंदित और पावन कर देता है।"

"यह अधर्म है, गौरहरी। आप विद्वान पंडित हैं। सोचिए, झांझ, मृदंग और मंजीरे बजाकर, जोर-जोर से चिल्लाकर क्या श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हो सकता है ? इन लोगों के साथ आपका भी नाम व्यर्थ कलंकित हो रहा है। मैं आपको सावधान किये देता हूं कि यहां के काजी के पास भी शिकायतें पहुंच गई हैं। रात भर लोगों की नींद हराम होती है। श्रीवासाचार्य, आप यह सब बंद कर दीजिए।"

गौरांग शांति से सुनते रहे। उनके अधरों पर मुस्कान की रेखा उभर आई। उन्होंने कहा, "अरे गदाधर, अतिथियों को जलपान कराओ।"

"नहीं-नहीं, रहने दीजिए। हम अब विदा लेते हैं। हमारी हार्दिक इच्छा यही है कि आप यह पागलपन छोड़कर पुनः नवद्वीप को शास्त्राभ्यास का दिगन्त विजयी केंद्र बनावें।"

वे चले गए तो गौरांग ने कहा, 'भक्तश्रेष्ठ हरिदास, आज आप यहीं

रह जाइए।"

"जैसी आपकी इच्छा ! पर आज रात को श्रीवास के यहां भजन में जाने की मेरी इच्छा है।"

"ऐसी अवस्था में ?"

"प्रभो, वेदना और दुःख का संबंध देह से है, मन से नहीं। भजन और नाम-जप में मन जब तल्लीन हो जाता है, तब देह की सुध कहां रहती है ?"

○

दिन-प्रतिदिन यवनों का त्रास बढ़ता जा रहा था। गांव-गांव में जो कोतवाल नियुक्त किये गए थे वे यदि भले होते तो अत्याचार कम होता था, पर गांव के पाखंडी लोग कोतवालों को उकसाते रहते थे। जब-तक वैष्णव भक्तों की संख्या कम थी, वे अपने घरों में ही जप और भजन किया करते, इसलिए किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। परंतु जैसे ही वैष्णव धर्म प्रचारित होने लगा, भक्तों की संख्या बढ़ी तो मांस और मद्य के भक्षक शाक्त पंथी विरोध करने लगे। वे कोतवाल से शिकायत करते। यदि कोई भला कोतवाल ध्यान न देता तो सीधे नवाब के दरबार में शिकायत की जाती।

एक दिन गौरांग के घर नित्य की तरह भक्त लोग एकत्र हुए। तभी किसी ने आकर बताया कि हमारी शिकायत कोतवाल से कीं गयी थी। लेकिन वह भला आदमी है, इसलिए अनसुना कर गया। तब विरोधियों ने सीधे नवाब के यहां शिकायत की। नवाब आग बबूला हो गया। उसने गौरांग और श्रीवास को मुश्कें बांधकर पकड़ लाने और शेष सभी वैष्णवों को कोड़े मारने का हुक्म दिया है। नवाब के हुक्म की तामील करने के लिए कई नौकाएं भरकर यवन सैनिकों को नवद्वीप की ओर रवाना भी कर दिया गया है।

सुनकर श्रीवास बोले, "मैं तो बूढ़ा हुआ। न प्राणों का मोह है, न दंड का भय; लेकिन गौरांग प्रभु को इस आपत्ति से बचाना आवश्यक है। आगे भक्ति-प्रचार का सारा कार्य इन्हीं को करना है। इन्हें तत्काल यहां से हटाकर किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचा देना चाहिए।"

गौरांग ने गंभीर स्वर से कहा, "श्रीवासाचार्य, आप मेरे पिता के

समान हैं। परंतु आज का संकट यदि हम कल पर टाल दें तो अंत में यह हमारे नाश का ही कारण हो जावेगा। संकट का सामना करके उसे नष्ट करना चाहिए। इसमें से कोई मार्ग निश्चित ही निकल आवेगा। आप सब निश्चित रहें।"

उस रात भी नित्यक्रमानुसार सवेरे तक श्रीवास के घर भजन हुआ। रोज की तरह वहां से गौरांग, नित्यानंद, गदाधर, मुरारी इत्यादि भक्तों के साथ घाट पर स्नान के लिए गये। आज गौरांग ने आग्रहपूर्वक सुगंधित तेलों की मालिश कर गंगा में स्नान किया।

घर लौटते समय उन्होंने सभी भक्तों से कहा, "आप सब अरुणोदय होते ही यहां आ जाइए।"

वहां से गदाधर और मुरारी के साथ गौरांग अपने घर आए। आज उन्हें इतने जल्दी अरुणोदय से भी पहले घर आए देख हाल ही में स्नान पूरा कर समीप रखे दीये के मंद प्रकाश में तुलसी के पास रांगोली काढ़ रही विष्णुप्रिया को आश्चर्य हुआ। वह उनकी अभ्यर्थना में उठकर खड़ी हो गई।

गौरहरि ने उसके निकट आकर उल्लसित स्वर में कहा, "प्रिये, आंगन में पग धरते ही तुम्हारा शुभ दर्शन हुआ। निकट की घड़ी शुभ है।"

विष्णुप्रिया लजा गयी। हंसकर धीरे से बोली, "प्रभु के दर्शन की घड़ी ही शुभ घड़ी होती है।"

"प्रिये, मेरी तुलसी-पूजा की तैयारी करो और मेरा पीतांबर और रेशमी उत्तरीय निकालकर रखो! अरुणोदय होते ही मुझे बाहर जाना है।"

विष्णुप्रिया ने सारे काम झटपट पूरे किये और नाश्ता भी तैयार कर दिया।

आजकल विष्णुप्रिया शची मां को बुढ़ापे के कारण मुंह अंधेरे गंगा-स्नान के लिए नहीं जाने देती थी। वे जल्दी उठकर बिस्तर में बैठी जप किया करतीं। आज इतने सवेरे पुत्र को हड़बड़ी मचाते देख उनका मातृ हृदय आशंकित हो गया। विकल होकर पूछ बैठीं, "गौरहरी, आज इतनी जल्दी कैसे?"

गौरांग ने हंसकर कहा, "कोई खास बात नहीं है, मां। सिर्फ घाट पर

जरा जल्दी जाना है।"

माता का मन शांत हो गया।

कलेवा करके गौरहरी ने चंदन का तेल लगाकर अपने केशों का सुंदर विन्यास किया। माथे पर चंदन का तिलक लगाया। पीतांबर पहना। इतने में गंगादास नाभिकमल तक लटकनेवाला, सुगंधित फूलों का, तुलसी मंजरी से युक्त एक बढ़िया हार ले आया और उनके गले में पहना दिया। अंत में रेशमी दुपट्टा इस तरह कंधे पर डाल लिया कि उसके दोनों छोर घुटनों तक लटककर फरफराने लगे।

कोने में जल रहे दीये के मंद प्रकाश में गौरांगप्रभु का वह रूप साक्षात् चक्रधारी विष्णु की तरह लग रहा था। तेजोपूर्ण सुंदर चेहरे पर वैसा ही प्रसन्न हास्य ! तीनों भक्त ठगे-से देखते रह गए।

शची मां के घाट पर जाने का समय हो रहा था। वे बरामदे में आईं। बेटे का वह रूप उन्हें घाट के मुरलीधर मंदिर के देवता-जैसा लगा। गौरहरि ने झुककर प्रणाम किया तो आशीर्वाद दिया, "यशस्वी हो, बेटा !"

गौरांग ने रसोईघर की ओर देखा। विष्णुप्रिया दरवाजे की आड़ में खड़ी थी। वे सीधे रसोईघर में गए। विष्णुप्रिया आगे बढ़ उनके चरण छूने के लिए झुकी तो उसे हाथ पकड़कर नजदीक खींच लिया और कान में कहा, "प्रिये, इस समय मुझे तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।"

"यह क्या कह रहे हैं आप ?"

"सच ही कह रहा हूं। देवी, तुम मेरी शक्ति हो, यह भूल गयीं क्या ?"

इन शब्दों ने रूढ़-सरोवर में प्रवेशकर आनन्द की लहरें उठा दीं। एक क्षण के लिए वह अपने आप को भूल गयी। दूसरे क्षण आंख खुली तो गौरांग बरामदे की सीढ़ियां उतरकर जल्दी-जल्दी आंगन में जाते दिखाई दिये।

थोड़ी देर बाद शची मां भी गंगा-स्नान के लिए चली गयीं। यवन सैनिकों के घाट पर आने की बात कहकर विष्णुप्रिया ने उन्हें बहुत रोकना चाहा, पर वे न मानीं।

विष्णुप्रिया सवेरे के कार्यों में लग गयी। लेकिन उसका मन 'प्रिये तुम

मेरी शक्ति हो' वाक्य को गुनगुनाता रहा और उसके कान घाट से आने वाले रास्ते की ओर लगे रहे। समय के साथ उसकी यह जानने की उत्सुकता बढ़ती गयी कि घाट पर क्या हुआ ? क्या यवन सैनिक आये और प्रभु ने उनका किस तरह पराभव किया।

सूर्योदय हुए भी काफी समय हो गया। विष्णुप्रिया बरामदे की सीढ़ियों पर आयी और वहां से घाट की तरफ देखने लगी। इसी समय श्रीवास का बारह वर्ष का नाती बंशीधर दौड़ता हुआ फाटक से भीतर आया। उसके हाथ में एक बड़ा पुलिंदा था।

"बऊकाकी, यह पुलिंदा गंगादास ने दिया है। मिठाई का पुलिंदा है। अब सब यहीं आ रहे हैं।" उसके स्वर में आनंद समा नहीं रहा था।

"क्यों रे बंसी, सैनिक आए हैं क्या ?"

"आए और आने से पहले चले भी गए।"

"क्या मतलब ?"

"सुनो, सब बताता हूं।" वह सीढ़ी पर बैठ गया और बताने लगा। "बऊकाकी ! ऊपर के घाट पर बड़ी भीड़ थी। सारा गांव यह देखने के लिए इकट्ठा हो गया था कि देखें, सैनिक आकर क्या करते हैं। गांव के पाखंडी लोग भी आ जुटे थे। सबकी दृष्टि गौरांग काका की ओर लगी थी। काका ने लोगों से कहा :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

इस मंत्र का जप करते हुए शांति से बैठे रहो, और वे स्वयं घाट पर इस सिरे से उस सिरे तक बड़ी शान से घूमते रहे।

"कुछ बूढ़ों ने उन्हें समझाने की कोशिश की, 'गौरहरी, जानबूझकर शेर के मुंह में हाथ क्यों डाल रहा है ? तू यहां से कहीं चला क्यों नहीं जाता ?'

"काका ने जवाब दिया, 'अभी यदि भाग गया तो वे मुझे कहीं से भी खोजकर ले आयंगे। इसकी अपेक्षा नौका यदि इस घाट से आकर लगे तो दो सीढ़ियां उतरकर सीधे नौका में जाकर बैठ जाना अच्छा। इसीलिए

नौका की प्रतीक्षा करता हुआ मैं यहां घूम रहा हूं, और भक्तों को एकत्र करने का सैनिकों को कोई कष्ट न हो, इसलिए सारे भक्तों को वाद्यों-सहित यहां बैठा रखा है मैंने।"

"और काका पुनः घूमने लगे। सब की नजरें उस पार के किनारे की ओर लगी हुई थीं। धीरे-धीरे दूर एक धब्बा-सा दीखने लगा। मैं एक पेड़ पर झटपट चढ़ गया और चिल्लाकर बोला, 'नौका आ रही है।'"

"सैनिकों से ठसाठस भरी नौका जल्दी-जल्दी किनारे की ओर आने लगी। उसमें के सैनिक दिखाई देने लगे। गौरांग काका घाट पर नौका की ओर देखते हुए खड़े हो गए और हुंकारने लगे। बीच में दोनों हाथ उठाकर आकाश की ओर देखते हुए 'चक्र-चक्र,' भी बोलते जाते थे। उनके फैले हुए हाथों से या शायद पूरे ही शरीर से बिजली की तरह एक दैदीप्यमान किरण निकल कर आकाश-मार्ग से नौका की दिशा में जाती हुई दिखाई दी।

"उस प्रकाश-किरण को देखते ही नौका ने अपना मुंह फेर लिया और पीछे लौट गयी। उसमें बैठे हुए यवन सैनिक बुरी तरह घबरा गये थे। कुछ देर बाद वह नौका आंखों से ओझल हो गयी। कुछ लोगों ने कहा नौका डूब गयी। कुछ बोले, जान बचाकर भाग गयी।

"सब आश्चर्यचकित होकर गौरांग काका की ओर देखते रह गए। कुछ पाखंडियों ने उनसे कहा, 'भक्त गौरांग, मंत्र विद्या आपको खूब आती है। मंत्र की शक्ति से आपने नौका को लौटा दिया।'

"गौरांग काका ने हंसकर कहा, 'हे विद्वज्जनों, कृष्णनाम ही हम वैष्णवों का मंत्र है। अन्य मंत्र या तंत्र हम नहीं जानते।' इतना कहकर वे हंसे और बोले, 'हमारी गंगामैया में अनेक भंवर हैं। आनेवाली नौका उन भंवरों में फंस गयी होगी।'"

बंसी बड़े उत्साह से सुना रहा था। तभी शची मां आ गयीं। आते ही बोलीं, "बहू, आज कितना बड़ा संकट टल गया! अपनी आंखों से मैंने सब देखा है।"

उनके स्वर में कौतुक और गौरांग के हाथों कुछ अद्भुत हो जाने का आदर-मिश्रित आश्चर्य भी था।

विष्णुप्रिया ने धीरे से कहा, "मां, यह वंसी अभी-अभी वही सब बता रहा था। सुबह से वहीं था।"

१७

दूसरे दिन सुबह गौरहरी गंगा-स्नान के बाद अपने घर तुलसी-पूजा कर रहे थे। नित्यानंद, गदाधर, मुकुंद, मुरारी, हरिदास और अन्य भक्त-गण पास बैठे थे। शची मां जप करती हुई बरामदे में बैठी थीं। विष्णुप्रिया रसोईघर में काम में उलझी हुई थी। इतने में गांव के दस-बारह लोगों की टोली गौरांग से मिलने के लिए आयी।

पूजा समाप्त कर गौरांग अपने लिए मध्यभाग में सुरक्षित आसन पर बैठ गए। चंदन की मंद सुगंध आसपास फैल गयी। उनके माथे पर चंदन का तिलक था और चेहरा प्रसन्न मुस्कराहट से मंडित था।

आगन्तुकों में से एक ने आगे बढ़कर प्रणाम किया और विनम्रता से बोला, "प्रभो, कल हमने घाट पर प्रत्यक्ष चमत्कार देखा।"

"वह चमत्कार नहीं, कृष्णनाम-मंत्र की महिमा है। कृष्णभक्ति का ऐसा ही प्रभाव होता है।"

"प्रभो, कल से हमारे हृदय में भक्तिभाव जाग्रत हो गया है। हमें भी भक्ति-मार्ग की शिक्षा दीजिए।"

गौरांग ने हंसकर कहा, "भजन-संकीर्तन में सीखना क्या और समझना क्या! सिर्फ हृदय में भावना होनी चाहिए। भावुक हृदय में भक्ति की लता खूब लहलहाती है। भगवान का कोई भी नाम ले लीजिए और जपते रहिए।

"तालियां बजाकर इन नामों का जप कीजिए। पांच-दस भक्त इकट्ठे हो जायं तो झांझ, मंजीरे और तालियां बजाकर जपने से आप ही एक लय-बद्ध नाद उत्पन्न हो जाता है। भजन करते समय जो आनंद प्राप्त होता है

वह तो स्वानुभूत है।"

गौरांग तालियां बजाकर मंत्रोच्चार करने लगे। गदाधर और नित्यानंद ने उनका साथ दिया। मुकुंद ने झांझे उठाई। हरिदास ने हाथ में मंजीरे लिये, मुरारी भीतर जाकर मृदंग ले आया और खड़े-खड़े बजाने लगा। भजन शुरू हो गया। आगन्तुकों को भजन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो गया। सब खुश हो गए। एक ने कहा, "आज हम धन्य हो गए ! अभी तक मार्ग भूलकर जंगल में भटक रहे थे। आज आपने हमें निश्चित मार्ग दिखा दिया।"

उनके जाने के बाद सबने जलपान किया। फिर गौरांग बोले, "भक्त-श्रेष्ठ हरिदास, अब हरिनाम का घर-घर प्रचार करने का उचित समय आ गया है।"

"जैसा प्रभु आदेश दें और मार्ग-दर्शन करें !"

गौरांग प्रभु का धीर गंभीर स्वर गूंज उठा : "कलिकाल में न तो सत्य-युग-जैसी निश्चितता है, न त्रेता युग-जैसी साधन सम्पन्नता और न द्वापर-जैसी साधना रह गयी है। केवल सुलभ है हरिनाम, जिसे हर कोई हर कहीं जप सकता है।इसमें न जाति का बंधन है, न वर्ण का, न कोई विधि-निषेध ही है। स्थान और समय की मर्यादा भी नहीं। बस, उच्च स्वर में मुक्त मन से जपिए और अपने साथ सुनने वालों को भी पावन कीजिए। तो घर-घर हरिनाम के प्रचार का कार्य मैं भक्त-श्रेष्ठ हरिदासजी और अवधूत नित्यानंदजी को सौंपता हूं। आप दोनों ही संन्यासी हैं। कल से ही आप यह काम आरंभ कर दीजिए। घर-घर जाइए और हाथ जोड़कर विनम्रता से कहिए, "हम संन्यासी हैं, भिक्षा मांगने आए हैं ।हम भिक्षा केवल हरिनाम की चाहते हैं।"

"जैसी प्रभु की आज्ञा !" नित्यानंद उल्लसित होकर बोले।

दूसरे दिन हरिदास और नित्यानंद गंगा-स्नान करने के बाद विष्णु-प्रिया के हाथ का कलेवा कर और शच मां से आशीर्वाद लेकर अपने प्रचार-कार्य पर चल दिये।

राह चलते हुए हरिदास ने कहा, "अवधूत। चलो, हम शंकरानंद पंडित के मुहल्ले से शुरू करें।"

"महात्मा, जो सदाचारी और सत्कर्मी हैं, उनके घर जाकर प्रचार करना विशेष महत्वपूर्ण नहीं। जो पापी और क्रूरकर्मी हैं, उनके मन में यदि हरिभक्ति उत्पन्न की जा सके तो वह विशेष महत्त्व का होगा।"

"तो चलिए, हम जगाई और मधाई के यहां चलें। दोनों कोतवाल हैं और नये ही आये हैं। दोनों ही शराबी, पातकी और भयंकर क्रूर-कर्मा हैं। शुभानंदराय के इन अत्याचारी नातियों के कारण सायंकाल को लड़कियां नदी से पानी लाने या घाट पर कपड़ा धोने के लिए जाते घबराती हैं।"

"फिर तो वहीं चलना चाहिए। जैसे सांघातिक रोगी को तत्काल औषधोपचार की आवश्यकता होती है, इसी तरह पापियों को भी भगवान नाम की तत्काल आवश्यकता है।"

दोनों संन्यासियों को गए कुछ समय बीत गया। गौरांग पूजा पर बैठने जा ही रहे थे कि रमाई पंडित का दस-बारह वर्ष का लड़का माधव दौड़ता हुआ आया और हांफते हुए बोला, "गौरकाका, गौरकाका, अवधूत काका को मधाई ने डंडों से मारा! उनका सिर फूट गया! खून बहने लगा। जल्दी चलिए। हरिदास दादाजी उन्हें हाथ पकड़ कर इधर लाना चाहते हैं, पर वे किसी की नहीं सुनते। जगाई-मधाई के दरवाजे पर 'हरि बोल, हरि बोल, मधाई हरि बोल' कहते हुए नाच रहे हैं। जल्दी चलिए।"

सुनते ही गौरहरी एकदम उठकर खड़े हो गए। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया था। उत्तरीय कंधे पर डाल वे फौरन चल पड़े।

जगाई-मधाई के दरवाजे पर सारा गांव जमा हो गया था। शरीर पर भगवे रंग की लंगोटी, हाथ में भगवे रंग की झोली, माथे पर बड़ा-सा घाव लिये और घाव से रिसते हुए खून से सर्वांग को पोते हुए गौर वर्ण का नित्यानंद संन्यासी सुध-बुध भूले 'हरि बोल, हरि बोल' कहता हुआ नाच रहा था और उसे मारने वाला मधाई अवाक् खड़ा देख रहा था। जगाई मधाई को फटकार रहा था। सारी भीड़ स्तंभित खड़ी थी।

गौरहरि वहां पहुंचे तो उनका चेहरा आक्रोश से तमतमा रहा था। विशाल नेत्रों से अग्नि स्फुलिंग झड़ रहे थे! जैसे ही उन्होंने अपनी

दृष्टि जगाई-मधाई पर डाली, दोनों की गरदनें झुक गयीं।

नित्यानंद ने उन्हें शांत करते हुए कहा, "प्रभो, शांत होइए। पापी लोगों का यदि आप ही संहार करने लगे तो उनका उद्धार कौन करेगा? सामने खड़े हुए इन दोनों पतितों का उद्धार कर अपना पतितपावन नाम सार्थक कीजिए। प्रभो, मेरी देह को किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं हो रहा है। संन्यासी तो देह कष्ट से परे हो जाता है। आप शांत होइए, प्रभो।"

इसी समय जगाई ने आगे बढ़कर नम्रतापूर्वक कहा, "गौरहरी, मेरा भाई मधाई अविचारी है। उसकी ओर से मैं आपसे क्षमा मांगता हूं।"

नित्यानंद ने कहा, "प्रभो, इस जगाई ने ही अपने भाई को रोका, नहीं तो दो-चार डंडे मेरे सिर पर और पड़ जाते और इस नित्यानंद का निर्जीव शरीर आपको यहां मिलता।"

गौरहरी का क्रोध थोड़ा-सा कम हुआ। उन्होंने कहा, "जगाई, तुमने मेरे प्राणप्रिय भक्त को बचाया, इसलिए तुम मेरे प्रिय हुए।"

ऐसा कहकर उन्होंने जगाई को अपनी बांहों में कस लिया। उस दृढ़ालिंगन ने क्षणार्ध में जगाई का कायाकल्प कर दिया। उल्लसित होकर बोला, "प्रभो, पाप और पुण्य में क्या अंतर है, यह आपके स्पर्श से मैं जान गया। मेरे सारे पाप नष्ट हो गए। प्रभो, मधाई को आप क्षमा कर दीजिए, उसे पावन कर दीजिए।"

गौरहरी ने गंभीर स्वर में कहा, "जगाई, मधाई को क्षमा करने का अधिकार मुझे नहीं। जिनका उसने अपराध किया है उन्हीं को वह अधिकार है। मधाई, तुम अवधूत की शरण जाओ, उनसे क्षमा मांगो।"

मधाई का हृदय पश्चात्ताप से दग्ध हो रहा था। उसने फौरन नित्यानंद के चरणों पर गरदन झुका दी।

"संन्यासी महाराज, अपनी क्रूरता के लिए मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं।"

नित्यानंद तनिक भरे कंठ से बोले, "प्रभो, यह आपकी कैसी क्रीड़ा है। भक्त को इतना महत्त्व दे रहे हैं। क्षमा के सागर तो स्वयं आप हैं। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि पिछले जन्मों में मेरे हाथ से यदि थोड़ा भी सुकृत्य हुआ है तो उसका सारा पुण्य मैं इन दोनों भाइयों को अर्पित

करता हूं।"

सब लोग चकित होकर नित्यानंद की ओर देखते रह गए। कैसी अद्‌भुत और अभुतपूर्व क्षमा है यह ! जिसने मार-मारकर सिर फोड़ दिया, उस आततायी को एक ही नहीं, पिछले सभी जन्मों का अपना संचित पुण्य दे डाला !

गौरहरी ने मधाई को उठाकर छाती से लगाते हुए कहा, "मधाई अवधूत ने तुम्हें क्षमा ही नहीं किया, जन्म-जन्मांतरों का अपना पुण्य भी तुम्हें दे दिया। तुम आज़ से परम वैष्णव और मेरे अंतरंग भक्त हुए।"

प्रभु का पावन स्पर्श पाते ही मधाई को आत्म साक्षात्कार हो गया। बोला, "प्रभो, आज आपने मुझे नया जन्म दिया।" और वह उनके चरणों में गिर गया।

१८

हरिनाम का प्रचार आरंभ होने के बाद गांव की गली-गली में भक्त-मंडलियां स्थापित हो गईं। रोज रात को जगह-जगह संकीर्तन होने लगे। गौरहरी, श्रीवासाचार्य, गदाधर, हरिदास, नित्यानंद, मुकुंद किसी को भी दम मारने की फुर्सत नहीं थी। श्रीवासाचार्य का बेटा चंद्रकिरण पंडित आठ दिन से बुखार में पड़ा था। रोग के लक्षण अच्छे नहीं थे। लेकिन श्रीवास को घर-परिवार की ओर ध्यान देने का अवकाश कहां था ? बीमार बेटे को वैद्य, भगवान और भाग्य के भरोसे छोड़कर वे हरिनाम-संकीर्तन के सूत्रों में जुटे थे। दो दिन से अद्वैताचार्य के आश्रम में कीर्तन की धूम रही। वहां से मंडली हरिदास के गांव फुलिया पहुंची। दो-तीन दिन वहीं मुकाम रहने वाला था।

गौरहरि सारी-सारी रात कीर्तन करते और दिन-भर भक्तों से घिरे रहते। कई बार कई-कई दिनों तक घर नहीं लौट पाते। शची मां और विष्णुप्रिया उनका मुंह देखने और दो बातें करने को तरस कर रह जातीं।

ऐसे समय घर में सिर्फ एक बार दोपहर को रसोई वनती। शची मां बरसों से रात में नहीं खाती थीं। विष्णुप्रिया दोपहर की रसोई से ही शाम का अपना काम चला लेती थी।

गौरहरी घर रहते तो गदाधर आदि के साथ चर्चा में निमग्न रहते अथवा आगन्तुक भक्तों से वार्तालाप किया करते।

कोई भक्त आकर कहता, "गौरप्रभु, हमारा संकीर्तन अब नियमित शुरू हो गया है। आज आप आकर उसे देखिए, सुनिए, ठीक हो रहा है या नहीं ?"

वे हंसकर जवाब देते, "भक्तबंधु हरिनाम हमेशा ही ठीक होता है। शास्त्र में भूलें हो सकती हैं। वेदोच्चार दोषयुक्त हो सकता है। पर हरि-नाम सदा निर्दोष रहता है।"

फिर आग्रह किया जाता, "पर प्रभो, आपके आने से हमारा उत्साह वढ़ेगा, आनंद द्विगुणित होगा। आप हमारे गुरु हैं, गुरु का आशीर्वाद तो मिलना ही चाहिए।"

गदाधर समर्थन करता, "प्रभो, आज चलना चाहिए।"

नित्यानंद और मुकुंद आश्वस्त करते, "भक्तबंधु, गौरांग प्रभु को लेकर हम संकीर्तन में आयंगे।"

विष्णुप्रिया का सांझ की रसोई का सारा आयोजन, कटी हुई सब्जी, चुने हुए चावल सव धरा रह जाता। वैसे घर रहने पर दोपहर के ही भोजन में गौरहरी की रुचि कहां रह गयी थी। आहार भी दिनोंदिन कम होता जा रहा था। इसके साथ ही सांसारिक वार्तो की ओर से भी उनका ध्यान हटता जा रहा था।

कभी चौथे पहर भक्तों को हरिकथा सुनाते हुए उनकी आंखों से प्रेमाश्रु वहने लगते, कभी किसी भक्त के इस आग्रह पर कि हमें शास्त्रों का ज्ञान भी करावें, विह्वल होकर कहते, "भगवान को सिर्फ भक्ति चाहिए, शास्त्र और युक्ति-तर्क नहीं।"

आगन्तुक भक्त प्रसन्न, संतुष्ट लौट जाता।

○

इस बार गौरांग प्रभु को कीर्तन में गये पूरे चार दिन हो गए थे।

एकबार भी वे घर नहीं आये थे। घर-आंगन की तरह ही शची मां और विष्णुप्रिया दोनों के मन सूने हो रहे थे।

शाम को दीया-वाती और तुलसी-पूजा निपटाकर विष्णुप्रिया भीतर आई और रसोईघर में गयी, पर वहां कोई काम नहीं था। तव शची मां के कमरे में जाकर उनका विस्तर लगाकर बाहर बरामदे में आई। शची मां दीवार से टिकी, आंखें वंद किये, बैठी हुई थीं। थोड़ा हटकर कोने में दिया टिमटिमा रहा था।

वह उनके पास बैठ गयी और उनके पैरों पर हाथ फेरते हुए बोली, "मां, क्या अच्छा नहीं लग रहा है? आप आंखें वंदकर दीवार से टिकी चुपचाप बैठी हैं, इसलिए पूछ रही हूं।"

"नहीं री, योंही बैठी हूं।"

शची मां का मन बेचैन है। इतना वह जान गयी। उनका मन बहलाने के लिए उसने आग्रह-पूर्वक कहा, "मां, आज आप कोई कथा सुनाइए। माधवेंद्रपुरी के क्षीर-चोर गोपीनाथ के बारे में आपने एक बार वताया था। आज वही कथा सुनाइए।"

शची मां सुनाने लगीं, "पुरी के आसपास के तीर्थों में क्षीर चोर गोपीनाथ का बड़ा महत्त्व है। अपनी पुरी-यात्रा में मैंने वहां दर्शन किये हैं। माधवेंद्रपुरी ईश्वर पुरी के गुरु थे, जिन्होंने गया में गौरहरी को मंत्र-दीक्षा दी। हमारे नित्यानंद निताई के गुरु भी वे ही हैं।

" माधवेंद्रपुरी प्रायः गोकुल-वृंदावन की यात्रा पर जाया करते थे। एक बार ब्रज-यात्रा करते-करते वे गोवर्धन पर्वत के निकट अति सुंदर वन में जा पहुंचे। वन का एकांत उन्हें पसंद आया। एक वृक्ष के तले बैठकर कृष्ण नाम जपने में तल्लीन हो गए। अयाचित वृत्ति के विरक्त संन्यासी थे। भिक्षा नहीं मांगते थे, कोई लाकर दे देता तो खा लेते थे।

" पर उस जंगल में भिक्षा कौन लाकर देता उन्हें?

" पूरा दिन हो गया, कोई भी पथिक उधर से नहीं गुजरा। पक्षियों के दल लौटकर अपने वसेरों में समा गए। परंतु कृष्ण नाम का जप करनेवाले संन्यासीजी के पास कोई नहीं आया। सुबह से उनके पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं गया था।

"रात घिरने लगी। सहसा वृक्ष के पीछे से किसी का पदरव सुनाई दिया। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। दस-ग्यारह वर्ष का श्यामल वर्ण का हट्टा-कट्टा और मोहक चेहरे वाला एक ग्रामीण बालक हाथ में मिट्टी का छोटा-सा मटका लिये उन्हीं की ओर चला आ रहा था।

"उसने समीप आकर मधुर स्वर में कहा, 'साधु महाराज, इस जंगल में अंधेरे में अकेले ही बैठे हैं। भूख लगी होगी। लो, यह दूध पी लो।'

"उसने दूध से भरा हुआ घड़ा उनके पास रख दिया।

"संन्यासी बोले, 'बेटा, तू कौन है? दूध लेकर कहां से आया? मैं भूखा हूं, यह तुझे कैसे मालूम हुआ?'

"उसने कहा, 'मेरी मां सुबह नदी पर पानी भरने आयी थी। उसने आपको देखा। इस जंगल के उस पार हम ग्वालों की छोटी-सी बस्ती है। हमारी पड़ोसिन कालू मौसी कुछ समय पहले नदी से पानी भर कर गयी। उसने मां से कहा, अभी तक वे साधु महाराज पेड़ के नीच बैठे हैं। मां ने सोचा, सुबह से बैठे भजन कर रहे हैं। पूरा दिन हो गया। भूख लगी होगी। बस्ती में भिक्षा मांगने भी नहीं आए। सो मां ने यह दूध आपके लिए भेजा है। आप सुबह हमारे गांव में आइए। यह घड़ा ले जाने के लिए मैं कल सुबह आऊंगा।'

"इतना कहकर वह बालक जिधर से आया था उसी रास्ते लौट गया। दूध देखकर पुरी महाराज को जोर की भूख लग आई। दूध बहुत मीठा और स्वादिष्ट था। अंतरात्मा तृप्त हो गयी। वे वहीं सो गए। रात में सपना आया कि लड़का उनके पास खड़ा है और देखते-देखते वह मोर, मुकुट और बंसीधर कृष्ण के रूप में बदल गया।

"पुरीजी विस्मित और रोमांचित हो गए। बोलना चाहते थे, पर मुंह से बोल ही नहीं फूट रहा था।

"इतने में कृष्णरूपधारी उस बालक ने कहा, 'माधवेंद्रपुरी, कितने ही वर्षों से मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आप जिस वृक्ष के नीचे बैठे हैं उसी वृक्ष के नीचे मुझे गाड़ दिया गया है। बहुत पहले, इस वृक्ष के उस पार, नदी-किनारे एक मंदिर था। म्लेच्छों के भय से पुजारी ने मुझे इस वन में लाकर यहां, इस वृक्ष के नीचे गाड़ दिया। मंदिर नष्ट कर दिया

गया। मुझे यहां से बाहर निकालो। मेरा नाम श्रीगोपाल है। इसी नाम से मेरी पुनः प्रतिष्ठा करो।' इतना कहकर वह कृष्णरूपधारी बालक अदृश्य हो गया।

"पुरीजी की नींद उड़ गयी, मन गदगद् हो गया, आनंदाश्रु बहने लगे। पुनः वह भजन में तल्लीन हो गए। अरुणोदय होते ही गांव की ओर चल पड़े। वन के पार, नदी किनारे, सचमुच एक छोटा-सा गांव था। उन्होंने गांव वालों से सपने की बात कही। सबने मिलकर उस वृक्ष के नीचे खुदाई की। रात को सपने में माधवेंद्रपुरी को जैसा बालक दिखाई दिया था, ठीक वैसी ही काले चिकने पत्थर की अत्यन्त सुडौल मूर्ति वहां से निकली।

"पुरीजी ने श्रीगोपाल मंदिर की स्थापना की। मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी। धूमधाम से तीन दिन तक अन्नकूट उत्सव मनाया गया। नित्य पूजा की व्यवस्था भी कर दी गयी। भक्तों की भीड़ होने लगी।

"एक दिन पुरीजी मूर्ति के सामने बैठे ध्यान कर रहे थे। भाव-समाधि में श्रीगोपाल ने उनसे कहा, 'भक्तश्रेष्ठ, बहुत काल तक भूगर्भ में रहने के कारण मेरे सारे शरीर में जलन हो रही है। तुम जगन्नाथपुरी से मलय-गिरी चंदन लाकर मेरे शरीर पर उसका लेप चढ़ाओ, मुझे शीतल करो।'

"माधवेंद्रपुरी अपने दो पुजारी शिष्यों को श्रीगोपाल की सारी व्यवस्था सौंपकर तत्काल जगन्नाथपुरी के लिए चल दिये।

"जगन्नाथपुरी के रास्ते रेणु नाम का तीर्थ पड़ता है। वहां श्रीगोपीनाथ का मंदिर है। भक्त सब धनी हैं, इसलिए भगवान का बढ़िया साज-श्रृंगार किया जाता है। वहां की पूजा-प्रणाली भी भव्य है। भोग में रोज बहुत से पकवान पधराये जाते हैं, जिनमें खीर अवश्य होती है। गोपीनाथ को खीर बहुत प्रिय है। वहां खीर को 'अमृतकेलि' कहते हैं। रोज रात की आरती में मिट्टी के बारह पात्रों में अमृतकेलि धरायी जाती है।

"माधवेंद्रपुरी ने गोपीनाथ की पूजा-आरती भोग-नैवेद्य आदि देखे, दर्शन किये और बड़े प्रभावित हुए। सोचने लगे, व्रज लौटकर अपने श्री-गोपाल की पूजा भी इसी तरह किया करूंगा। 'अमृतकेलि' का भोग उन्हें विशेष रूप से पसंद आया।

"गोपीनाथ मंदिर से गांव के बाहर अपने मुकाम पर लौटे तो अमृत-

केलि के ही बारे में सोच रहे थे। एक बार तो यह खयाल भी मन में आ गया कि काश थोड़ी-सी अमृतकेलि खाने को मिल जाती। फिर पश्चात्ताप भी हुआ। अयाचित व्रत वाले संन्यासी को किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं करनी चाहिए। इस तरह की इच्छा होना ही पाप और अपराध है।

"मन को कसकर माधवेंद्रपुरी हरि-भजन में लग गये। आधी रात हो गयी। तभी सुनाई दिया, जैसे कोई उनका नाम लेकर पुकार रहा हो—देखा तो कोई अपरिचित एक पात्र लिये चला आ रहा था। समीप आकर बोला, 'महाराज, मैं श्रीगोपीनाथ भगवान का पुजारी हूं। साक्षात भगवान ने आपके लिए यह अमृतकेलि का पात्र प्रसाद के रूप में भेजा है।'

"पुरी महाराज के हाथ में पात्र देकर पुजारी उनके चरणों में लोट गया और कहने लगा, महाराज, शयन आरती के बाद घर जाकर सोया, तो सपने में गोपीनाथ ने कहा, 'पुजारी, मेरा एक प्रिय भक्त माधवेंद्रपुरी गांव के बाहर वट वृक्ष के नीचे ठहरा है। मैं उसके लिए अमृतकेलि का एक पात्र चुराकर लाया हूं। बाहर के आले में मैंने उस पात्र को रखा है। तुम अभी जाकर वह पात्र उसे दे आओ।'

"मैं उसी समय मंदिर गया। बाहर के आले में सचमुच अमृतकेलि का एक पात्र रखा था। वह सायंकालीन भोग के बारह पात्रों में से ही था। खीर का वह बरतन उठाकर मैं आपको खोजता हुआ यहां आ गया। धन्य हो भक्तराज, आपके कारण आज मुझे भी साक्षात् भगवान के दर्शन हो गए। उसने पुनः पुरीजी के चरण छुए और लौट गया।

"पुरीजी ने पात्र लिया तो दोनों हाथ थर-थर कांप रहे थे। भगवान का यह अनुग्रह देखकर आंखों से आंसू बहने लगे। खीर का प्रसाद खाते जाते थे और रोते जाते थे। फिर खाली पात्र अपनी झोली में रख रात में ही वहां से चल दिये।

"सवेरे भक्त के लिए भगवान के खीर चुराने की बात सारे गांव को मालूम हो गयी। लोग भक्तराज माधवेंद्रपुरी के दर्शनों को दौड़ पड़े। लेकिन तबतक माधवेंद्रपुरी जगन्नाथपुरी पहुंच गए थे।

"तब से श्री गोपीचंद नाथ का नाम 'क्षीरचोर गोपीनाथ पड़ गया।"

विष्णुप्रिया ने शची मां का मन तो कथा कहने में उलझा दिया, लेकिन

स्वयं उसका मन शांत न हो सका।

सास के अनन्त आग्रह पर किसी तरह दो कौर निगलकर और रसोईघर का सारा काम निबटाकर विष्णुप्रिया अपने कमरे में आई। उसके मन की उदासी निरंतर बढ़ती जा रही थी। नित्य क्रमानुसार गौरहरी का बिस्तर लगाकर वह अपनी चटाई पर भगवद्गीता लेकर बैठ गयी। पर पढ़ने में आज उसका मन नहीं लगा। प्रभु की स्मृतियां उसके मन को विकल करने लगीं। चार-पांच दिनों से उनके दर्शन जो नहीं हुए थे।

भगवद्गीता बंद कर उसने श्रीमद्भागवत पुराण उठाया। दोनों हाथों में लेकर पहले उसे माथे से लगाया और फिर पन्ने पलटने लगी। 'हे प्रभो, जिस भागवत की रचना करके व्यास मुनि के मन को शांति मिली उसका पारायण आज मेरे मन को भी शांति प्रदान करे।'

दशम स्कंध में उसका मन रमता गया। वृन्दावन में यमुना-तीरे कृष्ण-लीलाएं, ऋतु वर्णन, वेणुगीत, रासलीला, वह तल्लीन होकर पढ़ती रही। पृष्ठ पलटते रहे, अक्रूर श्रीकृष्ण को लेने आये, शरद पूर्णिमा की चांदनी निस्तेज हो गई। आनंद ठंडा पड़ गया। गोपियों की विरह-व्यथा में हर श्लोक आंसू टपकाने लगा।

वह बिलख उठी। गोपियों की विरह-व्यथा उसकी अपनी व्यथा थी। आंखों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। शोकाकुल होकर उसने चारपाई की पाटी पर अपना मस्तक टिका दिया और आर्त क्रंदन कर उठी, "हे कृष्ण! हे प्रभो! हे प्रभो..."

रोते-रोते उसकी आंख लग गयी, शायद एक क्षण को और उसने सुना, "प्रिये-प्रिये!" मस्तक पर उसी चिर-परिचित हाथ का स्नेह भरा स्पर्श। अर्धोन्मीलित नयन युग्म से उसने देखे परिचित चरण कमल, और चंदन की वही जानी-पहचानी सुगंध।

उसने मस्तक उठाकर ऊपर देखा और भरी हुई आंखें पोंछने लगी। तभी गौरहरी ने उसे ऊपर उठाकर आलिंगन में बांध लिया और उसके आंसू पोंछते हुए भीगे स्वर में कहा, "प्रिये, इतना दुःख, इतना शोक, इतनी विरह-व्यथा?"

पति के दृढ़ आलिंगन से उसका सारा शरीर रोमांचित और हृदय

शीतल हो गया। उनकी छाती पर मस्तक रखकर उसने पूछा, "आप इस समय कैसे आ गए?"

उसने हंसकर कहा, "प्रिये, तुम्हारी पुकार पर दौड़कर आना मेरा धर्म है। हरिदास के घर कीर्तन हो रहा था। तुम्हारी आर्त पुकार मेरे कानों में पड़ी, मन व्याकुल हो गया। चुपचाप कीर्तन में से उठा और सीधा यहां आ गया।"

विष्णुप्रिया ने लजाकर अपराध भाव से कहा, "प्रभो, आज मेरा मन जाने क्यों बहुत उदास हो गया था। आप दिन-प्रतिदिन अनासक्त होते जा रहे हैं। परंतु मेरी आसक्ति कम नहीं हो रही, उलटे बढ़ती जा रही है। आपके चरणों से बंधा हुआ मन तिलमात्र भी विलग नहीं होता।"

"प्रिये, तुम्हारी यह आसक्ति अनासक्ति से कहीं श्रेष्ठ परम भक्ति का ही एक-रूप है। तुम्हारी यह आसक्ति मुझे अत्यंत प्रिय है। वह मेरा प्राण ही है। शान्त हो जाओ, प्रिये !"

उसका मन शांत हो गया। पूछा, "आधी रात वीत चुकी है। दूध और फलाहार ले आऊं क्या?"

"नहीं, शाम को महाप्रसाद का भोजन हुआ था। मैं तुम्हारे लिए प्रसाद लाया हूं।"

उत्तरीय के एक छोर में बंधा हुआ केले के पत्ते को उसने खोला, विष्णुप्रिया को चारपायी पर अपने नजदीक बिठाया और प्रसाद उसके हाथ में दे दिया।

प्रसाद खाते-खिलाते वह उसे हरिदास के आश्रम के बारे में, कीर्तन के बारे में, हरि-नाम के प्रचार-कार्य के बारे में जानकारी और नाम-जप के महत्त्व के बारे में बताता रहा।

अंत में वह बोली, "प्रभो, आप अब सो जाइए।"

वह बादाम का तेल उसके तलवों पर मलने लगी। बार-बार यही विचार उसके मन में आता था कि ये चरण कभी मुझसे दूर न हों, और उसकी आंखें भर-भर आती थीं।

चरण-सेवा करते हुए एक बार उसे ऐसा लगा, मानो पलंग पर गौरांग नहीं, साक्षात विष्णु लेटे हुए हैं और उनके पाद पद्मों से एक दिव्य

शक्ति उसके हाथों से होती हुई उसके सारे शरीर में प्रवेश कर रही है।

कब उसको नींद लग गयी, उसे पता भी नहीं चला। सुबह जागी तो बाहर उजाला हो गया था। वह जल्दी-जल्दी उठी। गौरहरी का बिस्तर खाली था। प्रभु कितनी ही देर से क्यों न सोवें, सुबह जल्दी उठकर घाट पर स्नान के लिए जाने का उनका नियम नहीं चूकता।

वह बाहर आयी। शची मां रोज की तरह घाट पर जा रही थीं। वह झटपट अपने नित्य के कामों में लग गयी। विष्णुसहस्रनाम का पाठ करते हुए उसने अपनी तुलसी-पूजा समाप्त की। शची मां और प्रभु दोनों के लिए पूजा की तैयारी करके रख दी। बाड़ी से सब्जी तोड़कर ले आई और रसोईघर में अपने काम में जुट गयी।

"बहू !"

रोज की तरह शची मां की पुकार सुनाई पड़ी। वह बाहर आई। उसने उनके हाथ से धुले हुए गीले वस्त्र और लोटा ले लिया। तभी फाटक से 'मां-मां' पुकारता हुआ गौरहरी भीतर आया। उसके साथ नित्यानंद, गदाधर और मुकुंद दत्त थे। उनके पैर धूल से भरे हुए थे। शरीर पर के कपड़े मैले हो गए थे। लंबी यात्रा के थकान-भरे चिह्न सभी के शरीरों पर दिखाई दे रहे थे।

विष्णुप्रिया घूंघट के भीतर से अपने धूलि-धूसरित पति की ओर चकराई हुई नजर से देखती रह गई।

उसकी ओर उड़ती हुई निगाह डालकर गौरहरी ने कहा, "मां, दूध और केले हों तो दो। हम लोग बहुत दूर से चलकर आए हैं। दूध और फलाहार लेकर घाट पर जायंगे और खूब नहायंगे।"

विष्णुप्रिया का माथा चकरा गया। प्रभु कह रहे हैं, कि हम लोग बहुत दूर से चलकर आये हैं। स्पष्ट दिख रहा है कि बहुत दूर से चलकर आ रहे हैं। तो रात में जो देखा और अनुभव किया, क्या वह सब सपना था? रात में प्रभु ने कहा था, 'चुपचाप कीर्तन में से उठा और सीधा यहां आ गया।' मुझे साथ बिठाकर प्रसाद भी खिलाया। चरण-सेवा करते-करते मेरी आंख लग गई। यह क्या रहस्य है...

१९

इसी तरह दिन गुजरते रहे थे। पौष का महीना समाप्त होने को था। हवा में ठंडक बढ़ रही थी। गौरहरी की अंतर्मुखता और आत्मतल्लीनता दिनोंदिन बढ़ती जाती थी, परंतु उसके दैनंदिन कार्यों में कोई व्यवधान नहीं पड़ता था। सवेरे उठकर गदाधर के साथ घाट पर स्नान करने जाना, लौट कर पूजा और फिर भोजन। स्नान और भोजन के समय दो-चार भक्त रोज उसके साथ लगे रहते थे। उसका मन होता तो वह भक्तों से वार्तालाप करता, नहीं तो अपने ही विचारों में मग्न चुपचाप भोजन कर लेता। भोजन में क्या बना है और कैसे बना है, इसकी ओर उसका ध्यान अब जाता ही नहीं था। जो परोसा जाता, खा लेता, कई बार पूरा भोजन किये बिना ही उठ जाता। भोजन के बाद या तो आराम करता अथवा श्रीवास के घर चला जाता।

गौरहरि के कीर्तन की ख्याति नवद्वीप के बाहर ठेठ मथुरा-वृंदावन और जगन्नाथपुरी तक फैल गयी। अनेक वैष्णव दल बनाकर उसका कीर्तन सुनने और उसका दर्शन करने के लिए नवद्वीप आने लगे। कीर्तन सुनकर और गौरहरि के दर्शन कर आगन्तुक वैष्णव भक्त अपने को धन्य मानते।

विभिन्न स्थानों से आये हुए भक्तों में गौड़ देश, राढ़ देश और उत्कल देश के भक्तों की संख्या अधिक होती थी। वे अपने यहां धर्म-भ्रष्टता की और वैष्णवों पर किये जाने वाले अत्याचारों की कहानियां सुनाते। सुन-कर गौरहरी विचार-मग्न हो जाता था।

एक बार पुरी से कुछ भक्त गौरहरी का दर्शन करने नवद्वीप आए। तीसरे पहर श्रीवास उन्हें लेकर गौरहरी के घर पहुंचे।

गौरहरी ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए तो बेचारे सभी सकुचा गये। बोले, "गौर प्रभो, आप यह क्या कर रहे हैं?"

गौरहरी ने तनिक हंसकर कहा, "आप सब पुरी से पधारे हैं। मुझे साक्षात् जगन्नाथ-रूप लगते हैं।"

फिर धर्मशास्त्र की बातें शुरू हुईं, पुरी की चर्चा चली और जगन्नाथ का वर्णन सुनते-सुनते गौर प्रभु को भावावेश हो गया।

जब सचेत हुए तो गौर प्रभु व्याकुल होकर बोले, "संसार में प्रयत्न करने से सब प्राप्त हो जाता है, पर श्रीकृष्ण-भक्ति की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है। भगवद् प्राप्ति यदि करनी है तो सर्वस्व का त्याग कर केवल उसी का चिंतन और स्मरण करते रहना चाहिए।"

इतना कहकर वे पुनः अंतर्मुख हो गए। भावावेश, अंतर्मुखता और एकांतवास की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। भजन-कीर्तन में जाना भी कम हो गया था। श्रीवास के यहां भी अब यदा-कदा ही जाते थे। लेकिन आज उत्कलवासी भक्तों के विशेष अनुरोध पर, सबके जलपान के बाद, भक्त मंडली के साथ कीर्तन के लिए श्रीवास के घर की ओर चल दिये।

प्रभु चले गए, आंगन खाली हो गया। विष्णुप्रिया ने शची मां को सब्जी संवारने के काम में लगाया और स्वयं सूप लेकर चावल चुनने बैठी। तभी बाहर से पुकारती हुई कांचना दीदी और शर्वरी दीदी अंदर आईं।

आकर दोनों ने शचीं मां के चरण छुए। फिर तब शर्वरी दीदी ने "शची मां, हम विष्णुप्रिया को लेने आई हैं। उस दिन घाट पर आपसे बात हुई थी। आज ही भेज दीजिए।"

विष्णुप्रिया ने बहुत आना-कानी की, लेकिन शची मां ने एक न सुनी। आखिर उसे जाने के लिए राजी होना ही पड़ा।

कांचना और विष्णुप्रिया ने मिलकर भोजन बनाया। शर्वरी और शची मां बातें करती रहीं। सबने साथ बैठकर भोजन किया। विष्णुप्रिया काशी मां को बुला लाई। घर-द्वार और शची मां का भार उन्हें सौंप दोनों सहेलियों के साथ, शची मां के चरणों में सिर नवा कर, वह आश्रम के लिए चल दी।

तीनों नौका से उस पार मधुपुर के छोटे घाट पर उतरीं। उस समय सूर्य क्षितिज के नीचे उतर रहा था।

चलते-चलते सूरज डूब गया। सामने वृक्षों में दीये टिमटिमाने लगे। कांचना दीदी ने हाथ के इशारे से कहा, "वहीं हमारा आश्रम है।"

उनकी आहट पाते ही दो वैष्णवियां लालटेनें लेकर सामने आयीं। लालटेनों के प्रकाश में उन्होंने आंगन में प्रवेश किया। विस्तीर्ण आंगन में, बायीं तरफ, तीन-चार वैष्णवियां सफेद शाल ओढ़े बैठी थीं। सामने लंबा-चौड़ा बरामदा था जिसमें जाने के लिए तीन-चार सीढ़ियां थीं। बरामदे के दोनों कोनों में दो बड़े-बड़े लालटेन जल रहे थे। बरामदे से लगा कमरा पार करते ही आश्रम का मंदिर था। मंदिर में गुलाबी पोशाक से सजी बंसीधर की श्याम सलोनी मूर्ति के दर्शन कर विष्णुप्रिया विभोर हो गयी।

वह अभी मूर्ति की ओर टक लगाये खड़ी ही थी कि सहसा दस-पंद्रह वैष्णवियों ने आकर उसके चरण छूना शुरू कर दिये। वह भौंचक्की रह गयी। और दो पग पीछे हटकर उन्हें रोकती हुई बोली, "अरे अरे, यह क्या करती हो? कांचना दीदी, ये मेरे चरण छू रही हैं?"

उनमें से एक प्रौढ़ा ने सीधे होते हुए कहा, "आप गौरांगप्रभु की पत्नी अर्थात् साक्षात् विष्णु-पत्नी-लक्ष्मी ही हैं। हमारे बड़े भाग्य कि जो आपके दर्शन हुए।"

मना करने पर भी विष्णुप्रिया के चरण स्पर्श कर वे वैष्णवियां सामने के दरवाजे से अंदर चली गयीं।

वहां से कांचना उसे अपने कमरे में ले गयी। वहीं उन दोनों ने अपना-अपना सामान रखा। कांचना उसे बताती जा रही थी कि उसके चरण छूने वाली अधिकांश वैष्णवियां वृन्दावन-गोकुल से श्याम मुरारी के दर्शन करने आयी हैं। श्याम मुरारी का मंदिर बहुत पुराना और वैष्णवों का प्रख्यात तीर्थ है।

इसी समय एक वैष्णवी ने भीतर आकर कहा, "दीदी शर्वरी मां ने प्रियादीदी को लेकर मोटी मां के कमरे में जाने को कहा है।"

"चल विष्णुप्रिया, हाथ-पैर धोकर मोटी मां के पास चलें। फिर भोजन करेंगे। आज भजन हैं, इसलिए सब काम जल्दी पूरे करने हैं।" कहते हुए कांचना उसे दूसरे दरवाजे से पिछवाड़े के आंगन में ले गयी। आंगन में बड़ा तुलसी वृन्दावन था। आंगन के दोनों छोर पर केले के बाग थे। बायीं ओर केले के पेड़ों के पास हाथ-पांव धोने और स्नान करने की व्यवस्था थी।

कांचना के साथ उसने हाथ-पैर धोये। फिर वहां से ये तारिणी मां के कमरे में गयीं। एक आसन पर कत्थई रंग की शाल ओढ़े वृद्ध तारिणी मां बैठी जप कर रही थीं। खूब गोरा, शांत, तेजस्वी चेहरा था।

विष्णुप्रिया ने उन्हें प्रणाम कर कहा, "मोटी मां, मैं विष्णुप्रिया हूं, नवद्वीप की शची मां की बहू।"

उसके मस्तक पर हाथ रखकर उन्होंने आशीर्वाद दिया, "सौभाग्यवती बहू, सारे जग में तेरा यश फैले।"

विष्णुप्रिया को अपने पास बिठाकर तारिणी मां उससे नवद्वीप के नये समाचार पूछती और अपने संस्मरण सुनाती रहीं। उनका कमरा बहुत बड़ा नहीं था। दाहिनी तरफ तारिणी मां का सामान था। बायीं ओर दीवाल में जमीन से लगा हुआ एक चौरस आला था जिसमें श्रीकृष्ण की वस्त्रों से सजी हुई छोटी मूर्त्ति थी। उसके पास एक नन्हा दीपक मंद-मंद जल रहा था। तारिणी मां का यह नित्य उपासना करने का छोटा-सा मंदिर था।

भोजन के समय विष्णुप्रिया का परिचय सात-आठ वर्ष की खूब गोरी, सुंदर और हंसते चेहरे वाली एक बालिका से कराया गया। नाम था सलोनी; लेकिन वह हमेशा अपने-आपको श्याम सलोनी कहती थी।

भोजन के बाद सब मंदिर के कमरे में एकत्र हुईं। प्रमुख स्थान पर तारिणी मां और शर्वरी दीदी बैठीं, बाकी सब श्री कृष्ण की मूर्ति के सामने मुंहकर बैठ गयी। पहले प्रार्थना की गई। फिर सबने नेत्र मूंदकर ध्यान किया।

मृदंग और मंजीरों के साथ भजन-कीर्तन का समां बंधता गया। अंत में सबके आग्रह पर माधुरी नामक वैष्णवी ने अपने मधुर कंठ से यह भजन गाया।

"कालिंदी तट ठाडे नटवर कदंब-मूल मृदु बेनु बजावत।
गावत मिलि सखियन संग सुंदर सिर सिखिपिच्छ मुकुट मनि-मंडित।।"

उस स्वर माधुरी में सभी सराबोर हो गयीं। भजन समाप्त हो गया, परंतु उसकी लय और लालित्य सभी के हृदय में गूंजते रहे।

तारिणी मां के विशेष आग्रह पर माधुरी को एक भजन और गाना पड़ा।

सोहत सुठि स्याम संग राधा रसभीनी।
राधा मन लीन स्याम राधा हरि लीनी।।

अरुणोदय के समय विष्णुप्रिया जागी तो गोकुल-वृंदावन की वैष्णवियां जाने को तैयार थीं। रात में भजन गाने वाली वैष्णवी माधुरी भी उन्ही में से थी। उन्हें विदा देने के लिए आश्रम की सारी वैष्णवियां जमा हो गयीं। शर्वरी दीदी ने भगवान श्रीकृष्ण का प्रसाद और केले का पाथेय उनके साथ बांध दिया। एक-एक कर तारिणी मां के चरण छू अपनी-अपनी गठरी-पोटली उठाये, समवेत स्वर में 'हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः' जपती हुई वे अगले पड़ाव की ओर चल दीं।

भक्ति और प्रेम में आकंठ डूबी ये वैष्णवियां बिलकुल निर्लेप होती हैं। अजनबियों से भी बड़े उत्साह, स्नेह और अपनत्व से मिलती हैं, मानो बरसों का परिचय हो। लेकिन विदा होकर इस तरह चली जाती हैं मानो कोई जान-पहचान ही न हो, मुड़कर देखती तक नहीं। एक कृष्ण कन्हाई को छोड़ किसी से उनका रागात्मक संबंध नहीं होता।

थोड़ा प्रकाश होने पर कांचना उसे स्नान के लिए पोखर (पुकुर) पर ले गयी। रास्ते में आश्रम की जमीन, खेती-बाड़ी सब दिखाया। शर्वरी-दीदी के काका ने यह सारी जमीन आश्रम को दे दी। वह अमराई भी उन्हीं की थी। उधर खेत हैं। दाहिनी ओर पुष्प वाटिका है, पास में तुलसी वन है। बायीं ओर केलों का बाग है। बीच में साग-तरकारी उगाई जाती है। नीचे की ओर पुकुर है। वहां, उधर आश्रम की गौशाला है। खेती-बाड़ी से होकर गौशाला तक सारा काम वैष्णवियां ही करती हैं।

स्नान के बाद आश्रम का परिसर देखती हुई वे दोनों लौटीं तो शर्वरी-दीदी मंदिर में पूजा कर रही थीं। तारिणी मां आसन पर बैठी जप कर रही थीं। कुछ वैष्णवियां मुरली मनोहर का फूलों से श्रृंगार करने में लगी थीं।

कांचना ने धीरे से कहा, "यहां तो आरती में बहुत देर है। तब तक

श्याम सलोनी के यहां हो लिया जाए।"

सलोनी तारिणी मां के साथ उन्हीं के कमरे में रहती थी। ये दोनों वहां पहुंचीं तो वह अपने मंदिर में बैठी थी। मुख मूर्त्ति के सामने और पृष्ठ-भाग इन दोनों की ओर था। विष्णु-सहस्रनाम का जप करती हुई वह अपने श्याम की मूर्त्ति को नहलाने-पोंछने के बाद चंदन लगा रही थी।

कांचना उसे वहां छोड़कर चली गई और विष्णुप्रिया पूजा कार्य में सलोनी की मदद करने लगी। दोनों ने मिलकर फूलों से मूर्ति का श्रृंगार किया। फिर आरती की। आरती के बाद सलोनी ने विष्णुप्रिया के चरण छुये। विष्णुप्रिया ने उसके मस्तक पर हाथ फेरा और हंसते हुए कहा, "तुझे क्या आशीर्वाद दूं, बता ?"

सलोनी ने लजाकर कहा, "श्याम नित्य मेरे साथ रहें, यही आशीर्वाद दीजिए।"

विष्णुप्रिया ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा, "तथास्तु !"

"दीदी, अब यह प्रसाद लीजिए।"

उसने कटोरा भर दूध और एक लड्डू उसे दिया। विष्णुप्रिया ने बड़े वात्सल्य से आधा लडडू उसके मुंह में डाल दिया।

बड़े मंदिर की आरती के बाद सबने भोजन किया। और श्याम मुरारी के मंदिर की ओर जाते हुए विष्णुप्रिया ने कांचना से पूछा, "दीदी, तुम्हारे इस वैष्णवियों के आश्रम में भगवान की सेवा के सिवा क्या और कोई काम नहीं रहता ?"

"क्यों नहीं रहता ? वैष्णवियां दोपहर के अवकाश के समय सूत कातती हैं। मंदिर के और गांव के कपड़े सीती हैं। धर्म की शिक्षा लेती हैं। दोपहर के भोजन के पश्चात् तारिणी मां श्रीमद्भागवत बांचती और रोज दो घंटे उनका प्रवचन होता है। जिन्हें जो काम सौंपा जाता है वे उन कामों को करती रहती हैं। खेती-बाड़ी, गोशाला, पुष्पोद्यान के काम तो किये ही जाते हैं। गीता का पठन-पाठन, पुराण-वाचन, वेद वेदांगों की चर्चा, जप-तप बहुत काम करने को हैं।"

"विष्णुप्रिये, जिसके मुख में सारा ब्रह्मांड है, उसे सभी कंठस्थ रहेगा।"

चलते-चलते उसने विष्णुप्रिया का हाथ अपने हाथ में लिया। स्नेह

की गरमाहट ने विष्णुप्रिया के हृदय में प्रवेश किया। अपने घुटे हुए मन को खाली कर देने की उसे इच्छा हुई।

"दीदी, प्रभु का स्वभाव आजकल बदलता जा रहा है।"

श्याम मुरारी के दर्शन कर लौटते हुए विष्णुप्रिया ने कांचना दीदी को अपने मन की व्यथा बताई, "दीदी, प्रभु का स्वभाव आजकल बदलता जा रहा है। खूब उदासीन रहने लगे हैं। घंटों अपने ही विचारों में खोये बैठे रहते हैं। श्रीवास के घर कीर्तन में भी ज्यादा नहीं जाते। चेहरे पर की वेदना मन की घुटन का परिचय देती है। देखकर मैं तड़प उठती हूं, परंतु प्रभु से पूछने का साहस नहीं होता।"

"शुभ लक्षण है सखि, प्रभु के हाथों महान कार्य संपन्न होने का इसे पूर्व संकेत समझकर निश्चित रहो।"

तीसरे पहर विदा होने के लिए, कांचना के पीछे-पीछे, विष्णुप्रिया तारिणी मां के पास गयी। श्याम सलोनी भी वहीं खड़ी थी।

विष्णुप्रिया ने प्रणाम कर विदा मांगी, "मां, एक रात इस पवित्र आश्रम में रहने को मिला इसे अपना सौभाग्य समझती हूं। यह आश्रम नहीं, साक्षात् वृंदावन है।"

"विष्णुप्रिये, तू स्वयं ही भाग्यवती है, इस आश्रम में तेरा कुछ समय के लिए निवास हुआ। तेरे शुभ चरण पड़े।"

बोलते-बोलते उनकी आंखें बंद हो गयीं। वे बुदबुदायीं...

आशीर्वाद देते हुए तारिणी मां ने कहा, "बेटी, प्रकाश आ रहा है। महान कार्य होने वाला है। यशस्वी हो।"

चलने से पहले सलोनी का हाथ पकड़कर उसने कहा, "चल, तेरे श्याम का दर्शन कर लें।"

एक वैष्णवी ने परिहास किया, "विष्णुप्रिया दीदी, हमारी सलोनी का श्याम कुंजवन में कहीं छिपकर बैठ गया है, मिलता ही नहीं, आप खोज दीजिए न?"

सलोनी ने रूठे हुए स्वर में कहा, "दीदी, यह माधवी दीदी सदा मुझसे ठिठोली किया करती है। क्या श्याम को रात-दिन मेरे मंदिर में ही बैठे रहना चाहिए? क्या उसे दूसरा कोई काम नहीं है?"

मंजूषा ने कहा, "मुकुट में मोरपंख खोंसे गर्दन टेढ़ी कर बांसुरी बजाने अथवा कंधे पर कंबल डाले जंगल में गौएं चराने के सिवा उसे और काम है ही क्या ?"

सब खिलखिलाकर हंस दीं। परंतु विष्णुप्रिया ने कहा, "अपनी श्यामसलोनी के श्याम को मैं खोज दूंगी । वह अब मंदिर में आकर बैठ गया होगा। चल, उसके दर्शन कर लें ।"

विदा की वेला आ गई। विष्णुप्रिया बारी-बारी से सभी वैष्णवियों से मिली । श्याम सलोनी तो उससे चिपक गयी। अपने दोनों हाथों से उसने विष्णुप्रिया की कमर पकड़ ली। उस मनमोहिनी किशोरी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। विष्णुप्रिया के लिए भी अपने आंसू रोकना कठिन हो गया। उसने उसे अंक में भर लिया ।

कांचना नवद्वीप तक पहुंचाने के लिए उसके साथ गयी। रास्ते में उसने विष्णुप्रिया को सलोनी के बारे में विस्तार से बताया। काशी में वह शर्वरी दीदी को गंगाधर की सीढ़ियों पर पड़ी मिली थी। दस-बारह दिनों की शिशु बालिका को कीमती रेशमी वस्त्रों में लपेट कर जाने कौन वहां छोड़ गया था। शर्वरी दीदी उसे उठा लायीं और मां की तरह पाला। तारिणी मां और शर्वरी दीदी को बस एक ही चिंता है। उसके लिए कोई योग्य वर खोजने की। यद्यपि वह हमारे आश्रम में बढ़ रही है, पर हम उसे वैष्णवी नहीं बनाना चाहतीं।"

२०

दूसरे दिन सवेरे, नित्य की भांति, विष्णुप्रिया ने आंगन लीपा, स्नान किया और वह तुलसी-वृंदावन के पास बैठी रांगोली काढ़ रही थी कि उसका बड़ा भाई श्याम आया। वह उससे तीन वर्ष बड़ा था।

विष्णुप्रिया ने पूछा, "श्यामदा, आज सुबह-सुबह आए, क्या बात है ? सब ठीक तो है न ?"

'यों तो सब ठीक है, पर मां को पिछले चार दिनों से ज्वर आ रहा है, अभी तक उतरा नहीं। वह तुम्हें याद कर रही हैं, पिताजी ने तुम्हें बुला लाने को भेजा है।"

शची मां घाट गयी हुई थीं। जैसे ही लौटीं और उन्हें पता चला, फौरन विष्णुप्रिया को उसके भाई के साथ भेज दिया।

शची मां अपनी पूजा और रसोई से निपट कर बरामदे में बैठी जप करने लगीं। थोड़ी देर बाद, गदाधर सिर झुकाये दीनता की मूर्ति बना आया और उनके पांवों में लोटकर फफक उठा। बड़ी मुश्किल से अपने आपको संयत कर उसने कहा, "मां, जिसका भय था, आखिर वही हो रहा है। प्रभु किसी की भी बात नहीं सुनते। उन्होंने संन्यास लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया है..."

"काहे का ?"

"प्रभु कहते हैं...मैं....मैं..."

गदाधर आगे के शब्द कहे इससे पहले ही उनकी प्रतिध्वनि शची मां के कानों में पड़ गयी।

इसी समय गदाधर ने आगे के शब्द किसी तरह कहे...

" प्रभु कहते हैं, 'मैं-मैं संन्यास लूंगा। इस नवद्वीप से बाहर जाऊंगा।' मां, यहां प्रभु हैं, तब तक ही प्रकाश है। वे गए कि नवद्वीप में अंधेरा फैल जाएगा। मां-मां, आप उनका मन फेरिये। हम में से किसी की भी वे नहीं सुनते। हमने उनसे खूब प्रार्थना की, पर वे ध्रुव के समान अचल हैं। वे कहते हैं, 'मेरा यहां का कार्य समाप्त हो गया है।' "

सुनते ही शची मां के हाथ से जयमाला छूटकर नीचे गिर पड़ी। सारा शरीर कांप उठा।···हाय, मैं कितनी अभागिन हूं ! आठ लड़कियां हुईं और सभी असमय चली गयीं। फिर दो पुत्र हुए। विश्वरूप किशोरावस्था में ही एक रात अचानक घर छोड़कर चल दिया। उसका आज तक कोई समाचार नहीं मिला। निमाई को देखकर मन में धीरज धरा। उसने विवाह किया, गृहस्थी बसाई। पर अब एकदम उसे यह क्या हो गया ? वह भी संन्यासी हो जाएगा तो मेरा बुढ़ापा और निस्संतान बहू की उम्र कैसे कटेगी ? क्या मेरे भाग्य में दुःख-ही-दुःख लिखा है...

इतने में 'मां, ओ मां,' पुकारता हुआ गौरहरी अंदर आया। बचपन में वह ठीक इसी तरह पुकारता हुआ घर में आया करता था। उस आवाज को सुनकर और उसका हंसमुख चेहरा देखकर शची मां के सारे संदेह और सभी आशंकाएं तिरोहित हो गईं। मन में कष्ट और क्लेश, दुःख और संताप का लेश भी न रहा।

कुछ समय पहले गदाधर ने जो कहा वह सब झूठ। झूठ न हो फिर भी उसमें तथ्यांश नहीं। उसने हंसी में वैसा कह दिया होगा, अथवा चिढ़कर भी कह दिया होगा। वैसे भी आजकल उसके भक्त हमेशा उसे घेरे रहते हैं। उसे अकेला शांति से बैठने के लिए अवसर नहीं देते। अब उसका चौबीसवां वर्ष चल रहा है। गंभीरता से चिंतन या विचार करने के लिए उसे अवकाश ही नहीं देते। इसलिए भी उसने चिढ़कर वैसा कह दिया होगा।

माता के पास आकर गौरहरी ने कहा, "मां, मध्याह्न का अतिथि द्वार पर आया है, भिक्षा दो।" यह कहते हुए उसने रसोईघर की ओर देखा।

शची मां ने हंसकर कहा, "यजमान ही अतिथि बनकर आया है। पर बहू गयी है मायके। समधिन को चार दिन से ज्वर आ रहा है। सुबह श्याम बुलाने आया था। तू हाथ-पैर धो कर आ। मैं परोसती हूं।"

भोजन के बाद मां बरामदे में चारपाई पर लेटकर आराम करने लगीं। निमाई आकर पास बैठ गया और उनके पांव पलोटने लगा।

मां ने विस्मित होकर कहा, "यह क्या रे निमाई! बचपन याद आ रहा है क्या? छोटा था तो अपने नन्हें हाथों से इसी तरह मेरे पैर दबाया करता था।"

"हां मां, बचपन ही याद आ रहा है और यही चाहता हूं कि तुम्हारे मन में हमेशा-हमेशा बाल-निमाई बना रहूं।" फिर थोड़ी देर इधर-उधर की बातें कर उसने सहसा कहा, "मां आपकी आज्ञा चाहता हूं।"

शची मां एकदम उठकर बैठ गयीं। और भयाकुल स्वर में बोलीं, "तो गदाधर ने कुछ समय पहले आंसू बहाते हुए जो कहा, वह सच है! तू घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बनना चाहता है। पर यह भी सोचा है कि मुझे,

बहू को और इस घर-द्वार को किसके सहारे छोड़ जाएगा !"

निमाई सुनता रहा। उन्होंने आगे कहा, "धर्म-प्रचार का जो काम तू कर रहा है उसे घर में रहकर भी कर सकता है। तेरे गुरु अद्वैताचार्य और श्रीवास आदि तेरे दूसरे साथी गृहस्थ ही हैं न। किसीने तो संन्यास नहीं लिया।

"मां, प्रत्येक प्राणी अपना नियत कार्य लेकर जन्म लेता है। मेरा नियत कार्य उन सबसे भिन्न है। फिर मेरा यहां का कार्य अब समाप्त भी हुआ," कुछ रुककर आगे उसने गंभीर स्वर में कहा, "मां, कौसल्या माता ने प्रभु रामचन्द्र को बारह वर्ष बनवास जाने की आज्ञा दी थी।"

"रामचन्द्र बारह वर्ष के बाद लौटकर माता कौसल्या के पास आये थे। तू तो संन्यासी बनकर सदा के लिए जाना..." कहते-कहते शची मां अचेत हो गयीं। उसने माता का मस्तक अपनी गोद लिया और उन्हें पंखा झलने लगा।

थोड़ी देर बाद शची मां ने आंखें खोलीं वे उठकर बैठ गयीं। निमाई पानी का प्याला उनके मुंह के पास ले गया। उन्होंने एक घूंट पानी पिया और बोलीं, "निमाई यह मेरे लिए तेरे हाथ का अंतिम पानी मेरे मुंह में गंगाजल और तुलसी-दल होता..."

कहते-कहते वे सिसक उठीं।

"मां, तुम ज्ञानवती हो, मेरी बुद्धि, धर्मनिष्ठा और नियत कार्य की गंगोत्री हो। सारे प्राणी पूर्व संबंध से बंधे हुए हैं। एक जगह का संबंध समाप्त हुआ कि दूसरी जगह जाना ही पड़ता है। मां, मेरा यहां का कार्य समाप्त हो गया है। तुम आज्ञा नहीं दोगी तो मैं नहीं जाऊंगा। परंतु फिर मेरा जीवन मृतप्राय हो जाएगा। मेरा नियत कार्य मुझे बुला रहा है। मैं कहीं भी चला जाऊं, पर पुत्र के नाते अपना कर्तव्य करता रहूंगा।"

"मुझे अपनी नहीं, बहू की चिंता है, निमाई। तेरे गृहत्याग के बाद वह निराधार हो जाएगी।"

"मां, भगवान का पैदा किया कोई प्राणी निराधार रहीं है। सच्चा सहारा तो भगवान है।"

"तू मेरी आज्ञा मांग रहा है। पर बहू से तो पूछ।"

"निश्चित रहो, मां, उसकी अनुमति के बिना मैं गृहत्याग नहीं करूंगा। पर तुम मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दो।"

उसने माता के चरणों पर सिर रख दिया। उसकी कोमल, काली, घुंघराली लटों से उनके चरण ढक गए। क्षण भर वे उन केशों को देखती रहीं। उनका कंठ भर आया। बायें हाथ से मुंह दाब कर कांपता हुआ दायां हाथ उन्होंने उसके मस्तक पर रख दिया।

शाम को विष्णुप्रिया लौटी तो शची मां अपने कमरे में शाल ओढ़े सोयी हुई थीं। वह उनके पास जाकर बैठ गयी और मस्तक पर हाथ रख-कर देखा कि ज्वर तो नहीं है।

"नहीं बहू, पीठ दुखती थी, इसलिए जरा लेट गयी। तेरी मां कैसी हैं अब?"

"ज्वर तो है, पर विषम नहीं। कविराज देख गए हैं। चिंता की बात नहीं।"

वह शची मां की पीठ दबाने लगी। उनका मन व्याकुल हो गया। मैं तो पका पान, कल सूख जाऊंगी। पर यह अकेली इस घर में कैसे किसके सहारे रहेगी, कैसे दिन काटेगी?

जब सांझ पूरी तरह घिर गई तो विष्णुप्रिया ने उठ कर तुलसी क्यारे दीप जलाया, घर में दीया-बत्ती की और सास के चरण छूकर रसोई के काम में लग गई।

शची मां उसी तरह विचारों में डूबी रहीं।

रात को गौरहरी आया। बहुत प्रसन्न था। आज उसने भोजन भी खूब रुचिपूर्वक किया। भोजन के बाद कुछ देर शची मां से बोलता-बतियाता रहा।

काम पूरा कर विष्णुप्रिया अपने कमरे में आई तो गौरहरी चारपाई पर दीवाल से टिका आंखें बंद किये सुरीली आवाज में श्लोक गुनगुना रहा था। आहट पाकर उसने आंखें खोलीं और हंसकर स्वागत किया: "आओ प्रिये बैठो। तुम कांचना दीदी का आश्रम देखने गयी थीं। कैसा लगा?"

जो देखा था और जो उसे लगा, वह सब उसने बता दिया। फिर कुछ

देर चुप रहकर बोली, "वहां श्याम मुरारी के दर्शन करने गयी थी। मुझे तो मूर्त्ति का रूप ही बदला हुआ दिखाई दिया। श्याम मुरारी के स्थान पर अपने प्रभु के ही दर्शन हुए। प्रभु ही मेरे श्याम मुरारी, मेरे कृष्ण हैं..." कहते-कहते जीभ काट कर वह एकदम लज्जित हो गई।

गौरहरी सहसा विचारमग्न हो गया और गंभीर स्वर में बोला, "प्रिये, तुमसे कहने का उचित समय आ गया है, इसलिए कहता हूं। जन्म लेने वाले हर प्राणी को नियति के द्वारा निश्चित नियमानुसार चलना पड़ता है। एक दूसरे का संग-साथ पूर्व संबंधों पर अवलंबित है। श्रीकृष्ण को भी व्रजभूमि का अपना नियत कार्य समाप्त हो जाने पर गोकुल छोड़-कर मथुरा और उसके बाद द्वारका जाना पड़ा था।"

उसने सशंक होकर पूछा, "प्रभो, आप यह सब इस समय क्यों कह रहे हैं?"

"प्रिये, धर्म का चतुर्दिक् ह्रास, शाक्त-पंथियों की हिंस्रता, पंडितों का अहंकार और वितंडावाद, सर्वत्र अनाचार और अत्याचार देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है।"

"लेकिन प्रभो, धर्म-कार्य के लिए गृहत्याग की क्या आवश्यकता है?"

"संन्यास लिये बिना धर्म प्रचार का अधिकार जो प्राप्त नहीं होता।"

"प्रभो, अगर मेरे होने से बाधा है तो मैं पिता के घर चली जाऊंगी। आप गृह त्याग न करें। अपना नियत कार्य निश्चित और निर्विघ्न संपन्न करते रहें।"

"प्रिये, तुमने सर्वथा अपने उपयुक्त बात कही है। पर मेरा यहां का नियत कार्य पूरा हो गया है। बाहर जाने के लिए मेरे प्राण छटपटा रहे हैं, लाखों की आर्त पुकारें कानों में गूंज रही हैं। संन्यास ग्रहण किये बिना मुझे सुख नहीं मिलेगा। प्रिये, मुझे अनुमति दो।"

"प्रभो, आज तक आपके सुख से अपना सुख मैंने कभी अलग नहीं माना है। संन्यास धर्म ग्रहण करने से यदि आपको सुख प्राप्त होता हो तो-तो प्रभो...आपके सुख को ही मैंने सदा अपना सुख माना है। अगर संन्यास

लेकर आप सुखी हैं..." कहते-कहते उसकी रुलाई फूट पड़ी। हिचकियों के बीच बोली, "सांसारिक सुखों की मैंने कभी कामना नहीं की। आपके नित्य दर्शन और सेवा ही मेरा अनमोल धन और परम सुख रहा है। ये दोनों ही न रहे तो कैसे जीऊंगी। आपको अनुमति दे सकूं इतनी शक्ति मुझमें..."

वह फूट-फूट कर रोने लगी। गौरप्रभु ने उसे अपने नजदीक खींचकर अंक में भर लिया और कहा, "प्रिये, स्त्री पुरुष की शक्ति है। स्त्री के त्याग पर ही पुरुष के चारों पुरुषार्थ अवलंबित हैं। तुम साधारण स्त्री नहीं हो, तुम मेरी शक्ति हो। यदि इस तरह दुर्बल हो गईं तो मैं क्षीण हो जाऊंगा। फिर हम भिन्न नहीं, एक ही नियत कार्य करने के लिए यहां आए हैं। नियत कार्य करने के लिए भिन्न स्थानों में रहना पड़े, फिर भी मैं नित्य यहां तुम्हारे पास ही हूं। तुम जब भी मेरा स्मरण करोगी, मैं प्रकट हो जाऊंगा। यहां का अपना कार्य समाप्त कर हमें अपने स्थान लौट जाना है। स्मरण करो, प्रिये..."

उसके दृढ़ आलिंगन से उसे रोमांच हो गया। ऐहिक और पारलौकिक जीवन की धूमिल सीमा-रेखा विलुप्त हो गयी। इस जग से संबंध टूट गया। और बादलों पर से तैरती हुई वह अलौकिक जग की ओर चल पड़ी!

"प्रिये..."

वह पुनः इस लोक में आ गई। आलिंगन से छूटी और संभल कर बैठ गयी।

"प्रभो, आपके महान कार्य में मैं बाधक नहीं होऊंगी। पर मां की क्या अवस्था होगी?"

"माता की आज्ञा मुझे मिल गयी है।"

वह विस्मित उसकी ओर देखती रह गई।

कुछ देर बाद उसने पूछा, "तो प्रभो, आप कब जा रहे हैं?"

गौरहरी एक क्षण के लिए गंभीर हो गया, फिर तुरंत ही हंस कर बोला, "तुम दोनों की अनुमति मिल गयी, अब अधिक विलंब उचित न होगा।"

उसने अनुमति तो दी, पर मन विकल हो रहा था। धीरे से बोली, "प्रभो, आधी रात बीत चुकी है। अब आप सो जाइए।"

गौरहरि लेट गया। वह उसके चरण दबाने लगी। हृदय उफनने लगा। आंखें भर आयीं, आंसू गिरने लगे। कहीं प्रभु के चरणों पर गिर उनकी निद्रा भंग न कर दें, इस विचार से उसने अपने आंचल से उन चरणों को ढांक दिया और आंसुओं को खुलकर बहने दिया। रोते-रोते कितनी रात बीती, कब नींद आ गई, उसे पता न चला। प्रभु के चरणों में मस्तक रख वह सो गई थी।

२१

सुबह वह जागी तो जिन चरणों में रात-भर सिर रखे सो रही थी, वे युगल चरण अब वहां नहीं थे। विस्तर खाली था, प्रभु जा चुके थे।

घोर पश्चात्ताप के साथ उसका हृदय हाहाकार कर उठा। हाय, यह वैरिन नींद उसकी काल-निद्रा ही क्यों न हुई। किसी तरह वह बाहर आई। शची मां घाट पर जाने को तैयार थीं। वह व्याकुल होकर उनके चरणों में गिर पड़ी।

"मां, मां ! प्रभु..."

उसका आर्त्तनाद बूढ़ी माता के हृदय को आरपार चीरता चला गया। वे कटे हुए पेड़ की तरह एकदम नीचे बैठ गयीं। बहू को बाहों में भरकर पुकार उठीं, "गौरहरी...गौर...गौर...!"

बाहर बरगद के चबूतरे पर गदाधर सोया हुआ था। नित्यानंद नीम वृक्ष के तने से टिका बैठा था। दोनों दौड़े आये।

विष्णुप्रिया ने तत्काल अपने को संभाल लिया। शची मां मूर्छित हो गयी थीं। उन्हें होश आने में थोड़ा समय लगा। होश में आते ही उनका शोक काबू के बाहर हो गया।

गदाधर और नित्यानंद को इस बात का अफसोस था कि वे दोनों

सारी रात जागते बैठे रहे, परंतु ऐन वक्त उनकी नींद लग गई और इस बीच प्रभु चले गये।

बात-की-बात में सारे गांव में खबर फैल गई और लोग पूरी बात जानने और सांत्वना देने के लिए आने लगे। इससे शची मां का दुःख और भी बढ़ गया।

तब मौका देखकर विष्णुप्रिया ने उन्हें समझाया, "मां, इस तरह शोक मत कीजिए। आपने उन्हें आज्ञा दी है; मैंने भी आनंद से अनुमति दी है। लोक-कल्याण का नियत कार्य करने के लिए उन्हें जाना था, वे गए। अगर हम इसी तरह शोक करती रहीं तो लोग यही समझेंगे कि प्रभु बिना कहे चले गए। इससे अकारण गलतफहमी पैदा होगी और दुर्जनों को उनकी निंदा का अवसर मिलेगा। मां, धीरज धारण कीजिए। अगर आप शोक करती रहेंगी तो मैं कैसे धैर्य रख सकूंगी ?"

विष्णुप्रिया के बुद्धिमानी से बोलने में भी जो असीम करुणा थी उसके कारण गर्दन झुकाए खड़े हुए गदाधर और नित्यानंद दोनों की ही आंखें सजल हो गयीं।

शची मां ने किसी तरह संयम किया और विष्णुप्रिया को अपनी छाती से लगाकर कांपते स्वर में बोलीं, "बहू, तू मेरी बहू भी है और बेटा भी। जो तू कहेगी वही करूंगी।"

इतने में विष्णुप्रिया के माता-पिता आ गए। राजपंडित ने कहा, "शची मां, महायोगी की माता त्रिकाल वंदनीय होती है। गौरहरी का गृह त्याग अज्ञानियों को अनुचित, पर ज्ञानियों को सर्वथा उचित लगेगा। आप किसी प्रकार की चिंता न करें।"

उनके जाने के बाद श्रीवासाचार्य आए और उन्होंने बताया कि संन्यास ग्रहण करने के लिए गौरांग प्रभु कटवा गए हैं और वहीं स्वामी केशव भारती से दीक्षा लेंगे। माघ महीने के शुक्ल पक्ष की यह तिथि पहले ही निश्चित कर ली गई थी।

इसी समय मुकुन्ददत्त तथा अन्य भक्त आ गए।

कुछ अन्य भक्तों ने आकर बताया कि घाट से तो आधी रात को कोई नौका उस पार नहीं गयी। प्रभु तैरकर ही गए होंगे।

नित्यानंद ने कहा, "मां, हम लोग कटवा जाकर पता करते हैं। आप निश्चित रहें।"

दोपहर को विष्णुप्रिया की बड़ी भाभी भोजन लेकर आई और उसने दोनों को किसी तरह दो-दो कौर खिलाये।

सारे दिन लोगों का तांता लगा रहा और इस तरह चौथा पहर बीत गया। श्रीवास की पत्नी मालती देवी सारे समय शची मां के पास बैठी रहीं। एक तरफ विष्णुप्रिया भी दोनों घुटनों पर चिबुक टिकाये, शून्य दृष्टि से भूमि को ताकती हुई बैठी थी। इतने में तारिणी मां के साथ कांचना दीदी और विष्णुप्रिया के कंधे पर हाथ रख आंख के इशारे से उसे उसके कमरे में ले गयी।

विष्णुप्रिया के पीछे-पीछे कांचना उसके कमरे में गयी।

अंदर जाते ही विष्णुप्रिया ने कांचना को बांहों में भर लिया और फफक कर रो उठी।

कांचना ने दिलासा दिया, "मैं आज से यहीं रहने आ गयी हूं। प्रभु मुझे आज्ञा दे गए हैं।"

"क्या मतलब दीदी? प्रभु क्या कल तुम्हारे आश्रम गए थे?"

"नहीं! आज सवेरे मैंने उन्हें स्वप्न में देखा। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा, 'मैं जा रहा हूं। तुम विष्णुप्रिया के पास रहना।' और दोपहर को हमें उनके गृह त्याग का समाचार मिला। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं तुम्हारे पास आ गई।"

यह सुनकर विष्णुप्रिया के नेत्र सजल हो गए। सोचने लगी, प्रभु कितने दयामय हैं! लोककल्याण के लिए जाते समय अपनी पत्नी को नितांत अकेले नहीं छोड़ गए।

सूर्यास्त के लगभग गदाधर आया और शची मां के चरण छूकर उसने बताया, "मां, प्रभु कटवा में स्वामी केशव भारती के आश्रम में हैं। स्वामी जी ने उन्हें संन्यास दीक्षा से पराङ्मुख करने का पूरा प्रयत्न किया, परंतु उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ।" कुछ रुककर वह आगे बोला, "भारती स्वामी कल सवेरे प्रभु को दीक्षा देंगे। नित्यानंद और अन्य भक्त वहीं रुके हैं। मैं समाचार देने आ गया, अभी कटवा लौट जाऊंगा।"

चबूतरे पर बैठी हुई विष्णुप्रिया ने गदाधर की बात सुनकर कांचना से कहा, "दीदी संन्यास लेने की बात प्रभु के मन में इधर कई दिनों से घुमड़ रही थी। अक्सर वे श्रीमद्भागवत का 'वैराग्यराग रसिकोमय भक्ति निष्ठ' श्लोक गुनगुनाया करते थे।"

रात में गंगा मां और काशी मां, दोनों शची मां के साथ रहने आईं। उन्होंने कहा, "बहू, शची मां की तू चिंता न कर। हम दोनों रोज रात में उनके पास रहा करेंगी।"

आंगन में दो-चार भक्त भी आकर सोए और राजपंडित के घर का नौकर भी आ गया।

आज इतने लोग घर में थे, फिर भी विष्णुप्रिया को घर सूना और निर्जीव लग रहा था। यह बात उसने कांचना दीदी से भी कही, "एक उनके न रहने से यह कमरा कैसा निर्जीव और सारा घर चैतन्य-हीन लग रहा है।"

कांचना दीदी ने उसे स्नेह भरी डांट पिलायी, "निर्जीव कैसा री! प्रभु की अर्धांगिनी होकर तू ऐसी बात कहती है। वे गये कहां है, तेरे हृदय में ही तो समाये हुए हैं।"

तीसरे दिन सवेरे शची मां तुलसी-पूजा करके जप कर रही थीं। बरामदे में बैठी विष्णुप्रिया श्रीमद्भागवतगीता का पन्द्रहवां अध्याय मंद स्वर में कांचनादीदी को सुना रही थी। सहसा तभी ऊधमी बच्चे की तरह नित्यानंद 'मां-मां' कहता हुआ आया और उच्च स्वर में बोला, "शुभ समाचार लाया हूं, गौरांग प्रभु, नहीं-नहीं, श्रीकृष्ण चैतन्य भारती महाप्रभु प्रव्रज्या लेकर नवद्वीप में पधार रहे हैं।"

मां खुशी से किलक उठीं, "बहू, सुना तूने? गौरहरी आ रहा है। मेरा निमाई घर आ रहा है।"

लेकिन विष्णुप्रिया के धड़कते हुए हृदय में संदेह का विषधर फन उठाये डोल रहा था : संन्यासी के लिए तो गृह-प्रवेश वर्जित है...

और उधर नित्यानंद विस्तार से बताये जा रहा था, "दीक्षा-उत्सव का, मां, मैं क्या वर्णन करूं! देव-दुर्लभ दृश्य था वह! कटवा के हजारों नर-नारी आ जुटे थे। भारती स्वामी ने उत्तम व्यवस्था की और दीक्षा-

संस्कार विधिवत संपन्न कराया। मुंडन के लिए हरिदास नापित को बुलाया गया था। वह मुंडन करने को राजी ही न होता था। हा-हा कर कहने लगा, "प्रभो, यह काम मुझसे नहीं होगा। आपके सुंदर केशों को काटने का महापाप मैं नहीं करूंगा।" जब प्रभु ने उसे समझाया तो रोते-रोते मुंडन किया। प्रभु के स्पर्श मात्र से उसे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। 'हा कृष्ण', 'हा माधव' का जप करते हुए उसने अपना सामान समेटा और भगवती भागीरथी में प्रवाहित कर दिया, और प्रभु की भक्त-मंडली में सम्मिलित हो गया।

"और सुनो मां, मंत्र-विधि के समय बड़ी अद्भुत बात हुई। गोपनीय मंत्र देने के लिए भारती स्वामी प्रभु के कान के पास झुके तो प्रभु ने कहा, 'एक दिन स्वप्न में एक तेजस्वी संन्यासी ने मुझे संन्यास लेने का आदेश दिया और मेरे कान में मंत्र कहा। पहले आप उसे सुन लीजिए।' प्रभु ने वह मंत्र भारती स्वामी के कान में कहा, स्वामीजी गद्गद हो गए और बोले, 'धन्य हैं आप! आपको तो कृष्ण-प्रेम पहले ही प्राप्त हो गया है। यह संन्यास-दीक्षा और मंत्र-ग्रहण तो केवल लोक-शिक्षा के लिए है।'

"और अंत में वह परिव्राजक रूप! दैदीप्यमान मुंडित चेहरा। कटि में काषाय कौपीन और ऊपर केवल एक काषाय उत्तरीय, हाथ में दंड। संन्यासी के रूप में गौरांग प्रभु का नया अवतार हुआ। नाम रखा गया श्रीकृष्ण चैतन्य भारती।

"गुरु की पाद-पूजा कर उनकी अनुज्ञा से पूर्व दिशा में राढ़ देश की ओर महाप्रभु ने प्रयाण किया। हम सब अनुगामी हुए। प्रभु विभोर होकर भजन गाते, कीर्तन करते और नाचते हुए सारा दिन चलते रहे। रात को तरुतल वास किया। हम भिक्षा मांगकर अनाज लाए और भोजन बनाया। पर प्रभु ने करतल भिक्षा में केवल फलाहार किया। हम सो गए, परंतु प्रभु भजन करते रहे। पिछली रात जागने पर देखा तो प्रभु आगे प्रस्थान कर चुके थे। हम खोज में दौड़े। अरुणोदय के बाद प्रभु का संधान मिला।"

" 'अवधूत, तुमने बहुत यात्रा की है। क्या तुम बता सकते हो कि इस समय हम कहां हैं?'

"मां, चल-चलकर मैं बहुत थक गया था। मैंने हंसी में कह दिया,

" 'प्रभो, मुझे लगता है कि हम ब्रजभूमि में आ गए हैं। वह देखिए, सामने से ग्वालों के लड़के आ रहे हैं।'

"ग्वालों के लड़के सचमुच ही आ रहे थे।

"प्रभु हंसे। उन्होंने उन लड़कों से पूछा, 'यहां से भगवती गंगा मैया कितनी दूर है?'

" 'दूर काहे की? अभी एक घंटा और आप चलें तो आपको फुलिया गांव मिलेगा। वहां हरिदासजी का आश्रम है।'

" हरिदासजी के आश्रम वाला फुलिया गांव आधी घड़ी के रास्ते पर रह गया था।

" प्रभु ने मुझसे कहा, 'अवधूत, तुम गंगा पार कर नवद्वीप चले जाओ। मैं हरिदास का दर्शन कर उस पार शांतिपुर अद्वैताचार्य के आश्रम में पहुंचता हूं। तुम शची मां को तथा अन्य भक्तों को शांतिपुर आने की सूचना दे दो।' उनके आदेशानुसार मैंने सारा प्रबंध कर दिया है। पालकी भी लेता आया हूं। भोजन करके तुरंत रवाना हो जायंगे।"

जैसे ही भोजन समाप्त हुआ, बदन पर शाल ओढ़ें बरामदे की सीढ़ियां उतरते हुए शची मां ने कहा, "बहू, जल्दी चल। बाकी काम रहने दे। कांचना, तू भी चल।"

सिर का आंचल खींचकर विष्णुप्रिया चलने को उद्यत हुई कि नित्यानंद ने दुःखित स्वर में कहा, "मां, बहू को साथ मत ले चलिए, प्रभु की ऐसी ही आज्ञा है।"

शची मां वहीं ठिठक गयीं। चेहरा क्रोध से लाल हो गया। तीव्र स्वर में बोलीं, "निमाई की ऐसी आज्ञा है? संन्यास लेने के बाद बहू यदि उसकी कोई नहीं, तो मैं भी उसकी कौन हूं? और संन्यास लेने के बाद बहू को न आने को कहने का उसे क्या अधिकार है? पालकी वापस ले जा, निताई। मैं भी उसका मुंह नहीं देखूंगी।"

लेकिन विष्णुप्रिया ने झट-से स्थिति संभाल ली, "मां, हाथ जोड़ती हूं, शांत हो जाइए। प्रभु की आज्ञा उचित ही है। संन्यासी के लिए पूर्व आश्रम की पत्नी का मुखावलोकन निषिद्ध है। और मां, संन्यासी की माता केवल उसी की माता नहीं, जगज्जननी होती है। मेरे हृदय में उनकी मूर्ति

सदा विराजमान है और हर समय मुझे उनके दर्शन होते रहते हैं। इसलिए आप जाइए, उनसे मिलिए, उन्हें अपना दर्शन दीजिए। माता के शुभ दर्शन के सिवा इस जग में अधिक पुण्य-प्रद और क्या है !"

शची मां आंसू पोंछती हुई पालकी में बैठ गई। कांचना साथ जा रही थी। विष्णुप्रिया ने पके हुए केलों का एक गुच्छा उसे थमा दिया।

विष्णुप्रिया सीढ़ियों पर खड़ी देखती रही। आखिर रास्ता सुनसान हो गया। एक-एक कर सारा ही गांव शांतिपुर की ओर चला गया। उनमें निमाई पंडित के विद्यार्थी, गौरहरि के भक्त और प्रशंसक, गौरांग के निंदक और विरोधी, शत्रु-मित्र, छोटे-बड़े सभी थे। न जा सकी अकेली वह। सभी को उनके दर्शनों का लाभ होगा, अमृत वाणी सुनने को मिलेगी, एक वही दर्शन से वंचित रहेगी।

उसका मन भर आया। आंसू बहने लगे। घर में लौटी, लेकिन वहां और भी सूना और उदास था। आंगन में निकल आई। दुपहरी सांय-सांय कर रही थी। हवा एकदम बंद। पत्ता तक नहीं हिल रहा था, न कोई परिंदा पर मार रहा था। सारी प्रकृति उसी की तरह व्याकुल और अवसन्न थी। इस तरह अकेली वह कभी नहीं रही थी। दुःखावेग रोकना मुश्किल हो गया। चबूतरे पर नीम के तले बैठकर वह आर्त स्वर में पुकार उठी, "प्रभो ! प्रभो !"

सहसा खड़ाऊं की आवाज उसके कानों में पड़ी और 'प्रिये' की परिचित अमृत-पुकार।

देखा तो यतिवेष में पतिदेव सामने खड़े थे। संभ्रम से उठी और विस्मित उनकी ओर देखने लगी।

"प्रभो, आप ?"

"हां, वचनबद्ध जो हूं। तुम जब भी पुकारोगी, आ जाऊंगा, यह वचन मैंने तुम्हें दिया था न !"

तेजस्वी चेहरा, घुटी चांद, काषाय वस्त्र, जैसे साक्षात् नारायण ही प्रकट हो गए।

वह स्तंभित खड़ी रह गई।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने कहा, "विष्णुप्रिये, संन्यासी की पत्नी जगन्माता

होती है। जिस नियत कार्य में मेरा आगामी जीवन व्यतीत होने वाला है, उसमें तुम मेरी सहायिका बनो। तुम अकेली नहीं हो। मां से तुमने सच ही कहा था।"

उसके आश्चर्य का पार न रहा। पूछा, "मां से जो मैंने कहा, वह आपको..."

"मालूम हो गया। विष्णुप्रिये, ऐसी भ्रांत, मोहावस्था को छोड़ो अब।"

"इस प्रत्यक्ष अनुभव और प्रभु-कृपा से अवश्य छोड़ सकूंगी।"

"तथास्तु !" उन्होंने आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठाया।

हड़बड़ाकर उनके पैरों से दूर, जमीन पर उसने मस्तक रख दिया और वहां की धूल मस्तक से लगाई।

सिर उठाया तो खड़ाऊं की दूर जाती हुई खट्-खट् ही सुनाई दे रही थी, जो दूसरे ही क्षण विलीन हो गई। परंतु अब हवा के मंद झकोरे आ रहे थे। वृक्ष के पत्ते हिलने लगे थे। विश्व में चैतन्य भरने लगा था। चंदन की मंद सुगंध हवा में भरी हुई थी। उसका मन शांत और प्रसन्न हो गया।

उसने गौर से देखा तो प्रभु जहां खड़े थे, उस जगह खड़ाऊं के चिह्न जमीन पर उभरे हुए थे। वह रोमांचित हो गई। खड़ाऊं के चिह्न केवल वहीं नहीं, फाटक और उसके बाहर तक चले गये थे। उसकी दृष्टि वहीं बंधकर रह गई।

"दीदी, क्या खोज रही हो? क्या कुछ खो गया है?" उसके भाई श्याम ने भीतर आते हुए कहा।

वह हंसी, "खो गया, ऐसा समझकर खोज रही थी, पर वह मेरे पास ही निकला। तुम इस समय कैसे?"

"मां ने भेजा है। तुम घर में अकेली हो न, इसलिए।"

सूर्यास्त के लगभग कांचना दीदी लौट आई। अद्वैताचार्य और सीता मां के आग्रह पर शची मां वहीं रह गई थीं।

कांचना ने मां-बेटे की अपूर्व भेंट का वर्णन करते हुए कहा, "विष्णुप्रिये, उनकी वह भेंट तेरी बुद्धिमत्ता और संयम के ही कारण संभव हुई।"

विष्णुप्रिया ने विषय बदलते हुए पूछा, "प्रभु का यतिवेष कैसा था ?"

"साक्षात् नारायण की तरह दैदीप्यमान चेहरा, घुटी चांद और काषाय वस्त्र।"

"देखा, मैंने भी देखा उस अलौकिक यति रूप को।" विष्णुप्रिया अस्फुट स्वर में बुदबुदाई।

"सो तो देखेगी ही। तेरे हृदय-मंदिर में वे सतत विराजमान जो हैं।"

विष्णुप्रिया ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपने उस गुह्य पावन मिलन के रहस्य वह अंतरंग सखी पर भी कैसे उजागर करती !

कांचना ने यह भी बताया कि प्रभु वृंदावन जा रहे थे, परंतु शची मां की आज्ञा मान अब पुरी में रहेंगें, जिससे माता को उनके कुशल समाचार बार-बार मिलते रहें।

विष्णुप्रिया सुन रही थी और उसकी दृष्टि में गहराते जाते अंधकार में जमीन पर उभरे हुए खड़ाऊं के चिह्न और भी स्पष्ट, और भी उज्ज्वल, होते जा रहे थे।

२२

शांतिपुर से श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने पुरी का मार्ग पकड़ा। उनके साथ नित्यानंद, जगदानंद पंडित, दामोदर पंडित और मुकुंद दत्त, आदि भक्त भी गए। पुत्र को विदा कर अन्य भक्तों के साथ शची मां घर लौट आईं।

इस बात को तीन महीने हो गए। पुरी से कभी कोई भक्त, कभी कोई यात्री आ जाता और उनसे प्रभु का कुशल समाचार मिल जाता।

एक दिन अवधूत नित्यानंद ही पुरी से आ पहुंचे। शची मां की प्रसन्नता का पार न रहा। अवधूत ने बताया कि महाप्रभु दक्षिण की यात्रा

पर गए हैं। इस बार सिर्फ कृष्णदेव भट्टाचार्य को अपने साथ ले गए। और किसी को साथ जाने की अनुमति नहीं दी। केले के पत्ते में लिपटा, काषाय वस्त्र में बंधा एक पुलिंदा उनके सामने रखकर कहा, "महाप्रभु ने यह प्रसाद भेजा है और आपके कुशल-क्षेम का चिंतन किया है।"

बात-की-बात में निताई के आने का समाचार सारे गांव में फैल गया और महाप्रभु के पुरी-प्रवास की कथा सुनने के लिए श्रीवास सहित कई भक्तों की भीड़ वहां जमा हो गई।

नित्यानंद ने सुनाना आरंभ किया, "शांतिपुर से महाप्रभु भक्तों सहित जगन्नाथपुरी की ओर रवाना हुए। तीर्थाटन करते और श्रीगोपी-नाथ, क्षीरचोर आदि के दर्शन करते हुए हम पुरी पहुंचें। वहां सीधे जगन्नाथजी के मंदिर गए। प्रवेश द्वार से जगन्नाथ बलराम की मूर्त्तियां दिखाई देते ही महाप्रभु भीड़ को चीरते हुए आलिंगन के लिए बाहुओं को फैलाए बड़े वेग से गर्भ-गृह की ओर दौड़े। लेकिन मंदिर के पहरेदार ने उन्हें वहीं रोक दिया। रोके जाते ही भावाविष्ट होकर महाप्रभु 'हा कृष्ण, हा कृष्ण,' कहते हुए मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

"चारों ओर भीड़ लगगई। उस भीड़ में उड़ीसा महाराज की पाठ-शाला के प्रमुख अध्यापक आचार्य वासुदेव सार्वभौम भी थे। जब उन्हें पता लगा कि मूर्च्छित संन्यासी नवद्वीप के निमाई पंडित हैं, तो वे महाप्रभु की सेवा-सुश्रूषा में लग गए। उनके साथ उनके संबंधी गोपीनाथाचार्य भी थे। आचार्य सार्वभौम ने नवद्वीप में ही अध्ययन किया था।

"थोड़ी देर बाद महाप्रभु सचेत हुए, तब पारस्परिक परिचय हुआ, सार्वभौम ने कहा, 'तुम नीलांबर चक्रवर्त्ती के नाती हो, यह जानकर बड़ा आनंद हुआ।' और उन्होंने गोपीनाथाचार्य से कहकर जगन्नाथ मंदिर के पास, उनकी मौसी के खाली पड़े मकान में हम लोगों के रहने का प्रबंध करवा दिया।

"दूसरे दिन हम, यानी मैं, गदाधर और मुकुंद सार्वभौम महाशय के घर उनसे मिलने के लिए गए तो उन्होंने पूछा, 'निमाई पंडित ने संन्यास-दीक्षा किससे ली?'

"मैंने कहा, 'केशव भारती महाराज से।'

"उन्हें अच्छा नहीं लगा। वक्र मुस्कान के साथ बोले, 'ऐसे साधारण संन्यासी से दीक्षा क्यों ली ? केशव भारती तो केवल अर्ध-दंड संन्यासी हैं। अब उन्हें किसी प्रतिष्ठित विद्वान दंडी स्वामी से पुनः दीक्षा-संस्कार कराना चाहिए।'

"उनकी यह बात हमें अच्छी नहीं लगी, पर चुप रहे। गोपीनाथाचार्य भी वहीं थे। बोले, 'आचार्य, महाप्रभु तो स्वयंसिद्ध त्यागी, संन्यासी और योगी हैं। उन्हें दीक्षा-संस्कार जैसे बाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं।'

" 'गोपीनाथाचार्य, संन्यास लेना हंसी-ठट्ठा नहीं। अपनी चिता स्वयं जलाना और सारे भूतकाल से नाता तोड़ना पड़ता है। इसके विधि-विधान और नियम बड़े कठोर हैं। निमाई पंडित ठहरे अनुभवहीन युवा संन्यासी।'

" 'आचार्य, महाप्रभु तो नियमों के भी नियामक हैं। उनका संन्यास केवल लोकशिक्षा के लिए है।'

"सार्वभौम ने जोर का ठहाका लगाया और बोले, 'बहुत खूब ! अभी तरुण वय में लोकशिक्षा के लिए संन्यास लेने की खूब सूझी !'

"गोपीनाथाचार्य ने पुनः अपने पक्ष का प्रतिपादन करना चाहा, आप उन्हें साधारण मनुष्य समझते हैं, जबकि वे महान योगी, बल्कि साक्षात् भगवान् ही हैं।'

"सुनकर हमीं नहीं, वहां बैठे हुए अन्य पंडित और सार्वभौम के शिष्य विस्मित रह गए। लेकिन सार्वभौम आचार्य ने इसका भी खंडन किया, 'यह आपकी भावुकता है। कलिकाल में भगवान द्वारा अवतार लेने की बात किसी भी शास्त्र में नहीं लिखी है। हां, वैसे देखा जाय तो प्राणिमात्र में ईश्वर का अंश होता है और इस दृष्टि से आप इस तरुण संन्यासी को भगवान का अवतार कहते हो, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। वैसे यह युवक सरल हृदय है। तरुणाई में इतना अलौकिक त्याग, भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इतनी प्रगाढ़ भक्ति, ऐसा अद्भुत वैराग्य अन्य साधु-संन्यासियों में मिलना कठिन ही है।' फिर हमारी ओर मुडकर बोले, 'कल उस तरुण संन्यासी को मेरी ओर से भोजन का निमंत्रण है आप तीनों भी पधारें।'

" जब हमने महाप्रभु से सारी बात कही तो वे किंचित् हंसकर बोले, 'आचार्य सार्वभौम मेरे लिए पिता-तुल्य हैं। वे भी मुझपर पुत्रवत् प्रेम रखते हैं। उनके सिवा मेरा यहां दूसरा मार्गदर्शक और शुभचिंतक कौन है ? सभी मेरी प्रशंसा करते रहें, तो मैं अपने संन्यास-धर्म का पालन कैसे करूंगा ? वे उचित ही कहते हैं कि मैं अनुभवहीन, अल्पायु, अति सामान्य संन्यासी हूं। अभी मुझे बहुत-कुछ सीखना है।'

"दूसरे दिन गोपीनाथाचार्य आकर महाप्रभु को और हमें आचार्य सार्वभौम के घर ले गए। आचार्य ने महाप्रभु का उचित स्वागत-सत्कार और संन्यासी के उपयुक्त अभ्यर्थना की। भोजनोपरांत वार्तालाप के लिए बैठे तो सार्वभौम आचार्य ने वत्सल-भाव से कहा, 'स्वामीजी, आप अभी अल्पायु हैं। इस अवस्था में वैराग्य बहुधा स्थिर नहीं होता। अधिकांश युवा संन्यासी धर्म-भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि सर्वदा किसी ऐसे कार्य में लगे रहें, जिससे वैराग्य बढ़ता और पुष्ट होता रहे।'

" 'आप जो कार्य बताएंगे उसी में लग जाऊंगा।'

" 'यहां वेदांतदर्शन की प्रख्यात पाठशाला है। आप उसमें वेदांत सूत्रों का अध्ययन कीजिए।'

"महाप्रभु ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा, 'आप मेरे पितृतुल्य गुरुजन हैं और मेरे कल्याण की चिंता करते हैं, यह मेरा अहोभाग्य है ! वेदांत सूत्रों का थोड़ा-सा अध्ययन मैंने पहले किया है, पर यह विषय मुझे अत्यंत गहन लगा और अनेक शंकाएं मन में उठीं।'

" सार्वभौम महाशय ने बड़ी उदारता, उत्साह और स्नेह से कहा, 'निस्संकोच अपनी शंकाएं प्रस्तुत कीजिए। आपके अध्ययन का आरंभ इसी घड़ी से हो जाय।"

" प्रभु ने विनम्रता से निवेदन किया, 'भगवान व्यास द्वारा रचे गए सरल सूत्रों का अर्थ तो समझ में आता है, पर भाष्यकारों का शब्दच्छल और अर्थ की खींचातान समझ में नहीं आती।'

"भट्टाचार्य ने कहा, 'श्रुतियों का सच्चा अर्थ शायद आप नहीं समझे। श्रुति का मुख्य प्रतिपाद्य निर्गुण निराकार ब्रह्म की स्थापना है। शारीरिक

भाष्य में इसी का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है।'

"महाप्रभु ने कहा, 'ब्रह्म का निराकार, निर्गुण रूप मुझे मान्य है। परंतु भाष्यकारों ने ब्रह्म के सगुण, साकार रूप को गौण स्थान देकर एकदम उसकी जो उपेक्षा की है, वह मुझे स्वीकार नहीं। यह एक-पक्षीय सिद्धांत ही है। भगवान के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार रूप ही प्रमुख हैं। 'बहु स्याम', 'स ईक्षित' इत्यादि श्रुतियों में भगवान के सगुण, साकार रूप का, उनकी दिव्य लीलाओं का और विविध कर्मों का वर्णन है। इस सबको गौण मानकर छोड़ देना बौद्धिक चतुराई ही कही जायगी।'

"सार्वभौम ने जवाब दिया, 'भाष्यकारों ने तो जो भगवान व्यास ने लिखा, उसीका स्पष्टीकरण किया है। अपनी ओर से कुछ लिखा नहीं।'

"महाप्रभु ने किंचित् मुस्कराकर अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा, 'धृष्टता क्षमा करें। लेकिन यह कैसे कह सकते हैं कि व्यास का अभिप्राय ही उन्होंने व्यक्त किया है अथवा भगवान आचार्य रामानुज ने अपने भाष्य में अद्वैत का और मध्वाचार्य ने द्वैत का प्रतिपादन किया है। इन परस्पर-विरोधी प्रतिपादनों में सत्य किसे माना जाय ? क्या ये दोनों भाष्य एकांगी और दोनों आचार्यों के अपने-अपने मतों का प्रतिपादन करने वाले नहीं हैं ?'

"एक क्षण के लिए सार्वभौम निरुत्तर रह गए। फिर उन्होंने कहा, 'शंकराचार्य ने तो अपने सारे ग्रंथों में निर्विशेष ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया है।'

"महाप्रभु ने स्वीकार करते हुए कहा, 'निश्चय ही शंकराचार्य ने अद्वैत सिद्धांत का चमत्कारिक ढंग से प्रतिपादन किया है। तार्किकता और वैचारिकता में उनकी कोई नहीं। 'जीव ही ब्रह्म है' यह सर्वोच्च विचारों का निस्संदेह सर्वोत्तम भाव है। परंतु जीवन-भर 'अहं ब्रह्मास्मि' का उच्चार और प्रचार करने वाले शंकराचार्य के मुख से भी किसी समय जगन्माता भागीरथी के तीर पर पुलकित कंठ से सहज ही निकल पड़ा था :

'सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं-न-मामकीन स्त्वम् ।
समुद्रो हि तरङ्ग क्वचन समुद्रो न तारङ्ग ॥'

" फिर इस संदर्भ में भगवान व्यास का एक श्लोक कहकर महाप्रभु ने अठारह प्रकार से उसका स्पष्टीकरण और भाष्य किया, जिसे सुनकर सभी लोग 'धन्य-धन्य' कह उठे। और सार्वभौम महाशय उनके चरणों में लोटकर बार-बार कहने लगे, 'मोहांधकार में डूबे हुए मुझ अज्ञानी का उद्धार करो, प्रभो, उद्धार करो।' "

23

चातुर्मास आरंभ हुआ ही था। विष्णुप्रिया की दिनचर्या नित्य की भांति मंद गति से चल रही थी। भाग्य का अटल लेख उसने शांत मन से स्वीकार कर लिया था। कांचना दीदी के साथ सवेरे वह वर्षा-जल से लबालब भरी गंगा मैया में स्नान कर आई थी और इस समय दीदी के साथ मिल कर दैनंदिन कामों में लगी थी। शची मां बरामदे में बैठी सब्जी संवार रही थीं। उन्होंने वहीं से कांचना को पुकारा, "कांचना, आश्रम से शर्वरी वैष्णवी आई हैं। बहू..."

दोनों फौरन बाहर निकल आईं। फाटक से शर्वरी दीदी और उनके पीछे-पीछे सलोनी, दोनों चली आ रही थीं। हमेशा लहंगे में रहनेवाली सलोनी ने आज सुनहरी बिंदियों वाली साड़ी पहनी थी। उसने मस्तक पर आंचल ले रखा था। रेशमी रूमाल में बंधी एक छोटी संदूकची वह अपने सीने से सटाये हुए थी। सहमी नजर से इधर-उधर देखती कुछ सकुचाई-सी, किंतु प्रसन्न चेहरे से वह शर्वरी दीदी के पीछे-पीछे चली आ रही थी। पहली बार ससुराल आने वाली नव वधू की तरह वह लग रही थी।

शची मां से शर्वरी दीदी के 'जय श्रीकृष्ण' के बाद सलोनी ने आंचल गले में डाल, घुटने टेककर, शची मां को प्रणाम किया।

उन्होंने आशीर्वाद दिया, "मनचाहा पति मिले, घर-संसार सुखी

हो।" फिर बोलीं, "यह तारिणी दीदी की कन्या है न? नाम क्या है बेटी, तेरा?"

"श्यामसलोनी।" जैसे चांदी की घंटियां टुनटुना गई हों।

शर्वरी दीदी ने अपने आगमन का हेतु बताया कि तारिणी दीदी इतने दिनों से ज्वरग्रस्त हैं और कांचना दीदी को याद करती हैं। कांचना दीदी के आश्रम लौटने पर विष्णुप्रिया बहू अकेली न पड़ जाय इसलिए सलोनी को भेज दिया है।

शची मां के आदेशानुसार विष्णुप्रिया उसे अपने कमरे में ले गई। चारपाई के समीप दीवार पर चंदन से चित्रित प्रभु के दो चरण, नीचे दीवार से सटाकर रखी हुई छोटी चौकी, चंदन की सुगंध से महकता कमरा, प्रज्वलित पूजा-दीप देखकर सलोनी खुशी से किलक उठी, "दीदी, इस कमरे में आने पर तो कृष्ण मंदिर में आने जैसा लगता है।"

विष्णुप्रिया ने उसके कंधे पर हाथ रखकर स्नेह-पगे स्वर में कहा, "इसे कृष्ण मंदिर ही समझकर आनंद से रह।"

"दीदी, यह संदूकची कहां रख दूं?"

"क्या है इस संदूकची में?"

उसने तनिक लज्जित होकर कहा, "मेरा श्याम, उसके वस्त्र और अलंकार। उसे घर छोड़ आती तो वहां सेवा कौन करता? अपने श्याम को मैं सदा अपने साथ रखती हूं।"

"भगवान सलोनी और उसके श्याम की जोड़ी को अटूट रखे। अपने श्याम को तू इस छोटी चौकी पर पधरा दे और संदूकची सामने वाले उस आले में रख दे।"

भोजन से निपटकर तीसरे पहर शर्वरी दीदी और कांचना दीदी आश्रम लौट गईं। सलोनी सभी कामों में विष्णुप्रिया का हाथ बंटाने लगी। उसके आने से घर भरा-भरा लगने लगा।

शाम का समय, सूर्य पश्चिम क्षितिज की ओर उतर रहा था। सलोनी नीम के चबूतरे पर बैठी फूलों के ढेर सामने रखे हार गूंथ रही थी। श्याम की दीवानी वह श्याम के लिए पुष्पहार गूंथने में तल्लीन हो गई थी। इतने में 'दीदी-दीदी' पुकारता हुआ श्याम आया। वह रोज इसी समय

पाठशाला से आया करता था।

एक अपरिचिता किशोरी को चबूतरे पर बैठे हार गूंथते देख वह तुलसी वृन्दावन के पास ठिठककर खड़ा हो गया। उसकी आंखें सलोनी पर टिक कर रह गईं।

जरी किनारी की रेशमी धोती, दोनों कंधों पर से आगे लहराता हुआ जरी का पीले रंग का उत्तरीय, काले लंबे घुंघराले केशों की लटें, माथे पर वैष्णवी तिलक और बगल में ग्रंथ—सलोनी ने भी उसे देखा, आंखें विस्मय से विस्फारित हुईं, चेहरे पर आनंद उभरा और आंखें चार होते ही लजाकर कंधे से नीचे ढला आंचल मस्तक पर ओढ़, पुनः गर्दन झुका वह हार गूंथने लगी। श्याम के मन की कली-कली खिल गई। अंदर जाकर उसने पहला प्रश्न किया, "दीदी, यह मेहमान कौन आई है ?"

रोज की तरह उसे दूध, पोहा और मिठाई देकर विष्णुप्रिया सलोनी और उसके आने का प्रयोजन बताने लगी। श्याम खा रहा था, सुन रहा था, परंतु उसका मन गुनगुना रहा था, 'सलोनी...सलोनी...श्याम-सलोनी'...

जबतक श्याम बाहर नहीं चला गया, हार पूरा हो जाने पर भी सलोनी घर के अंदर नहीं गई। हार को डलिया में रखे चबूतरे पर ही बैठी रही।

दीदी से गप्पें लगाता हुआ भोजन करके श्याम बाहर निकला। फिर भी सलोनी हार डलिया में रखकर वहीं बैठी हुई थी। संकोच के कारण वह भीतर नहीं गई थी।

श्याम के जाने के बाद विष्णुप्रिया उसके पास आई, हार उठाया और हंसकर बोली, "अरी, तेरा श्याम तो इतना-सा और यह हार कितना बड़ा ? किस श्याम के गले में तू पहनायगी इसे ?"

सलोनी लाज से गहरी हो गई। हाय राम, कितना बड़ा हार गूंथ डाला ! सिर्फ कुछ कहने के खातिर बोली, "दीदी, यहां इतने सारे फूल जो हैं।"

विष्णुप्रिया के सूचक प्रश्न से वह लज्जित हो गई। "पर श्याम पूछ रहा था कि यह कौन मेहमान आई है ?" विष्णुप्रिया ने कहा।

"श्यांम ?" वह् वुदबुदाई।

"हां, मेरा छोटा भाई। अभी-अभी पंडित बनकर यहीं की पाठशाला में अध्यापन करता है। चल भीतर। सूरज डूब गया है।"

विष्णुप्रिया ने सलोनी को जल्दी ही भोजन कराके सुला दिया। रात ढले जब वह अपने कमरे में आई तो सलोनी गहरी नींद सोयी हुई थी। विष्णुप्रिया ने उसके चेहरे की ओर देखा; लुभावनी मुस्कान खिली हुई थी। वह श्रीमद्‌भागवत खोलकर बैठ गई। राधा और कृष्ण का उपाख्यान था। कृष्ण के प्रति, राधा का कांत-भाव, दृष्टि सोई हुई सलोनी की ओर चली गयी। अपने श्याम के प्रति इस सलोनी का भी वैसा ही कांत-भाव है। सहसा बिजली की तरह यह विचार मन में कौंध गया, मेरे श्याम भैया के लिए यह सलोनी राधिका कैसी रहेगी? अंतर के अधिष्ठाता ने स्वीकृति दी, बिलकुल उपयुक्त; श्याम की सलोनी, सलोनी का श्याम। उसने हाथ जोड़कर महाप्रभु के केशर-खचित चरणों को प्रणाम किया और श्रीमद्‌भगवद् गीता में मन को एकाग्र कर दिया।

इस तरह चातुर्मास समाप्त हुआ और गांव में दुर्गापूजा का उत्सव शुरू हो गया। विष्णुप्रिया के मायके में दुर्गापूजा का उत्सव बड़े पैमाने पर मनाया जाता था। निमाई पंडित के रहते वह प्रति वर्ष उत्सव के निमित्त मायके जाया करती थी, पर उनके संन्यास लेने के बाद सिर्फ अंतिम दिन सायंकाल जाकर देवी का दर्शन कर आती थी। इस वर्ष सलोनी उसके पास थी। पड़ोस की बहू-बेटियों के साथ विष्णुप्रिया ने उसे उत्सव देखने के लिए अपने पीहर भेज दिया था और अंतिम दिन स्वयं जाकर मायके की देवी के दर्शन करवा लाई थी।

इस बार शची मां ने भागवत-पारायण के समापन का उद्यापन धूम-धाम से करने का निश्चय किया। उनका विचार मालूम होते ही श्रीवास, गदाधर पंडित, नित्यानंद, मुकुंददत्त और गौरांग प्रभु के सभी भक्त उत्साह से जुट गए। विष्णुप्रिया ने कांचना दीदी को भी समाचार भेजा। तारिणी मां का स्वास्थ्य पूरी तरह सुधर गया था, इसलिए कांचना दीदी के साथ शर्वरी दीदी और अन्य वैष्णवियां भी उद्यापन में आने वाली थीं। कांचना दीदी यहीं रह जायंगी और सलोनी पुनः आश्रम लौट जायगी।

उद्यापन के दिन खूब भीड़-भाड़ हुई। सारे दिन और देर रात तक भजन-कीर्तन होते रहे। सैकड़ों लोगों ने इच्छापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। श्री अद्वैताचार्य तो आये ही, राज पंडित और उनकी पत्नी भी प्रसाद लेने के लिए आए।

दूसरे दिन का सवेरा हुआ और सलोनी उदास हो गई। यहां उसका मन रम गया था और वह विष्णुप्रिया का साथ छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। इधर विष्णुप्रिया के मन का भी कुछ ऐसा ही हाल था। पिछले चार-पांच महीनों में उसे भी सलोनी से बहुत स्नेह हो गया था।

दुपहर के भोजन के बाद सलोनी बेमन जाने की तैयारी करने लगी। उसने सारी चीजें समेटीं और अपने श्याम की मूर्ति के साथ संदूकची में रख दीं। मेघ-भरे आषाढ़ी आकाश के समान उसका मन भर आया था।

विष्णुप्रिया किसी काम से भीतर आई तो सलोनी के आषाढ़ी मेघ बरस पड़े। विष्णुप्रिया से लिपटकर वह घिघिया उठी, "दीदी, मुझे फिर यहां कुछ दिनों के लिए बुला लोगी न ? यहां रहना मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

एक हाथ से अपने उमड़े हुए आंसुओं को पोंछ, दूसरा हाथ सलोनी की पीठ पर फेरते हुए विष्णुप्रिया ने उसे आश्वस्त किया, "भगवान ने चाहा तो कुछ दिनों के बाद मैं तुझे हमेशा के लिए यहीं ले आऊंगी।"

"सच, दीदी ?" भरे हुए बादल छंट गए। सलोनी का चेहरा आनंद से खिल उठा।

विष्णुप्रिया ने उसके कान में कहा, "क्यों री, हमारा श्याम तुझे पसंद है ?"

सलोनी ने लाज से लाल होकर पहले कहा, 'दुत !' और दूसरे ही क्षण दीदी के चरणों में अपना माथा टेक दिया।

विष्णुप्रिया ने उसे उठाकर हृदय से लगाया और उसका माथा चूम लिया।

सलोनी इतना प्यार, विश्वास और आश्वासन पाकर निहाल हो गई। विष्णुप्रिया की दी हुई मिठाई, प्रसाद और केलों की गठरियां लादे शर्वरी

दीदी के साथ आश्रम की ओर चली तो मुदित मन से पीछे मुड़-मुड़कर देखती जाती थी।

उसी रात विष्णुप्रिया ने शची मां के आगे बात छेड़ी तो उन्होंने कहा, "बहू, तेरा विचार है तो अच्छा, पर वैष्णवियों के आश्रम में पली हुई अज्ञात कुलशीलवाली लड़की को अपनी बहू बनाना क्या वे पसंद करेंगे?"

"पिताजी तो गुणों के ग्राहक हैं, मां, यदि सलोनी आपको पसंद है तो मैं वहां बात चलाऊं।"

"सलोनी निस्संदेह गुणवती है। उच्चकुलीन पंडित के घर जन्म लेने के सभी लक्षण उसमें विद्यमान हैं।"

"तो मां, आपकी आज्ञा हो तो मैं कांचना दीदी के साथ कल शाम अपने मायके हो आऊं।"

"भगवान का नाम लेकर अवश्य चली जाओ।"

दूसरे दिन शाम को कांचना दीदी के साथ विष्णुप्रिया अपने मायके की ओर चली तो रास्ते-भर मन-ही-मन गुहारती गई, "प्रभो, आपकी ही प्रेरणा से यह संबंध करने को प्रवृत्त हुई हूं। मेरे माता-पिता को भी ऐसी ही प्रेरणा कीजिए!"

माता-पिता से मिल-भेंटने और पारस्परिक कुशल समाचारों के बाद विष्णुप्रिया सीधे विषय पर आई और उसने पिता से पूछा, "पिताजी, अपने श्याम पंडित का विवाह आप कब कर रहे हैं? अब तो वह अध्यापक हो गया है।"

"चाहते तो हैं कि जल्दी हो जाय। परसों ही रिश्ता लेकर एक मध्यस्थ मेरे पास आए थे, परंतु वह मुझे पसंद नहीं आया।"

"योग्य कन्या मिलनी चाहिए न!"

उसकी मां ने कहा, "शची मां के ध्यान में कोई हो तो बता।"

विष्णुप्रिया सोचने लगी, सलोनी की बात कहूं या न कहूं, तभी राजपंडित ने पूछा, "चातुर्मास में वैष्णवाश्रम की जो कन्या तेरे यहां रही थी वह कैसी है?"

"धन्य हो, प्रभो! सारी मुश्किलें आसान कर दीं।" उसने मन-ही-मन महाप्रभु को प्रणाम किया और बड़े उत्साह से सलोनी की सारी कथा

कह सुनाईं और अंत में बोली, "पिताजी, अपने श्याम के लिए वह सब प्रकार से उपयुक्त है।"

"ठीक है। मैं कल ही शची मां से मिलूंगा।"

दूसरे दिन राजपंडित शची मां से मिलने आए। बातचीत के बाद तय पाया कि सबसे पहले तो सलोनी के माता-पिता और परिवार का पता लगाया जाय।

राजपंडित नें तुरंत एक आदमी को काशी दौड़ाया। उसने खोज-बीन कर पता लगाया कि सलोनी काशी के प्रख्यात हरिहर पंडित के परिवार से संबंधित है। सुनकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और सलोनी तथा श्याम का विवाह निश्चित हो गया।

राज ज्योतिषी द्वारा शुभ मुहूर्त निकालने के बाद विवाह की तैयारियां उत्साह और उमंग से आरंभ हुईं। राजपंडित ने देश-देश के परिचित पंडितों को अत्यंत आग्रह से निमंत्रण भेजे। काशी से हरिहर पंडित ने सपरिवार नवद्वीप आकर पितृपद अंगीकार कर कन्यादान करने की अभिलाषा व्यक्त की।

एक दिन सवेरे-सवेरे राजपंडित ने आकर शची मां से कहा, "मां, राज ज्योतिषी का कहना है कि यह विवाह उभय कुल के लिए मंगलदायी है और आज मुझे इसकी प्रतीति भी हो गयी। मेरी बड़ी इच्छा थी कि चैतन्य महाप्रभु इस विवाह में उपस्थित होकर वर-वधू को आशीर्वाद देते। वे पुरी में होते तो मैं स्वयं चला जाता, परंतु इस समय यात्रा में हैं और नर्मदा किनारे पहुंच रहे होंगे, ऐसा उधर से आये हुए यात्रियों से मालूम हुआ।

"इस आनंदोत्सव पर महाप्रभु का न होना मन में खटक रहा था। पिछली रात मैं सोया तो यही बात मन में घूम रही थी।

"सहसा सवेरे नींद खुल गई। या तो किसी ने पुकारा या किसी की खड़ाऊं की आवाज थी या शायद दोनों ही बातें थीं।

"झट से उठकर बाहर आया। देखा तो चंडी मंडप के द्वार पर महाप्रभु खड़े थे। चंद्रमा के प्रकाश में उनका संन्यासी वेष स्पष्ट दिखाई दे रहा था। अभ्यर्थना कर मैंने निवेदन किया, 'प्रभो, मैं आपको ही स्मरण कर

रहा था।'

"किंचित् हंसकर बोले, 'राजपंडित, इस विवाह के लिए मेरा आशीर्वाद है। आपका पुत्र और पुत्र-वंश मेरे धर्म की परंपरा को बनाए रखेंगे।'

"मैं कुछ कहने जा ही रहा था कि आंख खुल गई। देखा तो अपने बिस्तरे पर पड़ा था।

"सोचने लगा, क्या मैंने स्वप्न देखा या यथार्थ था! बाहर चंडी मंडप में आया। वहां कई लोग गहरी नींद में सोये थे। परंतु फाटक पर कोई नहीं था। केवल चंदन की मंद सुगंध गमक रही थी। सवेरा होने तक मैं बैठा उस घटना पर विचार करता रहा। फिर स्नान करने के लिए घाट पर जाने को निकला तो क्या देखता हूं कि फाटक पर धूल में खड़ाऊं के दो चिह्न बने हुए थे। मैं वहीं ठिठका खड़ा रह गया। मतलब यह कि महाप्रभु स्वयं पधारे थे और आशीर्वाद दे गए। मैंने श्याम की मां को बुलाकर खड़ाऊं के वे चिह्न दिखाये,सारी बात बताई और अब आपसे कहने के लिए आया। मेरे अहोभाग्य कि प्रभु पधारे और आशीर्वाद दे गए!"

विवाह में अभी दो महीने की देर थी। इस बीच शची मां ने तारिणी मां, शर्वरी दीदी और सलोनी को चार दिन रहने के लिए बुला भेजा। कांचना दीदी आश्रम जाकर तीनों को ले आयी।

सलोनी में काफी परिवर्तन हो गया था। उसका शरीर कुछ भर गया था। बचपन की चंचलता और शोखी का स्थान ठहराव और गंभीरता ने ले लिया था। अल्हड़ किशोरी एकदम युवती हो गई थी। घर में प्रवेश करते समय सीढ़ी की धूल उसने अपने मस्तक से लगाई, गले में आंचल डालकर शची मां के चरण छुए, विष्णुप्रिया के पांवों को हाथ लगाया और उससे लिपट गई।

राजपंडित ने वधू पक्ष का सारा खर्च अपनी खुशी से किया। हरिहर पंडित ख्यातनामा थे, परंतु उनकी आर्थिक स्थिति बिलकुल मामूली थी। परंतु राजपंडित ने कहीं भी कोई कमी महसूस नहीं होने दी। तारिणी मां और वैष्णवियों ने अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार अनेक वस्तुएं और वस्त्र सलोनी को दिये।

विवाह से तीन दिन पहले काशी से हरिहर पंडित सपरिवार आ गए।

राजपंडित ने उनके रहने-ठहरने की उत्तम व्यवस्था कर दी।

सारी तैयारियां हो जाने के बाद राजपंडित अपनी पत्नी के साथ विष्णुप्रिया को न्योतने के लिए गए। दोनों पति-पत्नी ने बहुत आग्रह किया परंतु विष्णुप्रिया जाने को राजी न हुई। यही कहती रही, "पिताजी, आप शास्त्रज्ञ हैं। एक संन्यासी की पत्नी का विवाह-जैसे मांगलिक उत्सव में सम्मिलित होना कैसे उचित है?"

निरुत्तर माता-पिता को भारी हृदय से लौट जाना पड़ा।

विवाह की विविध धार्मिक विधियां सूर्योदय तक चलती रहीं। उसके बाद नवविवाहित जोड़ी शची मां और विष्णुप्रियां का आशीर्वाद लेने आई। सबसे पहले नवविवाहितों ने कमरे में जाकर महाप्रभु के चरण-चिह्नों को प्रणाम किया। उसके बाद शची मां और तब विष्णुप्रिया के पांव छुए।

विष्णुप्रिया ने एक बहुमूल्य रेशमी वस्त्र सलोनी को दिया, जिसे महाराज प्रतापराय ने प्रभु को भेंट किया था, और प्रभु ने पुरी से प्रसाद के रूप में विष्णुप्रिया को भेज दिया था। आशीर्वाद देकर विष्णुप्रिया ने जैसे ही सलोनी का मस्तक चूमा, वह भावाकुल हो गई और 'मां-मां' कहते हुए उसने विष्णुप्रिया के कंधे पर अपना सिर रख दिया।

विष्णुप्रिया ने अपने आंसू रोककर उसके कान में हौले-से कहा, "श्याम के मंदिर जाते समय राधिका की आंखों में आंसू कैसे, सलोनी?"

सलोनी खिलखिला कर हंस पड़ी।

श्याम के हाथ में रेशमी पीतांबर देकर विष्णुप्रिया ने कहा, "यह प्रभु के विवाह का पीतांबर है। अब तुझे ही शोभा देगा। मां की आज्ञा से तुझे प्रसाद के रूप में दे रही हूं।"

श्याम ने आदरपूर्वक दोनों हाथों में पीतांबर थामा और सिर से लगा लिया।

उधर कांचना दीदी और सलोनी की सहेलियों ने मिठाई के थाल लाकर रखना शुरू कर दिये।

२४

श्याम-सलोनी के विवाह को कई महीने बीत गए। विष्णुप्रिया की दिनचर्या अपनी नियमित गति से चल रही थी। अब श्याम पाठशाला से घर लौटते समय रोज तो नहीं, पर कभी-कभी उसके घर आ जाता था। सलोनी भी कभी चौथे प्रहर अपनी छोटी ननद के साथ जाती थी। विष्णु-प्रिया दिनोंदिन अधिकाधिक गंभीर और विरक्त होती जा रही थी। उसके सारे लौकिक व्यवहार पूर्ववत् थे, पर मन अधिकाधिक अलिप्त होता जाता था।

इस बीच चैतन्य महाप्रभु सारे दक्षिणापथ की यात्रा पूरी कर चुके थे, अलालनाथ में अपने सब भक्तों को विदा कर अकेले कृष्णदास को साथ ले उन्होंने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। लोक कल्याण के लिए हरिनाथ का संकीर्तन करते, दोनों हाथ ऊंचे उठाये, कभी नाचते, कभी गाते इतनी द्रुत गति से चलते थे कि बेचारे कृष्णदास को सारे समय उनके पीछे-पीछे दौड़ते रहना पड़ता था। जहां पड़ाव करते, वहां भजन, कीर्तन और धर्मोपदेश के लिए वैष्णव भक्तों की भीड़ लग जाती थी।

दक्षिण में महाप्रभु आंध्रप्रदेश के गंजाम जिले में स्थित कूर्माचल तीर्थ गए। काशी जाते हुए भी रामानुजाचार्य कुछ समय यहां रहे थे। कूर्माचल से गोदावरी तट के विद्यानगर की यात्रा की। वहां श्रीकृष्ण के परम भक्त और विद्वान राजा रामानंद राय ने उनका स्वागत किया। गौतमी गंगा, मल्लिकार्जुन, अहोवल नृसिंह, शिवकांची और विष्णुकांची होते हुए श्री रंग में व्यंकट भट्ट के यहां चातुर्मास किया। वहां से चलकर कुछ समय वृषभ पर्वत पर रहे। वहां से काम-कोष्ठी पुरी के रास्ते दक्षिण मथुरा (मदुराई), कृतमला तीर्थ, महेंद्र पर्वत पर परशुराम तीर्थ होते हुए सेतुबंध रामेश्वर धनुषकोटि, कन्या कुमारी और मल्लार देश गए। फिर शृंगेरी मठ से मत्स्य तीर्थ और वहां से मध्वाचार्य के उडुपी आश्रम पहुंचे। उसके बाद रास्ते के तीर्थ-स्थानों के दर्शन करते हुए कोल्हापुर होकर पंढरपुर की भीमा नदी में स्नान किया और तापी का अनुसरण करते हुए नर्मदा के किनारे माहिष्मतीपुर में धर्मोपदेश से दक्षिण यात्रा की परिसमाप्ति हुई।

तब एक दिन सुबह गदाधर घाट से दौड़ता हुआ आया।

"मां, मां, शुभ समाचार। महाप्रभु यात्रा समाप्त कर नीलाचली (पुरी) लौट आए हैं।" वह हर्ष-विभोर हो गया था।

शची मां पूजा समाप्त कर आंगन में बैठी कपास धुनक रही थीं। पास ही विष्णुप्रिया चावल पछोरने में लगी थी। कांचना दीदी अहाते की बाड़ी में साग-भाजी तोड़ रही थीं।

शची मां ने पूछा, "प्रभु के आगमन का समाचार कौन लाया? कोई भक्त आया है क्या?"

"स्वयं प्रभु ने कृष्णदास को भेजा है। उसके साथ पुरी के कुछ भक्त भी हैं। वे सब आ रहे हैं।"

थोड़ी ही देर में कृष्णदास तीनों भक्तों के साथ वहां आया। वह अपने साथ बांस की एक टोकरी लाया था। शची मां को प्रणाम कर वह टोकरी उनके आगे रखते हुए उसने कहा, "प्रभु ने यह प्रसाद भेजा है।"

यात्रा समाप्तकर प्रभु के पुरी लौट आने का समाचार देखते-देखते सारे गांव में फैल गया। सुनते ही शची मां के घर भक्तों का तांता लग गया। इतने लोग आये और इतने प्रश्न पूछे गए कि बेचारा कृष्णदास उत्तर देते-देते थक गया।

अंत में शची मां को कहना पड़ा, "अब इसे आराम करने दो।" यह कहते हुए वे स्वयं घर में जाने के लिए उठीं कि विष्णुप्रिया की छोटी चाची भीतर आती हुई दिखाई दीं।

आते ही उसने कहा, "मां, एक शुभ समाचार लेकर आई हूं। बड़ी मां ने कहलवाया है कि हमें पौत्र-मुख-दर्शन का लाभ होने वाला है। सलोनी में दोहद लक्षण दीखने लगे हैं।"

शची मां ने पुकारा, "बहू, ओ बहू! जरा बाहर आ। यह शारदामणि क्या कहती है!"

शुभ संवाद सुनकर विष्णुप्रिया को अपार हर्ष हुआ। उसने कृतज्ञ भाव से कहा, "सब महाप्रभु की कृपा और महिमा है।" फिर उसने शारदामणि से पूछा, "सलोनी का स्वास्थ्य तो ठीक है न?"

"दोहद जरा कड़े लग रहे हैं। उलटियों से त्रास होता है। तुम्हें याद

करती है।"

"मैं शाम को आऊंगी।"

अलिप्त रहकर लौकिक व्यवहार के चक्र चलाने वाले प्रभु की लीला पर उसे मन-ही-मन हंसी आई। रोज के सारे लौकिक व्यवहारों को नियत क्रम से पूरी तरह सम्पन्न करते हुए मुझे भी अपना मन इसी तरह अलिप्त रखना चाहिए, है न ? पर अलिप्तता का अर्थ उदासीनता नहीं, असंतोष नहीं और वैराग्य भी नहीं। सर्वार्थ से उसमें होते हुए भी, न होते हुए के समान। समझ गयी, समझ गयी, प्रभो ! सबकुछ समझ गयी...

उसी रात विष्णुप्रिया के पितृगृह से लौट आने के बाद कृष्णदास ने महाप्रभु की यात्रा-कथा सुनाना शुरू किया। सारी यात्रा में चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने और उनकी सेवा करने के कारण वही सबसे अधिकारी व्यक्ति था। उसने कहा :

"महाप्रभु रामेश्वर पहुंचे तो वहां एक मंदिर में कूर्मपुराण पर प्रवचन हो रहा था। कूर्मपुराण की अनेक कथाएं प्रभु को निराली लगीं। पसंद भी आईं। उस अत्यंत प्राचीन ग्रंथ की स्वयं हस्तलिखित प्रतिलिपि तैयार कर वह प्रति पुराणीजी को देकर मूल कूर्मपुराण उन्होंने भक्तों के लिए प्राप्त कर लिया। मल्लार देश में एक ब्राह्मण भक्त से महाप्रभु को ब्रह्म संहिता की अति प्राचीन पोथी प्राप्त हुई।

"पंढरपुर में श्री विट्ठल के आगे नृत्य करते हुए महाप्रभु को भावावेश हो गया। उस समय सभी को ऐसा लगा, मानो विठोबा ही संन्यासी रूप में नाच रहा है।

"वहीं पता चला कि श्री मन्माधवेंद्रपुरी महाराज के परम शिष्य श्रीरंगपुरी पंढरपुर में ही हैं।

"भगवान श्रीरंगपुरी महाराज के दर्शनार्थ उनके आश्रम में गए। एक वृद्ध तेजस्वी संन्यासी, जिनकी सफेद दाढ़ी छाती तक लहरा रही थी, आश्रम के बाहर आंगन में बैठे हुए थे। प्रभु ने भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम किया। पुरी महाराज ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया और परिचय पूछा।

"प्रभु ने अत्यंत विनीत भाव से कहा, "संन्यासियों में भक्तिभाव के प्रवर्तक भगवान माधवेंद्रपुरी के प्रधान शिष्य श्रीमत् ईश्वरपुरी महाराज

मेरे मंत्र-दीक्षा गुरु हैं। और मेरे परिव्रज्या गुरु श्रीमत केशव भारती महाराज हैं।'

" 'आपके पूर्वाश्रम की जन्मभूमि कहां है ?'

" 'गौड़ देश में भगवती भागीरथी के किनारे नवद्वीप।'

" 'अरे तब तो हमारा-आपका निकट संबंध हुआ। वर्षों पहले गुरुदेव के साथ नवद्वीप गया था। वहां जगन्नाथ मिश्र नाम के एक विद्वान और भगवद्भक्त ब्राह्मण रहा करते थे। वे हमें बड़े आदर से भिक्षा के लिए अपने घर ले गए थे। उनकी पत्नी शची देवी तो साक्षात् अन्नपूर्णा ही थीं। उनका एक अत्यंत बुद्धिमान और सर्वगुणसंपन्न पुत्र अल्प वय में ही संन्यासी बन गया था। दूसरा पुत्र उस समय बालक था। उस युवा संन्यासी पुत्र शंकरारण्यस्वामी से एक बार यहीं भेंट हुई थी।'

" 'प्रभु ने अत्यंत उत्सुकता से पूछा, 'महाराज, वे युवा संन्यासी इस समय कहां हैं ?' "

सुनकर शची मां की छाती धड़कने लगी। बरसों पहले बिछुड़े हुए ज्येष्ठ पुत्र का संधान पाकर मन विकल हो गया। बोल उठीं, "श्री रंगपुरी स्वामी ने क्या बताया, कृष्णदास, जल्दी कहो।"

कृष्णदास कुछ देर गर्दन झुकाए स्तब्ध बैठा रहा, फिर बोला, "पुरी महाराज ने कहा, दैवगति विचित्र है। संन्यास लिये दो वर्ष हो गए थे और वह इधर दक्षिण में ही था। मैं आगे यात्रा पर चला गया।

"वहीं मुझे पता चला कि शंकरारण्यस्वामी ने संन्यास-दीक्षा के बाद यहीं देहत्याग दिया।' "

इतना कहकर कृष्णदासचुप हो गया। शची मां की आंखों से दो बूंद आंसू गिर पड़े। परंतु उन्होंने तुरंत अपने मन को संभाल लिया और सहज कंठ से बोलीं, "कृष्णदास, चुप क्यों हो गए, आगे का वृत्तान्त कहो।"

"पंढरपुर से हम कृष्णवीणा नदी के किनारे पहुंचे। वहां एक भगवद्भक्त ने प्रभु को श्री विल्वमंगल कृत 'कृष्णकर्णामृत' नामक दुर्लभ ग्रंथ भेंट किया। वहां से ताप्ती नदी और फिर नर्मदा के किनारे पहुंचे।

"गोदावरी तट पर नासिक. पंचवटी होते हुए विश्वामित्री नदी के किनारे वड़ोदरा नगरी गए। वहां से साबरमती के किनारे अहमदाबाद के

रास्ते द्वारका गए। सोमनाथ में शिवदर्शन कर प्रभास तीर्थस्थान में प्रभु दो दिन रहे। वहां से गोदावरी किनारे विद्यानगर होते हुए पुरी लौट आए।"

यात्रा-कथा की समाप्ति पर श्रीवास ने प्रस्ताव किया, "सभी का मन प्रभु का दर्शन करने को लालायित है, इसलिए क्यों न पुरी चला जाय ?"

सबने उत्साह से समर्थन किया और तय पाया कि ज्येष्ठ प्रतिपदा को निकलकर आषाढ़ में रथ-यात्रा के दर्शन करें और चातुर्मास प्रभु के सान्निध्य में ही बितावें।

२५

शर्वरी दीदी और आश्रम की कुछ वैष्णवियों के साथ कांचना दीदी रथ-यात्रा के लिए पुरी गई हुई थीं। वह विष्णुप्रिया को छोड़कर जाना नहीं चाहती थीं, परंतु विष्णुप्रिया ने आग्रह करके उसे भेज दिया था।

शची मां और विष्णुप्रिया ने प्रभु के लिए बहुत से पदार्थ बनाकर भक्तों को ले जाने के लिए दिए। नवद्वीप से बहुत से लोग रथ-यात्रा देखने और चातुर्मास बिताने के लिए पुरी चल दिए, परंतु कृष्णदास नहीं गया।

शची मां के पूछने पर उसने बताया, "प्रभु की आज्ञा है कि चातुर्मास में यहीं रहकर आपकी सेवा करूं।"

सुनकर शची मां गद्गद हो गईं। उन्हें खयाल आया, सब लोग पुरी चले जायंगे तब देख-भाल करने वाला कोई होना चाहिए, ऐसा सोचकर मेरे गौरांग ने यह व्यवस्था की है।

आषाढ़ का महीना शुरू हो गया था। आकाश में काले बादल छाये हुए थे। देखते-देखते पानी की बूंदें गिरने लगीं।

"सलोनीऽ ! सलोनीऽ !" पुकारती हुई विष्णुप्रिया रसोईघर से बरामदे में आई।

सलोनी नीम के वृक्ष के नीचे चबूतरे पर बैठी कृष्णदास की बातें सुन रही थी। वह कोई कथा सुना रहा था और वह गर्दन हिलाती हुई हंस-हंसकर तालियां बजा रही थी।

कृष्णदास बड़ा ही बातूनी और बैठकबाज था। कथा कहने और बातें करने में बड़ा प्रवीण था। कृष्ण-कथाओं का तो भंडार ही था। महाप्रभु के साथ यात्राएं करके उसका ज्ञान बहुत बढ़ गया था। जब सुनाने बैठता तो वक्ता-श्रोता दोनों ही अपना आपा भूल जाते थे। वह जितना अच्छा वक्ता था, सलोनी उतनी ही अच्छी श्रोता थी। वह कृष्णदास की कथा में पूरी तरह लीन हो गयी थी। बाहर अंधेरा हो गया है, वर्षा की बूंदें शरीर पर पड़ रही हैं, इसका भी उसे होश नहीं रहा था।

"सलोनी, चल भीतर।" विष्णुप्रिया ने डांट भरे स्वर में कहा, "ठंड लग जायगी, इसका भी खयाल नहीं।"

"दीदी, कृष्णदास काका इतने मजे से कथा सुनाते हैं कि कथा के सिवा और किसी बात का खयाल ही नहीं रहता।" कहते हुए वह चबूतरे से उतरी। अब उसका शरीर कुछ गदरा गया था। गर्भावस्था का तेज अंग-प्रत्यंग पर चढ़ता जा रहा था। नजर लग जाय, ऐसा रूप निखर आया था।

विष्णुप्रिया ने आगे बढ़कर उसके बालों पर पड़ी हुई वर्षा की बूंदों को अपने पल्लू से पोंछते हुए बनावटी क्रोध से कहा, "अरी महारानी, कल को तुझे सरदी हो गई तो तेरी सासजी तुझे यहां एक क्षण भी नहीं रहने देंगी, तुरंत ले जायंगी।"

उससे लिपटती हुई सलोनी ने बड़े लाड़ से कहा, "हूंह्, सासजी ले जायंगी। मेरी यह मां क्या मुझे इतने शीघ्र ले जाने देगी! डेढ़ महीने का वादा करके जो लाई है मुझे यहां। दीदी, मुझे यहां रहना बहुत अच्छा लगता है। यहां आए पन्द्रह दिन हो गए। पर पता ही नहीं चला।"

विष्णुप्रिया हंस दी और प्रेम से उसका हाथ पकड़कर रसोईघर में ले गयी।

दिन-भर वर्षा होती रही। चौथे पहर भी वह बंद नहीं हुई। शची मां बरामदे में बैठी सूत कात रही थीं। विष्णुप्रिया और सलोनी उनके पास बैठी थीं। रथयात्रा की बातें चल पड़ीं। कृष्णदास ने शुरू किया, "कल आषाढ़

शुक्ल प्रतिपदा है। कल नेत्रोत्सव होगा। पंद्रह दिन बाद जगन्नाथजी के दर्शन होंगे। रथयात्रा का वास्तविक आरंभ तो जेठ की पूर्णिमा से ही हो जाता है। जेठी पूर्णिमा से अमावस्या तक के पंद्रह दिन भगवान महालक्ष्मी के साथ अंतःपुर में रहते हैं। इतने दिनों मंदिर का मुख्य द्वार बंद रहता है। आषाढ़ी प्रतिपदा को द्वार खुलता है। उस दिन भगवान जगन्नाथजी के दर्शनार्थ मंदिर के पट खुल जाते हैं। द्वितीया को भगवान श्री राधिका सहित रथ में बैठकर एक सप्ताह तक निवास करने के लिए नीलाचल से सुंदराचल प्रस्थान करते हैं। इसी को रथयात्रा कहते हैं।

"इस रथयात्रा में तीन रथ होते हैं—आगे भगवान जगन्नाथजी का, उसके पीछे बलरामजी का और सबसे पीछे सुभद्राजी का। जगन्नाथजी का रथ उत्तुंग पर्वत की तरह विशाल और स्वर्ण-खचित होता है। भीतर-बाहर हजारों घंटे लटके रहते हैं। बहुमूल्य रेशमी ध्वज-पताकाओं से वह सजाया जाता है। सैकड़ों भक्त भीतर खड़े रह सकें, इतना विशाल वह होता है। उस रथ से मजबूत रेशमी रस्से बांधे जाते हैं और भक्तगण उसे खींचकर ले जाते हैं।

"प्रातःकाल मंदिर के सिंहद्वार पर रथ आकर खड़ा होता है। जगन्नाथजी को सिंहासन से उठाकर रथ में पधराया जाता है। रथ को चालू करने से पहले उत्कलपति स्वर्ण की झाड़ू से रथ-मार्ग को बुहारते और उस पर चंदन जल का छिड़काव करते हैं। उसके बाद जगन्नाथजी का पूजन किया जाता है। अंत में 'जगन्नाथजी की जय' के साथ भक्त गण रेशमी रज्जुओं को थामकर रथ खींच ले जाते हैं।

"रथ के आगे विभिन्न देशों से आयी हुई भजन-मंडलियों के भजन और नृत्य होते हैं। संदराचल तक के मार्ग पर दोनों तरफ नारियल के पेड़ हैं जिससे यह मार्ग और रथयात्रा की यह शोभा देखते ही बनती है।"

थोड़ा ठहरकर कृष्णदास ने कहा, "इस समय प्रभु वहां हैं और यहां के सारे गौड़ भक्त वहां गए हुए हैं, इसलिए इस वर्ष की रथयात्रा अपूर्व होगी। जगन्नाथजी के दर्शन से प्रभु को बार-बार भावावेश हो जाता है और भावावेश में जब वे नृत्य करने लगते हैं, तब ऐसा लगता है, मानो साक्षात् जगन्नाथजी ही प्रभु के रूप में प्रकट हुए हों।"

सूत कातती हुई शची मां का मन भूतकाल में पहुंच गया। जगन्नाथ मंदिर में दर्शन करते हुए भगवान के श्रीविग्रह से निकलकर एक शिशु दौड़ा आया और उनके गले लिपट गया था, फिर निमाई का जन्म हुआ...

वर्षा बंद हुई और कृष्णदास मंदिर चला गया। विष्णुप्रिया ने चूल्हा जलाया। शची मां अपने कमरे में बैठकर जप करने लगीं। सलोनी चूल्हे के पास बैठकर आग तापने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने कहा, "दीदी, मेरा मन वृंदावन जाने को कर रहा है।"

तभी आंगन से श्याम की पुकार सुनाई दी, "दीदी।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "जहां तेरा श्यामसुंदर, वहीं तेरा वृंदा-वन।"

इस बीच श्याम द्वार पर आकर खड़ा हो गया था। सलोनी ने कंधे पर पड़ा हुआ आंचल झट-से सिर पर खींच लिया। श्याम ने उसकी ओर उड़ती निगाह डालकर विष्णुप्रिया से कहा, "दीदी, जरा जल्दी में हूं। एक संदेश देना है कि वृंदावन से तारिणी मां के गुरुबंधु देवकी नंदन पंडित आए हैं। तारिणी मां ने उनके हाथ प्रसाद, रेशमी वस्त्र और अनेक उपहार भेजे हैं। कल सबेरे पिताजी उनको लेकर यहां आवेंगे।"

"यह तू मां से ही जाकर कह।"

श्याम जैसे ही मां के कमरे में गया, विष्णुप्रिया ने सलोनी से कहा, "यह दूध और थोड़ी मिठाई श्याम के लिए बाहर बरामदे में ले जाकर रख दे। यहां तो बहुत धुआं हो गया है।"

वास्तव में वहां धुआं बिलकुल नहीं था। लेकिन दोनों थोड़ी देर एकांत में रह सकें, ऐसी व्यवस्था वह प्रायः कर देती थी।

विष्णुप्रिया सब काम निपटाकर अपने कमरे में सलोनी के बिस्तर के पास चटाई पर पड़ गयी। इधर उसकी नींद बहुत कम हो गई थी। आज सुबह से उसका मन बेचैन था और रथयात्रा का प्रसंग सुनने के बाद व्यग्रता बहुत बढ़ गई थी। व्याकुल मन में एक ही रट लगी हुई थी, प्रभु दर्शन की, और पागल मन लगातार पुरी की दिशा में दौड़-दौड़ जाता था।

भाग्यवान हैं पुरी के लोग और रथयात्रा के लाखों-लाख लोग। सभी

को प्रभु के दर्शन सुलभ हैं। नहीं सुलभ हैं तो अकेली मुझ अभागिन को। परस तो गया, दूर से दरस का भाग्य भी नहीं। फिर यह जीवन किसलिए प्रभो, किस लिए...?

देर तक हृदय धाड़ें मारता रहा और अजस्र आंसू बहते रहे। फिर मन कुछ शांत हुआ। वह दीवार पर चित्रित प्रभु के चरणों के पास बैठ गई। कुछ देर बाद उसके मन में दिव्य वाणी गूंजी; "यह व्यग्रता क्यों ! प्रभु क्या तुमसे दूर हैं ? वे तो सतत तुम्हारे पास ही हैं। तुम अपने सधे स्वरूप को बार-बार क्यों भूल जाती हो ? प्रभु तो नित्य तुम्हारे हृदय में विराजमान हैं। तुम उनसे पृथक् नहीं उन्हीं की प्रत्याकृति हो तुम। तुम ही प्रभु हो। उनका कार्य तुम्हारा और तुम्हारा कार्य उनका कार्य है।"

क्रमशः उसका मन स्थिर और शांत होता गया। प्रभु चरणों का वंदन कर वह उठी। दीये की बाती को बुझाकर चटाई पर जाकर सो गयी। थोड़ी देर में उसे गहरी नींद आ गयी।

आषाढ़ की द्वितीया का सवेरा। उगते सूर्य की सुनहरी किरणें सर्वत्र सोना पोत रही थीं। आकाश लगभग निरभ्र, कहीं इक्के-दुक्के बादल, जो क्षण-भर ठिठककर धीरे-धीरे आगे निकल जाते। रात की वर्षा ने रथयात्रा के मार्ग के दोनों ओर के नारियल वृक्षों और समस्त वनस्पति जगत् को नहलाकर स्वच्छ कर दिया था।

जगन्नाथ मंदिर के सिंह-द्वार पर खड़ा सुसज्जित रथ। मंगल वाद्य बज रहे थे। चारों ओर भक्तों का सागर उमड़ा हुआ। सबकी आंखें सिंह-द्वार पर टिकी हुई थीं।

दयितगण जगन्नाथजी के स्वरूप को आदरपूर्वक उठाकर बाहर लाये "जय जगन्नाथ !" का समवेत जय घोष दसों दिशाओं में निनादित हो उठा।

भगवान रथ में विराजमान हुए। उत्कलपति महाराज प्रतापरुद्र ने स्वर्ण की झाड़ू से रथ का मार्ग बुहारा और स्वर्ण पात्र से चंदन जल का छिड़काव किया। तत्पश्चात् भगवान जगन्नाथ की षोडशोपचार पूजा और आरती हुई। अंत में भक्तों ने रेशमी रज्जु पकड़कर रथ को खींचना शुरू किया।

राजमहल के गवाक्ष में उत्कल की महारानी के साथ बैठी हुई विष्णुप्रिया रथ-यात्रा का यह अपूर्व दृश्य देख रही है।

रथ के आगे गौड़देशीय संकीर्तन मंडलियों में सबसे आगे महाप्रभु संन्यासी वेष में हैं। उनके मुख पर अलौकिक तेज है। भजन गाते-गाते वे नृत्य करने लगते हैं। दिव्य नृत्य, मानों साक्षात् नटनागर श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हों।

महाप्रभु की मंडली में अद्वैताचार्य, श्रीवास, मुकुंददत्त, नित्यानंद, गदाधर—पूरा नवद्वीप ही गाता-नाचता चल रहा है।

विष्णुप्रिया प्रभु के नृत्य, भजन और कीर्तन के बारे में केवल सुनती रही है, आज प्रत्यक्ष देखकर अपनी दृष्टि को पावन और सार्थक करती है।

नृत्य की ताल, कीर्तन की लय और भजन की धुन द्रुततर होती जाती है। सहसा प्रभु को भावावेश होता है। नृत्य थम जाता है। कीर्तन-भजन रुक जाता है। महाप्रभु की मूर्त्ति मंदिर की मूर्त्ति के समान स्थिर हो जाती है।

भजन मंडलियां फिर आगे बढ़ती हैं। रथ पुनः गतिशील होता है। वह राजमहल के नीचे आता है। रथ के पार्श्व भाग में शुभ्र परिधान में वैष्णवियों के दल में विष्णुप्रिया को कांचना दीदी दिखाई देती है। दोनों की निगाहें मिलती हैं। कांचना की दृष्टि में विस्मय और विष्णुप्रिया की आंखों में प्रसन्न हंसी है—रथ और वैष्णवियों के दल आगे बढ़ जाते हैं।

"मां...मां...!"

विष्णुप्रिया एकदम जाग गई।

सलोनी उसके गले में बांह डाले कह रही थी, "मां, मैंने सुंदर सपना देखा। मैं वृन्दावन में श्यामसुंदर के मंदिर गई। सुबह की आरती का समय था, आरती समाप्त हुई। पुजारी ने मुझे प्रसाद दिया और कहा, 'यहीं भगवान के सामने खा ले।' मैंने खा लिया।"

उसके मस्तक पर वात्सल्य से हाथ फेरते हुए विष्णुप्रिया ने कहा, "शुभ शकुन है, री!"

लेकिन स्वयं उसने जो देखा, वह क्या था—स्वप्न या यथार्थ?

कल्पना अथवा वास्तविकता? जो भी हो, उसके नेत्रों में वह दृश्य अभी भी समाया हुआ था।

रथयात्रा का उत्सव देखकर नवद्वीप के भक्तों और वैष्णवियों का दल लौट आया। कांचना दीदी सीधे विष्णुप्रिया के पास आई। उसके चेहरे का तेज देखकर दीदी चकित रह गई। कुशल-क्षेम पूछने के बाद महाप्रभु का भेजा हुआ प्रसाद उसने विष्णुप्रिया को दिया।

विष्णुप्रिया ने सहज ही पूछा, "रथयात्रा का उत्सव कैसा रहा ?"

"जिसे स्वयं प्रभु ने महारानी के पास बिठाकर रथयात्रा दिखलाई, उसके आगे मैं रथयात्रा का क्या वर्णन करूंगी !"

विष्णुप्रिया ने एक क्षण के लिए साश्चर्य उसकी ओर देखा और संकुचित होकर गिलास में दूध उंडेलने के बहाने गर्दन झुका ली।

कांचना दीदी ने मानो अपने-आपसे कहा, "तो वह आभास नहीं, सत्य था। प्रभु ने मेरी गुहार सुन ली।"

()

कातिक बीता, मार्गशीर्ष शुरू हुआ और ठंड बढ़ने लगी। ऐसे में एक दिन शाम को राजपंडित के घर से दासी को साथ लेकर छोटी काकी आईं।

शची मां बरामदे में शाल ओढ़े नित्य की तरह बैठी जप कर रही थीं। उन्होंने पूछा, "सब कुशल है न ?"

"हां, सब कुशल है। पर सलोनी को प्रसव वेदना शुरू हो गई है और वह दीदी के नाम की रट लगाये हुए है। उसे बुलाने आई हूं।"

विष्णुप्रिया रसोईघर में थी। काकी की आवाज सुनकर बाहर आई तो शची मां ने कहा, "बहू, तू जा। यहां कांचना और कृष्णदास है। मेरी चिंता न कर।"

विष्णुप्रिया ने अपने कमरे में जाकर प्रभु चरणों को प्रणाम किया, खूंटी पर से शाल ली और काकी के साथ चल दी।

राजपंडित का घर कुटुंब-परिवार की स्त्रियों से भरा हुआ था। अनुभवी दाई ठाकुर मां आ चुकी थी। सलोनी के पास विष्णुप्रिया की दादी

बैठी उसे हिम्मत बंधा रही थी। विष्णुप्रिया भी सलोनी के कमरे में गई।

"मां, तू आ गयी ! अब मेरी मुक्ति होने तक मेरे पास ही रहना।"

सलोनी उसे कभी 'दीदी' और कभी 'मां' कहकर पुकारती थी। परंतु अभी उसने जिस स्वर में 'मां' कहकर पुकारा, उसे सुनकर विष्णुप्रिया का हृदय पुलकित हो गया। उसने सलोनी का माथा थपथपाकर कहा, "सलोनी, घबरा मत। हम सबका जन्म इसी ठाकुर मां के हाथों हुआ है, तेरे श्याम का भी। भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान धर, यशोदा मां का चिंतन कर, देवकी मां का स्मरण कर। मैं यहां तेरे पास ही हूं।"

मां दाई का अंदाज बिलकुल ठीक निकला। आधी रात बीतते ही सलोनी के बच्चा हुआ। दासी ने थाली बजाकर सारे घर को पुत्र-जन्म का शुभ समाचार दिया। राजपंडित के साथ ज्योतिषाचार्य भी जाग रहे थे। उन्होंने तुरत पंचांग खोलकर देखा और बोले, "अत्यंत शुभ योग, शुभ नक्षत्र।"

सबसे पहले विष्णुप्रिया ने नवजात बालक को देखा। वह कमरे से बाहर जाने लगी तो सलोनी ने उसका हाथ अपने मुख पर फेरते हुए कहा, "मां, आज तूने मां शब्द को सच्चे अर्थ में सार्थक कर दिया।"

"बस-बस, चुप कर।" विष्णुप्रिया ने स्नेह से डांटा, "इस अवस्था में ज्यादा बोलना और परिश्रम करना मना है। मां को यह शुभ समाचार देने के लिए मुझे तुरंत घर लौटना चाहिए।"

एक नौकर और श्याम उसे घर तक पहुंचाने गए। सुबह होने में काफी देर थी। घर में शची मां, कृष्णदास, कांचना दीदी सभी सोये हुए थे।

श्याम उसके साथ कमरे के अंदर तक आया। लौटने से पहले वह एक क्षण उसी तरह खड़ा रहा। फिर 'दीदी', 'दीदी' कहता हुआ झट से उसके चरणों में गिर पड़ा।

"अरे, अरे, श्याम, यह क्या पागलपन करता है !" कहते हुए उसने उसे उठाया। श्याम की आंखों में आंसू थे। वह उठा और गर्दन घुमाकर आंसू छिपाता हुआ झट-से बाहर निकलकर अंधेरे में चला गया।

कोई पंद्रह दिन वाद नित्यानंद, गदाधर और रामदास सबेरे-सबेरे आंगन में आ खड़े हुए।

गदाधर ने बताया, "हम सभी लोग प्रभु के पास ही रहना चाहते थे। पर प्रभु ने हम सबको अपने-अपने स्थान पर जाकर नियत कार्य करने का आदेश दिया, इसलिए हमें आना पड़ा।"

नित्यानंद ने कुछ दुःखित मन से कहा, "मेरे लिए प्रभु की आज्ञा हुई है कि गौड़ देश में रहकर भगवन्नाम का प्रचार करूं। बिना जातिभेद के ब्राह्मण से लेकर चांड़ाल तक सभी को भगवन्नाम का अधिकारी बनाऊं।"

फिर सबने मिलकर शची मां से कहा, "मां, अपने कार्य का शुभारंभ करने से पहले हम आपका आशीर्वाद लेने आए हैं।"

"यहां दो दिन रहो और फिर अपने-अपने कार्य पर चले जाना।"

शची मां की आज्ञानुसार दो दिन नवद्वीप में रहकर तीसरे दिन सूर्योदय होते ही गदाधरदास, अभिराम, पुरंदर पंडित आदि भक्तों के साथ नित्यानंद गंगा का किनारा पकड़कर अपने काम पर चल दिया।

प्रभु की आज्ञानुसार नित्यानंद ने गौड़ देश के घर-घर भगवन्नाम और सकीर्तन का प्रचार किया। नीच जाति के लोगों को उस जमाने में भगवन्नाम लेने तथा संकीर्तन करने का अधिकार नहीं था। प्रभु की आज्ञानुसार अवधूत ने भगवन्नाम के प्रचार का कार्य निम्न श्रेणी के लोगों से ही शुरू किया। अपना कार्य संपन्न हो जाने पर, शची मां की इच्छानुसार, वह नवद्वीप में आकर हिरण्य पंडित के घर रहने लगा। घर-घर कीर्तन होने लगे। निमाई के चले जाने के वाद, भजन और संकीर्तन में जो थोड़ी शिथिलता आ गयी थी, वह नित्यानंद के रहने से जाती रही। लोग नित्यानंद को निमाई ही समझते और उतना ही सम्मान देते थे।

पर धीरे-धीरे उसके रहन-सहन में परिवर्तन होने लगा। वह रेशमी वस्त्र पहनता और शरीर पर आभूषण धारण करता। सुगंधित तेल मलकर स्नान करता। उसके खान-पान में भी परिवर्तन हुआ। पर उसकी भगवद्भक्ति और कीर्तन-भजन में कोई फर्क नहीं पड़ा। इस पर लोग

उसकी निंदा करने लगे।

शची मां ने भी सुना और उसे चैतन्य महाप्रभु के पास पुरी भेज दिया।

प्रभु से नित्यानंद के मन का हाल छिपा न रहा। एक दिन उन्होंने उससे कहा, "श्रीपाद, अब आप गृहस्थ हो जाइए और संसार में रहकर ही भजन, कीर्तन और भगवद्भक्ति का आदर्श उपस्थित कीजिए।"

"प्रभो, आप यह क्या कह रहे हैं? आपने तरुणाई में संसार का त्याग कर संन्यास ग्रहण किया और मुझ संन्यासी को..."

चैतन्य प्रभु ने हंसकर उसकी बात काटी, "श्रीपाद आप ज्ञानी हैं। जानते ही हैं कि इस पृथ्वी पर सभी का अपना-अपना कार्य निश्चित है। आगे आपका नियत कार्य गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लेने पर ही चल सकेगा। सारे गौड़ देश का भार आप पर है। अतएव लोककल्याण के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, आप संन्यास छोड़कर गृहस्थ बनें, यही आपके लिए मेरा आदेश है।"

"प्रभु की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

फिर प्रभु ने कहा, "सूर्यदास पंडित, नित्यानंदजी धर्म-प्रसार के लिए गौड़ देश में घूमते समय आपके अंबिका नगर में गए थे। उस समय बड़े भक्तिभाव से आपने उन्हें अपने घर ठहराकर उनका आदर-सत्कार किया था। उनके प्रति आपकी बड़ी भक्ति है।"

"प्रभो, नित्यानंदजी जैसा ज्ञानी और प्रभावशाली भक्त मैंने और नहीं देखा।"

"इसलिए, पंडितजी, अब अपने घर को श्रीपादजी का श्वसुर-गृह बनाइए, ऐसी मेरी इच्छा है।"

प्रभु के आदेशानुसार नित्यानंद सूर्यदास पंडित के साथ अंबिका नगर गए और वहां उनकी वसुधा और जाह्नवी नामक दो कन्याओं से विवाह कर गृहस्थ हो गए। अब वे श्रीपाद कहलाने लगे।

नित्यानंद के विवाह की लोगों ने खूब आलोचना-प्रत्यालोचना की। सुनकर शची मां को भी अच्छा नहीं लगा, पर उन्होंने यह सोचकर मन समझा लिया कि भगवान की लीला अगम्य है। कभी लोक-कल्याण के

लिए संन्यास लेने की व्यवस्था देते हैं तो कभी लोक-कल्याण के लिए संन्यास छोड़कर गृहस्थ बनने का आदेश देते हैं।

रात में कांचना ने विष्णुप्रिया से कहा, "नित्यानंद के विवाह करने की बात सुनकर क्षण-भर के लिए तो मैं भी स्तब्ध रह गई।"

"दीदी, प्रभु कोई काम अविचारपूर्ण नहीं करते, यह तो तू जानती ही है।"

"निश्चयपूर्वक जानती हूं। उनमें मेरी भक्ति असीम और अगाध है पर उन्होंने नित्यानंद संन्यासी को गृहस्थ बनने के लिए क्यों कहा, यह मैं नहीं समझ पाती।"

"दीदी, नित्यानंद को इस प्रकार की आज्ञा देने में लोक-कल्याण की ही दृष्टि मुख्य है। वैष्णव धर्म की मूल शिक्षा है हर स्थिति में और हर जीव के प्रति सम-भाव। यह बात सभी के मन में स्थिर होना और कार्य रूप में परिणत भी होना चाहिए। इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए ही नित्यानंदजी को गार्हस्थ्य स्वीकार करने का आदेश दिया गया। इस संसार में प्रवृत्ति मार्गी होकर भी निवृत्ति मार्ग के तत्त्वों को आचरण में लाया जा सकता है। गृहस्थाश्रम में ही निष्काम-भक्ति का अधिक महत्त्व है। नित्यानंदजी की योग्यता को देखकर ही प्रभु ने उन्हें गृहस्थ बनने की आज्ञा दी है।"

"पर नगर में उनकी कितनी निंदा हो रही है?"

"महापुरुषों के उद्देश्य और कार्यों को साधारण लोग नहीं समझ पाते। कालांतर में समझ जायंगे और सराहना करेंगे।"

इतना कहकर विष्णुप्रिया ने दीये की बाती जरा उकसायी और नित्यक्रमानुसार भगवद्गीता खोलकर प्रभु के चरणों के सामने बैठ गई।

२८

एक दिन नवद्वीप में समाचार आया कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की यात्रा पर चल दिये हैं। यात्रा के प्रथम चरण में गौड़ देश आयंगे और नवद्वीप में सब भक्तों को दर्शन देकर तब वृन्दावन जायंगे।

कांचनपाड़ा से मुकुंददत्त का भाई वासुदेव पंडित यह शुभ समाचार लेकर आया था। वह नवद्वीप के घाट पर उतरा और मार्ग में जो भी मिला, उसे यह समाचार कहता हुआ शची मां के घर आया।

मां का मन अधीर हो गया। उन्होंने उत्कंठित होकर पूछा, "कब आ रहा है निमाई? तुमसे किसने कहा?"

"स्वयं प्रभु ने। श्रीवास पंडित के घर भिक्षा लेकर महाप्रभु ने अपनी चरण-धूलि से मेरा घर भी पावन किया। उन्हीं ने यह समाचार आपको देने की मुझे आज्ञा की है। चार दिन बाद वे शांतिपुर श्रीअद्वैताचार्य के आश्रम पहुंचेंगे और वहां दो-तीन दिन रहकर अपने सब भक्तों से भेंट करेंगे।"

महाप्रभु शांतिपुर आ रहे हैं, यह समाचार देखते-देखते सारे नगर में फैल गया। शची मां पुत्र दर्शन के लिए अधीर हो गईं। सात वर्षों के बाद उन्हें पुत्र का मुखदर्शन होने वाला था। वे शांतिपुर जाने की तैयारी में लग गईं। उनके मन-प्राणों में नया उत्साह भर गया।

"बहू, निमाई के लिए हमें पोहे और जलपान के लिए मिठाइयां आदि ले जाना चाहिए।"

प्रभु के शांतिपुर पहुंचने का समाचार शची मां को आचार्यरत्न चंद्रशेखर दे गए। बोले, "कल सुबह पालकी आयगी। आप तैयार रहिए।"

शची मां ने कहा, "बहू, तू भी मेरे साथ चलेगी?"

"मां, प्रभु के दर्शन मेरे भाग्य में नहीं। आप तो जानती ही हैं कि संन्यासी के लिए पत्नी-दर्शन शास्त्र-सम्मत नहीं। आप निश्चिंत मन से जाइए। मैंने सारी तैयारियां कर दी हैं, सब सामान बांधकर रख दिया है।"

सुनकर शची मां का कंठ भर आया। उनसे कुछ बोला न गया।

विष्णुप्रिया ने कांचना दीदी से बड़ा अनुरोध किया कि वह मां के साथ चली जाय, पर वह राजी न हुई। बोली, "तू नहीं जाती तो मैं भी नहीं जाऊंगी। तेरा दर्शन ही मेरा प्रभु-दर्शन है।"

सवेरे शची मां के लिए पालकी आ गई। उन्हें जहां पुत्र से मिल पाने की खुशी थी, वहीं इस बात का दारुण दुःख भी था कि बहू के नसीब में यह सुख नहीं लिखा। उमड़ते आंसुओं को पोंछती हुई, पूरे सात बरस बाद पुत्र से मिलने के लिए वे पालकी में बैठकर रवाना हुईं।

उनके साथ नवद्वीप की भक्त-मंडली भी 'हरिबोल, हरिबोल' कहती और 'गौरहरि, गौरहरि, मधुसूदन यादव गौरहरि' गाती चल दी।

जब तक आवाज सुनाई देती रही, विष्णुप्रिया सीढ़ियों पर खड़ी रही। उसके बाद धीरे-धीरे नीम वाले चबूतरे पर जा बैठी। कांचना दीदी छाया की तरह उसके पीछे लगी हुई थी।

शची मां के जाने तक विष्णुप्रिया ने अपने-आप पर अद्‌भुत संयम रखा था। उनके जाते ही सारा बांध ढह गया और विह्वल होकर वह करुण स्वर में कह उठी, "प्रभो! आपके दर्शन का क्या मुझे कोई अधिकार नहीं? क्या मैं इतनी क्षुद्र हूं? प्रभो, मेरे हृदय में आपकी जो मूर्त्ति है वह यति की नहीं, पति की है। मेरे हृदय में आपकी मूर्त्ति अंकित है। आप और मैं अभिन्न हैं। पर, प्रभो, अपने इस पागल मन का क्या करूं? इसे तो आपके दर्शन की अभिलाषा है। क्या मेरी यह इच्छा कभी भी पूरी होगी? प्रभो, प्रभो..."

उसका शरीर तन गया। चेहरे पर अंतर की गहन व्यथा उभर आई। आंखों से आंसू बहने लगे।

कांचना ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "सखी, तेरी आंखों में आंसू! शांत हो जा।"

आंसू पोंछकर वह अपने दैनंदिन कामों में लग गई, ऊपर से शांत, पर भीतर विरह-वेदना का लावा उबल रहा था। और अकेली कांचना दीदी उसकी मूक साक्षी थी।

जो भक्त शांतिपुर गए थे, वे प्रभु के दर्शन कर दो दिन बाद लौट आए। प्रभु के जो बहुत पुराने और अंतरंग भक्त थे, वे नहीं लौटे थे। शची

मां तो जाते समय ही कह गयी थीं कि जबतक प्रभु आश्रम में रहेंगे, वे भी वहीं रहेंगी।

शची मां ने गंगा मां के हाथ बहू और कांचना के लिए प्रसाद भेजा था। शाम को वे देने आईं तो उन्होंने बताया, "महाप्रभु आज ही वृन्दावन की यात्रा पर जाने वाले थे, परंतु सब भक्तों और विशेषकर शची मां के आग्रह पर दो दिन और रुक गए। सात बरस बाद अपने संन्यासी बेटे से मिलने वाली दुखियारी मां के आंसुओं ने आखिर महायोगी महाप्रभु को भी पिघला दिया।"

कांचना दीदी ने कहा, "महायोगी और संन्यासी महापुरुष को माता का दुःख दीखता है, समझ में भी आता है। ऐसा दुःख दुनिया की किसी भी माता पर न पड़े। परंतु महापुरुष संन्यासी की पत्नी का दुःख..."

"दीदी, क्या तुझसे भी कहना होगा कि महायोगी का मातृपद और पत्नीपद विरली स्त्रियों के ही भाग्य में लिखा होता है! हजारों जन्मों का संचित पुण्य फलने पर ही किसी इक्की-दुक्की को यह सौभाग्य प्राप्त होता है। उस सौभाग्य की तुलना में महायोगी की माता और पत्नी के हिस्से में आया हुआ दुःख-क्लेश सर्वथा नगण्य है। लोकहित में होने के कारण ऐसा दुःख-क्लेश उतना पीड़ादायी नहीं होता, जितना लोग समझ लेते हैं, उलटे उसमें एक प्रकार का सुख, संतोष और शांति होती है।" कहते-कहते विष्णुप्रिया का दुबला चेहरा तेजोमय हो गया।

दूसरे दिन सवेरे विष्णुप्रिया तुलसी-पूजा के बाद पूजा-पात्र लिये भीतर जा रही थी कि श्रीवास के दस वर्षीय नाती गोपाल ने दौड़े आकर कहा, "दीदी मां, ओ, दीदी मां! महाप्रभु यहां अपने नगर में आ रहे हैं।"

"तुझे किसने बताया?"

"मुकुंद काका ने।"

इतने में स्वयं मुकुंद पंडित वहां आ गए और बोले, "बहू मां, प्रभु नवद्वीप आने के लिए चल पड़े हैं। यहां आने का फैसला एकदम अचानक ही किया। निश्चित योजना के अनुसार तो हम लोग विद्यानगर जानेवाले थे। प्रभु के पीछे-पीछे विद्यानगर के लिए चल भी दिये थे। पर रास्ते में

महाप्रभु सहसा नवद्वीप की ओर मुड़ गए और बोले, 'नवद्वीप जाने की इच्छा हो रही है।' यहां शुक्लांबर ब्रह्मचारी के आश्रम में रुकेंगे।" यह कहकर और विष्णुप्रिया को प्रणाम कर वह जल्दी-जल्दी घाट की ओर दौड़ गया।

विष्णुप्रिया थोड़ी देर स्तब्ध खड़ी रही, फिर कांचना से बोली, "दीदी, प्रभु घाट पर आ रहे हैं। तू दर्शन करने चली जा।"

"प्रभु की इच्छा हुई तो चली जाऊंगी।" कांचना ने अनमने भाव से जवाब दिया।

जैसे ही लोगों को पता चला, सारा नगर महाप्रभु के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा। सभी घाट की ओर चल दिए।

विष्णुप्रिया अपने घर में काम कर रही थी, परंतु उसका मन ऊहापोह में लगा था। क्यों न कांचना को लेकर घाट पर चली जाऊं और दूर आड़ में खड़ी होकर प्रभु का दर्शन कर आऊं। "हाय, हाथ की अंजलि में गंगा-जल होते हुए भी क्या उसकी एक बूंद तृषार्त मुख में न डाल पाऊंगी ? कितना दारुण अभिशाप है ! प्रभु का भौतिक दर्शन क्या मुझे कभी होगा ही नहीं ?" और फिर विचार आता, भौतिक दर्शन की अभिलाषा क्यों, प्रभु तो तेरे हृदय में ही विराजमान हैं। तेरी अंजलि में गंगाजल नहीं, तू स्वयं गंगाजल है। भक्ति और ज्ञान को समन्वित कर, पगली। ज्ञानगंगा और भाव-यमुना का संगम हुए बिना शांति की सरस्वती प्रवाहित नहीं होती।...

उसका मन स्थिर हो गया। वह अपने कमरे में गई। प्रभु के पाद-पद्मों की ओर देखती हुई वह मन-ही-मन किंचित् हंसी। नित्य की भांति जप के लिए बैठने जा रही थी कि खयाल आया, यतिधर्म अंगीकार करने के बाद प्रभु प्रथम बार अपने जन्म-नगर में आ रहे हैं। अनेक भक्त बड़े प्रेम और भक्तिभाव से उन्हें भिक्षा अर्पित करेंगे। जिस घर में उनका जन्म हुआ, जहां वे छोटे से बड़े हुए, जहां गृहास्थाश्रम के कुछ वर्ष उन्होंने व्यतीत किये, वही घर भिक्षा देने से वंचित रह जाय, यह उचित नहीं होगा। कांचना दीदी के हाथ इस घर से भी कुछ-न-कुछ भेजना चाहिए।

वह रसोईघर में गई। उसने केले के पत्ते का एक बड़ा दोना बनाया।

उसे गुड़ और पोहों से भरा और केलों के एक गुच्छे के साथ टोकनी में रखा। ऊपर सुगंधित फूल रख दिए। अभी तो वहां भक्तों की बड़ी भीड़ होगी। दोपहर बाद ही भेजना ठीक रहेगा।

वह पुनः अपने कमरे में आई और प्रभु के चरणों के सामने आसन पर बैठकर जप करने लगी। दूसरे ही क्षण ध्यानमग्न हो गई।

समीप ही कांचना बैठी कोई ग्रंथ पढ़ रही थी। कुछ देर बाद उसने भजन और वाद्यों की आवाज इस ओर आते सुनी। बाहर जाकर देखा तो भीड़ इसी ओर आ रही थी। मनुष्यों का सागर ही उमड़ रहा था। भजन और वाद्यों की आवाज क्रमशः पास आती जा रही थी। अरे, क्या प्रभु इसी ओर आ रहे हैं ?

वह दौड़कर अंदर गई। विष्णुप्रिया को हिलाकर जल्दी-जल्दी बोली, "विष्णुप्रिये, महाप्रभु इधर ही आ रहे हैं। चल, जल्दी बाहर चल।"

विष्णुप्रिया का ध्यान भंग हुआ, उसने आंखें खोलीं, मन में थोड़ा हंसी। शांति से प्रभु के चरणों का वंदन किया, जपमाला यथास्थान रखी और आराम से चलती हुई बरामदे में आई। देखा तो सचमुच भक्तों का महासागर उसके घर की दिशा में ही चला आ रहा था। सबके आगे महाप्रभु थे। वे बहुत जल्दी-जल्दी आ रहे थे। उनके पीछे गाते-बजाते भक्तों की अपार भीड़ थी।

विष्णुप्रिया ने उधर से नजर हटाये बिना कहा, "दीदी, प्रभु इस घर के पास रुकें तो वह देख, दरवाजे में भिक्षा तैयार करके रख दी है। उसे लेकर मैं तुझे तीसरे पहर श्रीवास के घर भेजने वाली थी। प्रभु इस मार्ग से आए, यह हमारा परम सौभाग्य ! वे दरवाजे के पास रुकें तो यह भिक्षा तू उन्हें अर्पित कर देना। आज मां यहां होतीं तो वही इस कर्त्तव्य को निभातीं।" यह कहकर वह रसोईघर में चली गई और उसकी खिड़की से देखने लगी।

सहसा प्रभु दरवाजे पर आकर अधोमुख खड़े हो गए। प्रभु के रुकते ही वाद्यों की आवाज बंद हो गयी। भजन समाप्त हो गया। भक्तों का महासागर वहीं अचल हो गया। सर्वत्र शांति, गंभीरता और उत्सुकता व्याप गयी। दोपहर का सूरज भी मध्य आकाश में क्षण-भर के लिए

ठिठक गया।

खिड़की की राह विष्णुप्रिया प्रभु की ओर देख रही थी। काषाय-वस्त्र-परिवेष्टित, मुंडित सिर, भूमि की ओर नजर लगाए शांत और अचल खड़ी हुई प्रभु की देहयष्टि संगमरमर की देवमूर्ति की तरह लग रही थी। उसकी दृष्टि वहीं स्थिर हो गई।

तभी कांचना दौड़ी हुई भीतर आई और बोली, "विष्णुप्रिये, प्रभु तुझे दर्शन देने के लिए रुके हैं। चल जल्दी कर।"

वह होश में आई।

अस्थि-चर्म के मेरे शरीर, अब पीछे मत हटना। ओ मेरे मन, तुझे जिसकी अभिलाषा थी, उत्कट पिपासा थी, वह तेरे पति का भौतिक शरीर तेरे द्वारे आकर खड़ा है। जा, और आंखें भरकर उनका दर्शन कर।

क्षण-भर को उसका मन डोला, और अंग-प्रत्यंग कदली-पत्र की तरह कांप गया। शुद्ध ज्ञान पर धुंधली भावुकता हावी हो गई। पतिदेव के स्थान पर गौरहरी दीख पड़ा। चंचल मन दौड़ा जाकर उस देह को बाहों में भरने के लिए आतुर हो गया। लेकिन सिर्फ एक क्षण के लिए, एक क्षण के लिए।

सिर का आंचल चिबुक तक खींचकर वह बाहर आई। नीची नजर लिये धीमे पग धरती वह कांचना के साथ बरामदे की सीढ़ियां उतरी और आंगन पार कर फाटक पर आई। हजारों आंखें उसकी ओर लगी हुई थीं। पतली लाल किनारी की सफेद साड़ी में अत्यंत कृश और अलंकार-आभूषण-विहीन महाप्रभु श्री चैतन्य देव के पूर्वाश्रम की पत्नी विष्णुप्रिया एक-एक पग धरती हुई आगे बढ़ रही थी। उपस्थित जन-समुदाय मौन सांस रोके देख रहा था। किसी को वह तपस्विनी लगी, तो किसी को महा-योगिनी।

उसके अवनत मुख की दृष्टि महाप्रभु के चरणों पर लगी हुई थी। कांचना के साथ चलती हुई वह महाप्रभु के समक्ष पहुंची और उन चरणों में प्रणत हो गई।

प्रभु की दृष्टि भी नीचे जमीन की ओर थी। कहीं स्त्री का स्पर्श न हो जाय, इसलिए वे तुरंत पीछे हट गए और कठोर स्वर में बोले, "कौन हो

तुम ?"

कठोर स्वर के दारुण आघात से विष्णुप्रिया का हृदय क्षत-विक्षत हो गया। वह तड़प उठी। अपनी ही पत्नी से ऐसा मर्मांतक प्रश्न ? और वह भी इतने बड़े जनसमूह के सामने, सर्वथा खुले रास्ते पर। घोर अपमान के शत-सहस्र दंशों की पीड़ा ने उसे अवसन्न कर दिया; लेकिन केवल एक क्षण के लिए।

यह उसके नारीत्व की कसौटी थी, उसकी अग्निपरीक्षा। विधाता की इस सृष्टि के आरंभ से ही सुख-दु:ख के बंटवारे में स्त्री के हिस्से में दु:ख का बोझा ढोना ही लिखा गया है। गरिमा से उस बोझ को ढोना ही नारीत्व की सार्थकता है। उसके हृदय में नारीत्व का स्फुल्लिंग प्रज्वलित हो उठा। उन चरणों की ओर देखते हुए रूखे, परंतु अति विनम्र स्वर में अद्भुत संयम के साथ उसने उत्तर दिया :

"आप मुझे पहचानेंगे नहीं, क्योंकि संन्यासी के नाते-रिश्ते नहीं होते। मैं इस घर का गार्हस्थ्य धर्म पालन करने वाली एक साधारण स्त्री हूं। इस घर के कर्त्ता पुरुष, मेरे पंडित पति लोककल्याणार्थ यतिधर्म अंगीकार कर भागवत धर्म का प्रसार करते हुए पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं। आपने मध्याह्न काल में इस घर के सामने रुककर अपनी कृपा-दृष्टि डाली, यह घर धन्य हो गया। प्रभु, अब भिक्षा स्वीकार कर, घर को अतिथि-धर्म के निर्वाह का सौभाग्य प्रदान करें, ऐसी मेरी विनम्र प्रार्थना है।"

"स्वीकार्य है।" शांत किंतु कुछ स्निग्ध स्वर में प्रभु ने उत्तर दिया।

कांचना ने झुककर उनके सामने हाथ की टोकनी रख दी।

प्रभु जमीन पर नजर गड़ाये मूर्तिवत् अचल खड़े थे। विस्मित और रोमांचित भक्तगण इस अलौकिक दृश्य को अनिमेष नेत्रों से देख रहे थे।

विष्णुप्रिया ने यह सावधानी बरतते हुए कि उसके हाथ का स्पर्श न हो जाय, उन चरणों पर फूल चढ़ाये, भिक्षा की टोकनी आगे रखी और भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

"विष्णुप्रिये, अपना नाम सार्थक करो। इस संसार में विष्णुभक्ति ही सार सत्य है।"

"प्रभु के सिवा दूसरा कोई विष्णु है, यह मैं नहीं जानती। जानने की

मेरी इच्छा भी नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश,मेरे सबकुछ आप ही हैं।"

"तुम्हारी क्या इच्छा है?"

"प्रभो, आप सर्वज्ञ हैं। सती की एक ही इच्छा होती है, सदा-सर्वदा पति-चरणों की सेवा।"

प्रभु एक क्षण सोचते रहे। उन्होंने एक बार उस अवगुंठित चेहरे की ओर देखा। फिर तनिक पीछे हटकर अपने पैरों से उन्होंने खड़ाऊं निकाले। उन्हें उठाने के लिए वे झुके और स्निग्ध धीमे स्वर में बोले, "देवी, तुम्हारे दर्शन और वाक्चातुर्य से मैं धन्य हो गया।" फिर खड़ाऊं हाथ में लेकर उन्होंने उच्च स्वर में कहा, "देवी, इस संन्यासी के पास तुम्हें देने योग्य यही एक वस्तु है।"

"प्रभो, सती का यही सर्वस्व है।"

प्रभु के द्वारा दी गई पादुकाएँ हाथ में लेकर उसने उन्हें अपने मस्तक से लगाया और आंखें मूंद लीं।

प्रभु फुर्ती से पीछे की ओर मुड़े और जल्दी-जल्दी चलने लगे। देखते-देखते वे काफी दूर निकल गए। उनके पीछे-पीछे भक्त-समुदाय जय-जयकार करता चला जा रहा था।

विष्णुप्रिया पादुकाओं पर मस्तक रख वहीं ध्यानावस्थित हो गयी थी। आसपास की उसे सुधि ही नहीं रह गई थी।

विष्णुप्रिया और महाप्रभु की भेंट और प्रभु-पादुका प्राप्त होने की बात चारों ओर फैल गई। दूर-दूर से लोग विष्णुप्रिया और प्रभु के दर्शनार्थ आने लगे।

सर्वप्रथम विष्णुप्रिया की मां आईं। वह उन्हें अपने कमरे में ले गई। दीवार पर जहां प्रभु के चरण चित्रित थे, वहीं एक चौकी रख दी गई। उस पर रेशमी पीला आसन बिछाकर प्रभु की पादुकाएं पधरायी गईं। पादुकाओं को सुगंधित फूलों का हार पहनाया गया। चंदनी धूप की सुगंध महक रही थी। उन पादुकाओं के कारण कमरे का वातावरण मंदिर के गर्भगृह जैसा लग रहा था।

पादुकाओं का दर्शन करके मां बाहर आईं। उनके आगे दूध और कटोरी में प्रसाद रखकर विष्णुप्रिया ने पूछा, "सलोनी का स्वास्थ्य तो

अच्छा है न ? जच्चा-बच्चा कुशल से तो हैं ?"

सलोनी के पहले बेटे यदुनंदन के बाद अब दूसरी बार लड़की हुई थी। मां ने उत्तर दिया," "हां खूब स्वस्थ हैं। लड़की ठीक श्याम पर पड़ी है।"

विष्णुप्रिया ने हंसकर कहा, "तब तो बड़ी भाग्यवती होगी। पितृमुखी कन्या और मातृमुखी पुत्र भाग्यवान होते हैं ?"

"कन्या के नामकरण के लिए सलोनी ने तुझसे पुछवाया है।"

"अभी तो नामकरण में समय है। अगले सप्ताह मिलने जाऊंगी।"

दूसरे दिन शची मां लौट आईं। उन्हें सारा समाचार शान्तिपुर में ही मिल गया था। आते ही वे विष्णुप्रिया से लिपट गईं और खुशी के आंसू बहाती हुई बोलीं, "बहू, तू साक्षात् लक्ष्मी है। तेरे कारण इस घर का उद्धार हो गया।"

"मां, यह सब आपके पुण्य का ही फल है।"

पादुकाओं के दर्शन के लिए जब भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी तो विष्णुप्रिया की आज्ञा से कृष्णदास और बलभद्र ने कमरे के बीच में एक मोटा परदा खड़ा कर उसे दो भागों में बांट दिया। एक भाग में पादुकाएं थीं और दूसरे भाग में कांचना और विष्णुप्रिया का कमरा। भक्त बायें दरवाजे से दर्शन के लिए अंदर जाते।

सुबह-शाम के अलावा दोपहर को भी दूर गांव के भक्त दर्शनार्थ आ जाते थे, इसलिए श्याम के सुझाव पर आंगन की तरफ एक दरवाजा बनाकर बीच में दीवार खड़ी कर दी गई। अब दो कमरे हो गये थे। भक्त लोग बाहर से सीधे कमरे में आकर दर्शन कर सकते थे, और दर्शन के लिए सुबह-शाम का समय भी निश्चित कर दिया गया था।

पादुकाएं आने के बाद से विष्णुप्रिया कुछ अधिक गंभीर और अंतर्मुखी हो गई थी। सुबह वह कांचना के साथ घाट पर जाती। लौटकर शची मां की सेवा करती। वे थकती जा रही थीं और बहुत दुर्बल हो गई थीं। शची मां की सेवा के बाद विष्णुप्रिया अपने पूजा-पाठ, तप-ध्यान में लग जाती। तीसरे पहर महिला-मंडल और बाल मंडली जुटती। फिर शाम से रात तक भागवत पारायण होता। कांचना दीदी हमेशा उसके साथ रहती और उसकी सहायता किया करती थी।

२७

दो-तीन वर्ष बीत गये। इस बीच महाप्रभु वृंदावन की यात्रा कर पुरी लौट आए। वृंदावन-यात्रा के दौरान काशी और प्रयाग भी गए।

महाप्रभु की वृंदावन-यात्रा का पहला मुकाम तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी-तट पर हुआ। वहां एक दिन महाप्रभु वल्लभाचार्य अपने कुछ शिष्यों सहित चैतन्य महाप्रभु से मिलने आए। दोनों गले मिले। वल्लभाचार्य वयोवृद्ध तपस्वी और चैतन्य महाप्रभु युवा संन्यासी। दोनों की भेंट का वह दृश्य बड़ा अपूर्व था।

वल्लभाचार्य पुष्टिमार्गी वैष्णव पंथ के प्रणेता थे। संसार में रहते हुए निर्लिप्त भाव से जीवन व्यतीत करने की शिक्षा उन्होंने अपने अनुयाइयों को दी। उनका कहना था कि सब काम कृष्णार्पण करके करना चाहिए। सगुणोपासना और भक्ति पर उनका विशेष जोर था।

उस समय वल्लभाचार्य का मुकाम जमुना-पार अड़ैल नामक ग्राम में था। वे महाप्रभु को बड़े आदर के साथ अपने स्थान पर ले गए। दोनों आचार्यों और शिष्यों को मिलाकर दो नावें भर गईं। 'गोविंद, गोपाल, हरे मुरारे। हे नाथ, नारायण वासुदेव।' की कीर्तन-ध्वनि के बीच दोनों नावें उस पार चलीं। मंझधार में चैतन्य महाप्रभु को भावावेश हो गया। वे खड़े हो गए और नृत्य करने लगे। भरी हुई नाव डगमगाने लगी। उसमें बैठे हुए शिष्य और भक्त भयभीत हो गए। किसी भी क्षण नाव जमुना मैया के पेट में समा सकती थी।

केवल महाप्रभु वल्लभाचार्य शांत थे। वे निर्निमेष महाप्रभु को देख रहे थे। उनके मुख पर प्रसन्न मुस्कराहट खिली हुई थी। जब चैतन्य महाप्रभु का भावावेश बहुत बढ़ गया तो वल्लभाचार्य ने उठकर उन्हें आलिंगन में बांध लिया और बोले, "हे श्रीकृष्ण, हे गोपी जनवल्लभ, अब शांत हो जाइए।"

और दूसरे ही क्षण चैतन्य महाप्रभु शांत हो गए। नृत्य थम गया। वल्लभाचार्य ने हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया। प्रभु लज्जित हो

गए। सकुचाकर बोले, "कभी-कभी मुझे ध्यान नहीं रहता। क्या हो जाता है, बता नहीं सकता।"

वल्लभाचार्य ने हंसकर कहा, "आपके बिन कहे ही सब समझ में आ गया। अभी जो हो गया, वैसा क्षण बड़े भाग्य से आया करता है।"

वल्लभाचार्य ने अपने आश्रम में महाप्रभु का यथोचित स्वागत किया। प्रभु को प्रेमपूर्वक भिक्षा भोजन करवाया गया। जब सब लोग महाप्रसाद ले चुके तो दोनों ही परम वैष्णव पास बैठकर श्रीकृष्ण-चरित्र का गुणगान करने लगे। कृष्ण-भक्ति की मंदाकिनी ही प्रवाहित हो गई।

उस समय एक मैथिल पंडित वहां चैतन्य महाप्रभु से मिलने आए। वल्लभाचार्य ने परिचय कराया, "ये तिरहुत निवासी पंडित रघुपति उपाध्याय बड़े विद्वान और प्रतिभावान कवि हैं।"

चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें प्रेमपूर्वक अपने पास बिठाकर कहा, "कविराज, जिसमें कृष्णलीला और श्रीकृष्ण का गुणगान हो, ऐसा कोई स्वरचित काव्य सुनाने की कृपा करें।"

कविराज रघुपति का कंठ-स्वर बहुत मधुर और काव्य लालित्यपूर्ण था। उन्होंने जो श्लोक गाकर सुनाया, उसका सार था : 'भवसागर से भय-भीत अनेक पुरुष श्रुति की शरण जाते हैं, कितने ही स्मृति का आश्रय लेते हैं, कितने ही महाभारत का आधार लेकर भय दूर करना चाहते हैं। ठीक है, ये लोग जो भी करना चाहें, करें। उनके लिए अपने-अपने मार्ग खुले हैं। परंतु मैं तो उस महाभाग्यवान नंदपिता का वंदन करता हूं, उसकी शरण जाता हूं, जिसके आंगन में साक्षात सनातन पूर्ण ब्रह्म नृत्य कर रहा है।'

चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति कविराज की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कुछ और सुनाने का आग्रह किया, प्रभु के आग्रह पर कविराज ने जो श्लोक पढ़ा, उसका आशय यह था कि यमुना के किनारे गोपियों के साथ क्रीड़ा करने वाला साक्षात् परब्रह्म है, इसपर कौन विश्वास करेगा !

फिर चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा, "कविराज, कृष्ण के सब रूपों में आप सर्वश्रेष्ठ रूप कौन-सा मानते हैं ?"

"प्रभो, श्रीकृष्ण के मेघश्याम सुंदर रूप को ही मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूं।"

"अच्छा सर्व निवास-स्थानों में श्रेष्ठ स्थान कौन-सा मानते हैं?"

"मधुमयी मधुपुरी के माधुर्य के आगे सारे नगर रसहीन हैं।"

"वाह! वाह! अब यह बताइए कि श्रीकृष्ण की बाल, कौमार्य और किशोर, इन तीन अवस्थाओं में से किस अवस्था को आप श्रेष्ठ मानते हैं?"

"प्रभु श्रीकृष्ण की कमनीय कौमार्य अवस्था ही सर्वश्रेष्ठ अवस्था है।"

"धन्य हैं, कविराज! अब अंतिम प्रश्न पूछता हूं: रस आप किसे मानते हैं?"

"प्रभो, धृष्टता क्षमा करें। यह मुख से कहने का नहीं, अनुभवगम्य विषय है। शृंगार-रस के आगे सब रस नीरस हैं।"

यह सब सुनकर महाप्रभु ने कविराज को बहुत सम्मानित किया।

वृंदावन-यात्रा का यह विवरण शची मां आदि नवद्वीप के भक्तों को तपन मिश्र ने सुनाया, जो उस यात्रा में चैतन्य महाप्रभु के साथ थे।

उसके बाद एक दिन शची मां प्रातःकालीन पूजा-जप आदि संपन्न कर बरामदे में बैठी थीं। इधर कुछ दिनों से उनकी दृष्टि मंद हो चली थी। वृद्धावस्था और निरंतर ज्वर के प्रकोप ने शरीर को जीर्ण कर दिया था।

कृष्णदास आंगन में काम कर रहा था। सहसा आकर उसने बताया, "मां, राजपंडित के साथ संजय महाशय आ रहे हैं।"

शची मां को आश्चर्य हुआ। संजय महाशय इस घर में आज पहली बार आ रहे थे। निमाई पंडित के संन्यास लेने के बाद उन्होंने शची मां की आर्थिक मदद करनी चाही थी, जिसे मां ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था। कहला भेजा था, "मेरे लिए आपमें और निमाई में कोई अंतर नहीं है। जब आवश्यकता होगी, निस्संकोच सहायता ग्रहण करूंगी।"

दोनों आंगन की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आए। संजय महाशय ने शची मां को वंदन किया। उनके पीछे-पीछे राजपंडित ने भी। दोनों आसन पर बैठ गए।

शची मां ने दोनों का कुशल-क्षेम पूछा। संजय महाशय ने प्रभु का

कुशल-क्षेम जान लेने के बाद कहा :

"मां, आज मैं एक हेतु मन में लेकर आपके पास आया हूं।"

"भगवान आपका हेतु सिद्ध करे ! क्या है ?"

प्रणाम-आशीर्वाद और कुशल-क्षेम के विनिमय के बाद संजय महाशय ने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा, "मां, घाट पर जिस वटवृक्ष की छांव में निमाई पंडित बैठकर अपने शिष्यों को पढ़ाते थे, उस स्थान पर 'निमाई पंडित पाठशाला' के नाम से एक पाठशाला बनाने का विचार कई दिनों से मेरे मन में है। इसके लिए आपकी अनुमति और आशीर्वाद लेने आया हूं।"

राजपंडित ने अनुमोदन करते हुए कहा, "उस पाठशाला का सारा खर्च संजय महाशय ही वहन करेंगे, और पाठशाला के प्रमुख आचार्य पद पर अपने श्याम पंडित को नियुक्त करने की भी अनुमति चाहते हैं।"

संजय महाशय ने आगे कहा, "पंडित श्याम मुरारी मिश्र ने आचार्य पद की स्वीकृति के लिए यह शर्त रखी है कि पाठशाला की पढ़ाई में ज्ञान और भक्ति का समन्वित पाठ्यक्रम रखा जाना चाहिए। दोनों ही मानव-कल्याण के लिए आवश्यक हैं। उनका सुझाव उपयोगी है, अतएव स्वीकार्य है।"

"मां, आप एक बार उस शाला पर अपनी कृपा दृष्टि डालकर आशीर्वाद दीजिए, ऐसी संजय महाशय की इच्छा है।"

शची मां ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "संजय महाशय, मेरा आपको आशीर्वाद है। सचमुच आप पुण्यवान हैं। धन का उचित उपयोग कर आप अपने जन्म को सार्थक कर रहे हैं।"

'निमाई पंडित पाठशाला' बनकर तैयार हो गई। संजय महाशय ने उसके निर्माण पर सारा धन खर्च किया। पाठशाला में चार विशाल खंड थे। दो खंडों में विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन की व्यवस्था थी। तीसरा खंड ग्रंथालय था। चौथा खंड भगवद्भक्ति के लिए, भजन कीर्तन और धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन तथा चर्चा के लिए था।

इस समारोह के दस दिन पूर्व पंचमी को शुभ मुहूर्त में श्याम और सलोनी के पुत्र यदुनंदन मिश्र का धूमधाम से यज्ञोपवीत संस्कार किया

गया और अपने पिता पंडित श्याम मुरारी मिश्र के आचार्य त्व में 'निमाई पंडित पाठशाला' का वह प्रथम विद्यार्थी बना।

निश्चित मुहूर्त पर दोनों शुभ कार्य संपन्न हो गए। नवद्वीप की शोभा बढ़ गई। कीर्त्ति बढ़ गयी। शची मां पालकी से जाकर पाठशाला को आशीर्वाद दे आईं।

२८

दिन बीत रहे थे। ऋतुएं आतीं और चली जातीं। अपने ढंग से विष्णु-प्रिया का जीवन भी बीत रहा था। उसकी अंतर्मुखता दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। बोलना बहुत कम कर दिया था। आहार सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर होता जाता था। दोपहर को एक बार थोड़ा-सा अन्न और शाम को तुलसी के दो पत्ते मुंह में डालकर एक गिलास पानी पी लेती थी। रात में कुछ भी खाती-पीती नहीं थी। व्रत-उपवासों की संख्या बढ़ गयी थी। वैराग्य दृढ़ होता जाता था। शरीर कृश, पर चेहरा बहुत ज्योतिर्मय, शांत, प्रसन्न और गंभीर हो गया था। उसके दैनंदिन कार्यों में किसी तरह की न्यूनता नहीं होने पाई थी।

भक्तों की भीड़ बढ़ती जाती थी। आंगन में रोज चौथे पहर प्रवचन होते। नीम के चबूतरे पर तीसरे पहर बालक-बालिकाओं का दल जुटता। उन्हें पुराण कथाएं सुनाई जातीं। नन्हीं हथेलियों से ताल देते हुए नन्हें-नन्हें कंठ मधुर कोमल स्वरों में भजन गाते।

प्रति वर्ष रथयात्रा के लिए नवद्वीप और सारे गौड़ देश से भक्तगण पुरी जाते। वहां चार महीने प्रभु के पास रहते। फिर प्रभु का आशीर्वाद और प्रसाद लेकर अपने घर लौटते और शची मां को वहां का सारा वृत्तांत सुनाते। कभी-कभी महाप्रभु भी अपने किसी भक्त को प्रसाद देकर शची

मां का कुशल समाचार लेने के लिए भेज दिया करते थे।

कोई आकर कहता, "मां, उत्कलपति महाराज प्रतापरुद्र देव ने प्रभु को रहने के लिए जगन्नाथजी के मंदिर के पास अपने कुलगुरु पंडित काशी मिश्र का विशाल गृह दे दिया है। वहां हमेशा भजन-कीर्तन होते रहते हैं।"

कोई आकर कहता, "मां, आजकल प्रभु अधिकाधिक एकांतप्रिय होते जा रहे हैं। मिश्र भवन की एक पुरानी सुरंग में प्रभु ने एक गुफा बना ली है। उसमें बैठकर ही प्रवेश किया जा सकता है। भजन और कीर्तन समाप्त हो जाने के बाद प्रभु अपने उस 'नीरव मंदिर' में जाकर विश्राम करते हैं। आजकल बहुत देर तक वहां एकांतवास करते हैं।"

एक बार श्रीवास ने पुरी से लौटकर बताया, "इस बार महाप्रभु ने आज्ञा दी है कि आगामी वर्ष से रथयात्रा के लिए कोई पुरी न आए। आजकल प्रभु को बार-बार भावावेश होता है। देर तक 'गंभीरा मंदिर' में रहने लगे हैं। इस वर्ष रथयात्रा में भी नहीं आए। जब रथयात्रा समाप्त हो गई, तब 'गंभीरा मंदिर' से बाहर आए और तभी उनके दर्शन हुए। उन्होंने यह आज्ञा भी दी है कि आगे से हर वर्ष घर पर ही उत्सव किया करो।"

तब से हर वर्ष रथयात्रा के समय नवद्वीप में भजन-कीर्तन होने लगे और शची मां का घर तो जैसे दूसरी पुरी ही बन गया।

शची मां काफी थक गई थीं। सुबह पूजा होने के बाद और सायंकाल थोड़ी देर के लिए वे बरामदे में आकर बैठ जातीं। बाकी समय अपने कमरे में ही बिताती थीं।

उन्होंने घाट पर जाना छोड़ दिया था। वहां तक जाने की शक्ति ही नहीं रह गई थी। श्याम ने उनके लिए घर के पीछे के अहाते में एक पोखर बनवा दिया था। उसी में स्नान कर लेती थीं।

जब से उन्होंने सुना कि प्रभु का भावावेश क्रमशः प्रेमोन्माद और दिव्योन्माद में परिणत होता जाता है और कई-कई दिनों तक वे सामान्य अवस्था में नहीं आते तब से हमेशा यही मनाया करती थीं कि उनका गलित गात्र, क्षीण शरीर, जितनी जल्दी गल जाए, उतना अच्छा। वैसे

उन्हें यह आभास हो चला था कि अंतकाल निकट आ गया है।

शची मां के मन की अवस्था और हृदय की वेदना विष्णुप्रिया समझती थी, फिर भी उन्हें आश्वस्त करने का प्रयत्न करती, "मां, दिव्योन्माद तो कृष्ण-भक्ति का सर्वोच्च सोपान है। भक्त यही कामना करता है कि प्रभु का नामोच्चार करते-करते उसके आंसू बहने लगें और रुद्ध कंठ से 'कृष्ण, कृष्ण, हे कृष्ण' पुकारते हुए शरीर रोमांचित हो जाय। उस दिन श्रीवास बता रहे थे कि 'गंभीरा मंदिर' में बैठकर महाप्रभु रात-रात-भर आर्त स्वर में पुकारते रहते हैं—'श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ, नारायण वासुदेव!' यही प्रेमोन्माद है। आप चिंता न करें।"

लेकिन जिस दिन जगदानंद पुरी से आए, शची मां की चिंता और व्यग्रता बहुत बढ़ गयी। उन्होंने बताया कि महाप्रभु का दिव्योन्माद स्थायी होता जा रहा है।

उस रात कांचना दीदी ने विष्णुप्रिया से कहा, "आज मां बहुत बेचैन हैं।"

"जगदानंद ने जब से पुरी के समाचार दिए, तभी से वे बेचैन हैं। समझ में नहीं आता कि क्या कहकर उन्हें धैर्य बंधाऊं। उनका शरीर क्षीण होता जा रहा है। मन की शक्ति भी कम हो रही है। केवल प्रभु के लिए ही वे जी रही हैं।"

"प्रभु का दिव्योन्माद भी तो बढ़ रहा है।"

"सो तो बढ़ता ही जायगा, कम नहीं होगा।"

"लेकिन कई लोग अभी भी महाप्रभु के दिव्योन्माद को निरा पागलपन समझते हैं।"

"ऐसे संशयात्मा और अनास्थावानों के हृदय में कृष्ण-भक्ति जागृत हो, आस्था के अंकुर फूटें, इसीलिए तो प्रभु ने संन्यास लिया, यात्राएं कीं और ऊंच-नीच का भेद समाप्त किया। प्रभु गृहस्थाश्रम का त्याग कर संन्यास लेने के लिए गए, वह रात मुझे अभी तक याद है। प्रभु के शब्द, लोक-कल्याण के लिए उनकी तीव्र छटपटाहट, मैं भूल नहीं सकती। उनकी दिव्यता से मैं इतनी प्रभावित हुई कि अपनी सांसारिक इच्छाएं और वासनाएं मुझे तुच्छ लगीं। उस रात उनके सान्निध्य में सारी विषय-वासनाओं

का पूर्णतः शमन हो गया। दीदी, वह रात लौकिक दृष्टि से मेरे परम दुःख की, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से परम सुख की रात थी—ऐसी रात जब समस्त दुःख सुख बन जाता है।"

कहते-कहते उसका कंठ गीला हो गया। कांचना के कंधे पर अपना सिर रख कर उसने नेत्र बंद कर लिये और अस्फुट स्वर में बोली, "अपने 'गंभीरा मंदिर' में महाप्रभु आर्त स्वर में अहर्निश पुकारते रहते हैं, 'नंद का वह नंदन कहां है? मोर पंख का वह मुकुटधारी कहां है? मुरली का वह बजैया कहां है? हाय, वह घनश्याम कहां है? रास का रचैया वह कहां है? मेरे प्राणों की वह संजीवनी बूटी, मेरी परमनिधि, मेरा सखा कहां है? हाय, कहां है ?' मेरे हृदय में भी दिन-रात यही पुकार उठती रहती है। आतुर प्राण प्यासे पपीहे की तरह पुकारा करते हैं—'प्रभो, प्रभो, प्रभो !' "

उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

कांचना पुलकित हो गई और उसकी आंखों से भी आंसू बहने लगे।

दोनों देर तक अपने-अपने विचारों में खोई बैठी रहीं। कुछ देर बाद कांचना ने पूछा, "कहां चली गई थी तू ? महाप्रभु के 'गंभीरा मंदिर' में गई थी ?"

विष्णुप्रिया ने किंचित् हंसकर जवाब दिया, "हां री, वहीं हो आयी हूं। पर प्रभु वहां हैं कहां ? गए हैं वृंदावन। यमुना-तट पर कृष्ण के साथ बैठे उसकी मुरली सुन रहे हैं। मेरा पैर उन्होंने यहां संसार की इस ओखली से बांध रखा है। मैं बेचारी वहां जाऊंगी कैसे ?"

कांचना कुछ नहीं बोली। जिसके मन को बोध हो गया, हृदय ने जिसे जान लिया, उस विषय में फिर बोलने को रह ही क्या गया ?

शची मां कई दिन से ज्वरग्रस्त थीं। आज बुखार कुछ कम हुआ था। राजपंडित उनका समाचार पूछने आए तो इधर-उधर की बातों के बाद बोले, "मां, भक्तों का आना-जाना बहुत बढ़ गया है। इसलिए यहां का काम भी बढ़ता जाता है। अब बाहर की व्यवस्था के लिए यहां किसी को हमेशा रहना चाहिए। श्याम इस सेवा के लिए तैयार है। आपकी अनुमति हो तो वह अपनी पत्नी और बच्चों सहित यहीं आकर रहे।"

शची मां ने कहा, "बहुत अच्छा रहेगा। मैं अब थक चली हूं। इस शरीर का भरोसा नहीं। श्याम के सपरिवार यहां आ जाने से बहू को भी आराम मिल जायगा।"

पूर्व निश्चयानुसार महाप्रभु जन्मदिवस फाल्गुन पूर्णिमा को प्रातः-काल शुभ मुहूर्त में श्याम, सलोनी और उनके बच्चे शची मां के घर रहने आ गए। राजपंडित ने एक अनुभवी दासी भी उनके साथ भेज दी थी।

इस बार महाप्रभु का जन्मोत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। बिना वर्ण और वर्ग-भेद के सभी को निमंत्रित किया गया। सभी ने एक ही पंगत में बैठकर प्रसाद ग्रहण किया।

श्याम ने अद्वैताचार्य और सीता मां को पालकी भेजकर विशेष रूप से निमंत्रित किया था।

शाम को आंगन में भजन-कीर्तन का समां बंध गया। सभी को ऐसा आभास हो रहा था, मानो गौरांग बीच में खड़ा नृत्य कर रहा है।

○

इस तरह दस वर्ष बीत गए। पुरी से प्रभु के यही समाचार आते कि दिन-रात का अधिकांश समय वे अपने 'गंभीरा मंदिर' में दिव्योन्माद में ही रहते हैं। इधर शची मां दिनोंदिन क्षीण होती जा रही थीं। वे अब अधिक समय अपने कमरे में ही लेटी रहतीं। जराजर्जर देह कांपती रहती। बिना सहारे वे चल नहीं सकती थीं। अधिकांश अपने कमरे में बिस्तर पर पड़े-पड़े जप किया करतीं। सवेरे विष्णुप्रिया उनका हाथ पकड़ कर स्नान, तुलसी-पूजा आदि करा देती। श्याम और सलोनी भी अपने-अपने ढंग से उनकी सेवा करते।

एक दिन अद्वैताचार्य पालकी में बैठकर शची मां से मिलने के लिए आए। वे स्वयं भी बहुत वृद्ध और क्षीण हो गए थे और बिना लकड़ी के सहारे के चल नहीं सकते थे। आते ही उन्होंने श्याम से पूछा, "शची मां का स्वास्थ्य कैसा है?"

दिन-प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही हैं। एक तो वृद्धावस्था, ऊपर से हर समय प्रभु की चिंता।"

अद्वैताचार्य ने हंसकर कहा, "अरे, जिनका चिंतन करना चाहिए, उनकी

चिंता किसलिए ? शची मां के क्षीण स्वास्थ्य का समाचार मिला, इसीलिए तो उनसे मिलने आया हूं।"

फिर बातों के दौरान अनेक पुरानी स्मृतियां निकलीं। प्रभु के जन्म से लेकर अनेक प्रसंग बातों में सामने आये। श्री अद्वैताचार्य पंडित जगन्नाथ मिश्र के सुहृद थे। उनकी आज्ञा से पंडित मिश्र शची देवी सहित पुरी की यात्रा पर गए थे। वहां सुबह की आरती के समय जो घटना घटी थी, उसका स्मरण कराते हुए आचार्य ने कहा :

"शची मां, आप जगन्माता हैं, इसे मत भूलिए। प्रभु के मूल स्वरूप को भी हमेशा याद रखिए। भगवान विष्णु के सभी मानवावतारों का उद्देश्य धर्म की रक्षा करना है और इस कार्य को संपादित करने के लिए भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में से अपने शरीर को ले जाना पड़ता है। दिव्योन्माद ऐसी ही अवस्था है, जो महायोगी की इच्छानुवर्ती सहजावस्था है। इस अवस्था में कभी स्तंभन, कभी प्रस्वेद, कभी कंप, कभी विवर्णता, कभी अश्रुपात, कभी स्वर-भेद और कभी रोमांच होता है; कभी हंसना, कभी रोना, कभी नाचना, कभी गाना, कभी इधर-उधर भागना और कभी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिरना भी होता है।"

कुछ देर रुक कर उन्होंने आगे कहा, "शची मां, आपके और जगन्नाथ पंडित की अनन्य भक्ति और परम वैष्णव भाव सार्थक हुए ! जन्म लेने का प्रयोजन पूरा हुआ। अब चित्त को शांत कर भगवान श्रीकृष्ण में अपना मन पिरोइए।"

उनकी बात सुनकर शची मां का मन शांत हो गया। आत्म-ज्ञान न हो पाने का जो खेद अभी तक मन को कुरेदता रहता था, वह मिट गया।

भोजन के बाद थोड़ा विश्राम कर श्री अद्वैताचार्य शांतिपुर लौटने लगे तो उन्होंने श्याम से कहा, "प्रभु के लिए एक पत्र देता हूं। श्याम जरा लिखना तो।" और वे लिखाने लगे :

"बाउलके कहिह—लोक हइल बाउल।
बाउलके कहिह—हाटे ना विकाय चाउल ॥
बाउलके कहिह—कजि नाहिक आउल।
बाउलके कहिह—इहा कहिया छे बाउल ॥

न तो श्याम और न वहां उपस्थित किसी अन्य की समझ में आया कि यह बाऊल-वाऊल क्या है।

अद्वैताचार्य ने पुरी जा रहे एक भक्त को वह पत्र देते हुए कहा, "प्रभु को मेरा कुशल समाचार कहकर यह पत्र दे देना।"

चलते-चलते उन्होंने पुनः शची मां से कहा, "शची मां, श्रीकृष्ण के बालरूप का नित्य स्मरण करती रहिए। बालरूप ही माता के मन का तोष और शरणस्थल है। चिरशांति भी वहीं है।"

शची मां ने कहा, "आचार्य, आपके सदुपदेश से मेरा मन शांत हो गया है।"

अद्वैताचार्य तो पालकी में बैठकर चले गए, परंतु अपने पीछे श्याम पंडित के लिए 'बाऊल' की पहेली छोड़ गए। वह उसका अर्थ जानने के लिए व्यग्र हो गया। अंत में उसने श्रीवासाचार्य को पकड़ा और बार-बार अनुरोध करने लगा कि वे इस पहेली को हल करें।

श्रीवासाचार्य ने पहेली का अर्थ बताने से पहले अद्वैताचार्य की संक्षिप्त जीवन-झांकी प्रस्तुत की कि ये श्रीहट्ट (सिलहट) जिले के लाउड़ के नवग्राम निवासी कुवेर पंडित के पुत्र हैं। इनके पिता लाउड के महाराज दिव्यसिंहजी के राजपंडित थे। नौ वर्ष की अल्प वय में कमलाक्ष (अद्वैताचार्य का मूल नाम) एक बार काली पूजा के समय महाराज के दरबार में गया। उस समय कई भैंसों और बकरों की बलि चढ़ाई जा रही थी। काली माता को वंदन कर उलटे उसकी ओर रोषभरी दृष्टि डालकर वह अपने पिता के पास बैठ गया।

"उसके इस आचरण से महाराज क्षुब्ध हो गए। उन्होंने कारण जानना चाहा तो कमलाक्ष ने निर्भयता, परंतु विनम्रता से उत्तर दिया, 'महाराज, देवी जगज्जननी है। सारे प्राणी उसके बालक हैं। जो माता अपने पुत्रों की बलि लेती है, वह माता नहीं, राक्षसी है। देवी-देवता के नाम पर पशु-बलि अधर्म है!'"

"महाराज दिव्यसिंह चकित रह गए। उन्होंने पूछा, 'शाक्तधर्म से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं। तू किस धर्म की बात करता है?'

"कमलाक्ष निर्भयता से बोला, 'भागवत धर्म की सच्चिदानंद नारा-

यण की भक्ति ही मेरा धर्म है।'

"छोटी उम्र में ही अध्ययन पूरा कर कमलाक्ष भारत-यात्रा पर निकल पड़ा। शाक्तों की हिंसा, मुसलमान शासकों की धर्मांधता, पंडितों का पारस्परिक द्वेष और निम्न जातियों पर सवर्णों के अत्याचार देखकर उसे बहुत दुःख होता था। दक्षिण-यात्रा में श्री माधवेन्द्रपुरी से उसने श्रीकृष्ण-मंत्र की दीक्षा ली। शांतिपुर में आकर पाठशाला शुरू की। विवाह कर गृहस्थी बसाई। जन्म के निराश्रित, महाप्रभु के पावन भक्त हरिदास को अपने घर में रखकर सर्वशास्त्र पारंगत कर दिया। एक बार श्राद्ध के समय हरिदास को ही सबसे पहले श्राद्ध-भोजन दिया। इसपर पंडितों ने भर्त्सना की तो सभी को खूब आड़े हाथों लिया।

"हरिदास यवन हैं। बचपन से निराश्रित, पर कृष्ण के परम भक्त। अद्वैताचार्य ने उन्हें अपने घर रख लिया। सब शास्त्रों में पारंगत कर दिया। हरिदास आचार्य के घर आया करते। इस कारण आचार्य की लोग निंदा करने लगे। एक दिन श्राद्ध के समय आचार्य ने श्राद्धन्न प्रथम हरि-दास के हाथ में दिया, तब पंडितों ने उनकी भर्त्सना की। उसे सुनकर अद्वैताचार्य ने कहा, "हरिदास को भोजन देना मैं करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन देने के बराबर ही महत्त्वपूर्ण मानता हूं और इसे एक महा पुण्य भी समझता हूं।"

"ऐसे हैं ये अद्वैताचार्य—सबको समान मानने वाले।

"दिन-रात वे कृष्णभक्ति में मग्न रहते हैं। अपने गुरुदेव का आश्वा-सन निरंतर उनके मन-मानस में बना रहता है। कृष्णमूर्त्ति की पूजा करते समय, नाम मंत्र कहते समय, वे नित्य प्रार्थना करते, 'हे प्रभो, धर्म की रक्षा के लिए शीघ्र आइए।' उन्हीं की आज्ञा से पंडित जगन्नाथ मिश्र और शची मां पुरी की यात्रा पर गए और गौरांग प्रभु का जन्म हुआ।

"महाप्रभु को उन्होंने 'बाऊल' नाम से जो संदेश भेजा है, उसका अर्थ यह है कि हरिनाम प्राणियों का जीवनाधार है और महाप्रभु उस हरिनाम के व्यापारी हैं; अद्वैताचार्य उस व्यापारी के मुख्य दलाल हैं। जैसा व्यापारी

पागल है, दलाल भी वैसा ही पागल है। इस पागल दलाल ने पागलपन के कुछ शब्द भेजे हैं। यह पागल दलाल कहता है कि सब लोगों की कोठियां हरिनाम-रूपी अनाज से भर गयी हैं, बाजार-भाव काफी उतर गया है, समृद्धि आ गई है। इसलिए व्यापारी को अब दुकान बंद कर अपना कार-बार समेट लेना चाहिए।"

बाऊल की पहेली तो हल हो गयी, सुनने वालों के हृदय शोकाच्छन्न हो गए।

२६

शची मां का मन अब पूरी तरह शांत हो गया था। एक दिन उन्होंने विष्णुप्रिया से कहा, "बहू, अब मेरा यह पार्थिव शरीर अधिक दिन नहीं टिकेगा। इस शरीर को जो कुछ भोगना था, सब भोग चुका। अब इस शरीर को त्यागने का समय आ गया। आज वैशाख नवमी है। परसों एकादशी के दिन तू मुझे भगवती भागीरथी के किनारे ले चलना।"

विष्णुप्रिया दुःखावेग को दबाकर उनकी बात सुनती रही। निकट बैठी हुई कांचना ने भी सुना। सारे गांव को पता चल गया कि शची मां एकादशी के दिन देह-त्याग करेंगी। उनके दर्शनों के लिए भक्तों का तांता लग गया और अखंड कीर्तन शुरू हो गया।

एकादशी के दिन सूर्योदय होते-होते शची मां ने स्नान, पूजन, जप तथा अन्य कार्य नित्य के अनुसार पूरे किये। सब अपने कामों में लगे थे, पर हरएक का मन रो रहा था।

सूर्य ऊपर चढ़ने लगा। पालकी आई। भक्त आंगन में जमा होने लगे। निकलने का समय हो गया।

शची मां ने पुकारा, "बहू..."

"आई, मां।"

आज के बाद न तो कोई इस तरह पुकारेगी और न कोई इस तरह उत्तर ही देगी।

विष्णुप्रिया आकर उनके चरणों में गिर पड़ी।

शची मां ने उसे छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया, "मिश्र-घराने का नाम तूने अमर कर दिया। नियत कार्य समाप्त होने तक तुझे रहना है।" फिर सलोनी और घर के सभी लोगों को आशीर्वाद देकर कहा, "बहू, मेरी शाल ला और चल, अब मुझे पालकी में बिठा दे।"

घर में, आंगन में, बाहर और सड़क पर सर्वत्र भीड़-ही-भीड़ थी। शची मां ने हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद दिया।

भक्तों ने पालकी उठाई। पालकी के साथ विष्णुप्रिया, कांचना, श्रीवासाचार्य की पत्नी मालती देवी और उनके पीछे अनगिनत स्त्रियां चल रही थीं। पालकी के आगे राजपंडित, श्रीवासाचार्य तथा अन्य भक्त-गण थे। सभी उच्च स्वर में हरिनाम का जप करते जा रहे थे।

पालकी घाट पर पहुंची। 'निमाई पंडित पाठशाला' के सामने, घाट पर, पानी से लगी हुई सीढ़ी पर भक्तों ने पालकी रख दी। पालकी के भीतर जरा-जीर्ण देह तिरछी पड़ी हुई थी। मुंह से क्षीण स्वर में निरंतर जप चल रहा था। तेजस्वी चेहरे पर अद्भुत शांति थी।

आज गंगामैया में भी ज्वार आ गया। सीढ़ी से टकराने वाली लहरों की फुहारें पालकी में पड़कर शची मां को भिगो रही थीं। सब लोग उच्चातिउच्च स्वर से 'हरे राम, हरे कृष्ण' मंत्र का जप करने लगे।

सूर्य मध्याकाश से पश्चिम की ओर ढला और शची मां ने कहा :

"श्याम, तुलसी-पत्र और गंगाजल मेरे मुंह में डाल।"

श्याम ने गंगाजल और तुलसीदल उनके मुंह में डाले। उन्होंने एक बार चारों देखा और सदा के लिए अपने नेत्र बंद कर लिये।

○

शची मां चली गईं। भरा-पूरा घर अब विष्णुप्रिया को सूना लगता। वह अधिक गंभीर और मितभाषिणी हो गई। अपना सारा समय धर्म-ग्रंथों को पढ़ने और प्रभु-पादुकाओं के पास बैठकर जप करने में बिताने

लगी। गृहस्थी का सारा भार सलोनी ने उठा लिया।

फिर रथयात्रा के दिन आए। शची मां की मृत्यु के पश्चात् यह पहला उत्सव था। पर श्याम ने उसमें कोई कमी नहीं होने दी। उसने इस घर को वैष्णव-धर्म का केंद्र ही बना दिया था। सारा नगर उसकी प्रशंसा करता, 'गौरांग प्रभु ने जो बिरवा रोपा, श्याम उसे छतनार वृक्ष बना देगा।' सुनकर विष्णुप्रिया को संतोष होता।

आषाढ़ महीने के आरंभ में एक रात कांचना दीदी हठात् जाग गई। देखा तो चटाई पर विष्णुप्रिया नहीं थी। पहले उसने खिड़की से नीम के चबूतरे की ओर देखा। विष्णुप्रिया रात में कभी-कभी वहां जाकर बैठ जाती थी। पर वहां कोई नहीं था। तब उसने पादुका-मंदिर में झांका। विष्णुप्रिया पादुकाओं के पास बैठी हुई कातर स्वर में कह रही थी :

"...नहीं, प्रभो, नहीं, यह विरह मैं कैसे सह सकूंगी? प्रभो... नहीं, प्रभो! मुझे अकेली छोड़कर मत जाइए!..."

फिर उसने पादुकाओं को दोनों हाथों के घेरे में ले लिया और उनपर सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगी।

कांचना को समझते देर न लगी। उसने अपनी रुलाई को किसी तरह रोका और विष्णुप्रिया के पास जाकर बैठ गई। उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसने कहा, "विष्णुप्रिये..."

विष्णुप्रिया बेहोश हो गयी थी। कांचना ने लोटे से गंगाजल उसके चेहरे पर छिड़का। उसने धीरे-धीरे आंखें खोलीं। कांचना को देखते ही वह उससे लिपट गई और शोकाकुल कांपते स्वर में बोली, "दीदी, प्रभु स्व-स्थान चले गए। जिस मूर्ति से प्रकट हुए थे, उसी मूर्ति में अंतर्धान हो गए। हाय दीदी..."

"विष्णुप्रिये, धीरज धर। प्रभु का कार्य समाप्त हो गया। वे स्वस्थान सिधार गए। अपना नियत कार्य समाप्त होने तक उनकी आज्ञा से तुझे यहीं रहना है। और प्रभु कहीं गए नहीं, तेरे रूप में यहीं विद्यमान हैं।"

विष्णुप्रिया चुप सुनती रही, फिर बोली, "दीदी, कुछ समय के लिए मुझे यहां एकांत में अकेली छोड़ दो।"

पादुका मंदिर का द्वार धीरे-से बंद कर कांचना बाहर निकल आई।

वह श्याम को यह समाचार देने के लिए सीढ़ियां उतर ही रही थी कि उसे श्याम और श्रीवासाचार्य फाटक के भीतर आते दिखाई दिये। इतनी रात दोनों को एक साथ आते देखकर उसे आश्चर्य हुआ, और जब उसने विष्णुप्रिया और श्याम के बारे में बताया तो उत्तर में श्रीवासाचार्य ने जो कहा, उसे सुनकर और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

श्रीवासाचार्य ने कहा, "विष्णुप्रिया के उद्गार सोलहों आने सच हैं। प्रभु उससे आज्ञा लेकर स्वस्थान सिधार गए। मुझे इसका पूर्वाभास हुआ और श्याम को भी।"

श्याम ने व्यथित कंठ से कहा, "मैं सबेरे नित्य की भांति घाट पर जा रहा था। तभी फाटक से कोई भीतर आया। मैंने सोचा, जैसा रात को तय हुआ था, शायद पंडित नीलरत्न बुलाने आए हैं; परन्तु आने वाले साक्षात् महाप्रभु थे।

"देखते ही मैं अवाक् उनके चरणों पर गिर पड़ा। प्रभु नीचे झुके, मुझे उठाया, आलिंगन में बांधकर बोले, 'श्याम, मैं प्रसन्न हूं, निश्चित हूं, अब यह कार्य'...

"प्रभु का स्पर्श होते ही मेरी सुधि जाती रही। शरीर में रोमांच हो गया, जब होश आया तो फाटक के भीतर घुटने टेक अकेला बैठा था। आस-पास कोई नहीं था।

"मैं उसी समय भागा पंडिताचार्य श्रीवास के घर गया। इन्हें बताया तो बोले, 'प्रभु अपनी लीला समेटकर निजधाम चले गए।'"

चारों ओर यह शोक समाचार फैल गया। सारे दिन आकाश में बादल छाये रहे और लगातार पानी बरसता रहा। जो भक्त जहां था, वहीं रो उठा। वे रोते और भीगते हुए प्रभु पादुकाओं के दर्शनों को आते, क्षण भर खड़े रहते और सिर झुकाए चुपचाप लौट जाते। उस सारे दिन सूर्य के दर्शन ही नहीं हुए।

○

विष्णुप्रिया अब शची मां के कमरे में ही रहती और सारे दिन बाहर न निकलती। अरुणोदय से पहले ही तुलसी-पूजा कर लेती, फिर पादुका-मंदिर में जाकर पूजा और जप करती और कमरे में लौटकर जप

करती और धार्मिक ग्रंथों को पढ़ा करती। दुपहर बीत जाता और जबतक कोई जाकर उसे ध्यान से न जगाता, उसके मुंह में पानी की एक बूंद भी न जाती थी। प्रायः कठिन व्रत-उपवास किया करती, और जिस दिन अन्न ग्रहण करना होता तो सिर्फ एक चुटकी चावल खाकर रह जाती।

सलोनी से देखा न जाता। समझाती, जिद करती, झगड़ भी पड़ती, पर विष्णुप्रिया पर कोई असर न होता। बेचारी सलोनी तड़पकर रह जाती।

इसी तरह चार महीने बीत गए। विष्णुप्रिया की साधना दिनोंदिन उग्र होती जा रही थी। अब वह आधी रात में ही उठ जाती और स्नानादि से निपट पादुका-मंदिर में ध्यान-मग्न होकर बैठ जाती। संसार में रहते हुए भी वह सब ओर से अलिप्त होकर प्रभु का ध्यान किया करती। कांचना हमेशा छाया की तरह उसके साथ रहती।

एक दिन नित्य की भाँति विष्णुप्रिया प्रभु की पादुकाओं के पास ध्यानावस्था में बैठी थी कि सहसा सचेत हो गयी। उसने पुकारा, "कांचना दीदी, कांचना दीदी..."

कांचना उससे कुछ हटकर दीवार से टिकी बैठी जप कर रही थी। उसने पास जाकर पूछा, "तूने मुझे पुकारा?"

"हां, दीदी! अंत में प्रभु ने मेरा हठ पूरा कर दिया।"

"कैसा हठ?"

"प्रभु विद्यमान थे, तबतक उनके चरण ही मेरा सर्वस्व थे। उनके लीला-संवरण के बाद मेरे वियोग-व्याकुल मन को पादुकाओं से संतोष नहीं होता। उनकी मूर्ति बनवाकर इन पादुकाओं पर प्रस्थापित करने की इच्छा बलवती होती गई। मैं रोज यही प्रार्थना करती थी कि मेरे पीछे इस मंदिर में वह साकार स्वरूप सभी को दर्शन देते रहें।"

प्रभु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। जिस नीम वृक्ष के तले प्रभु ने अनेक लीलाएं कीं, उसकी लकड़ी की मूर्ति बनाने की स्वीकृति उन्होंने आज प्रदान कर दी।"

श्याम ने सुनते ही तुरन्त काम शुरू करवा दिया। कुशल कारीगर विष्णुप्रिया की कल्पना को साकार करने में लग गए।

दो महीनों में मूर्ति बनकर तैयार हो गई। विष्णुप्रिया के हृदय में सदैव विराजमान गौरांग की जैसे मूर्ति थी, ठीक उसी के अनुरूप, कंधे पर लहराते हुए काले-काले घुंघराले बाल, कटि में पीतांबर, दोनों कंधों पर से आगे झूलता हुआ उत्तरीय, गले में फूलों की माला, माथे पर चंदन का तिलक...

नवद्वीप-वासियों का नित्य का देखा-भाला वही दिव्य स्वरूप।

जिन कुशल कारीगरों ने रात-दिन एक करके मूर्ति को गढ़ा, वे स्वयं उसे देखकर मोहित हो गये। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी सुन्दर और सजीव मूर्ति को उन्होंने गढ़ा है। यह उनकी कारीगरी नहीं हो सकती, स्वयभू कृति है। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे अब और मूर्ति नहीं बनायंगे।

जब मूर्ति तैयार हो गई तो विष्णुप्रिया के अवलोकनार्थ रेशमी वस्त्र से आच्छादित कर उसे पादुका मंदिर में रख दिया गया।

नित्य नियमानुसार विष्णुप्रिया उत्तर रात्रि के समय पादुका मंदिर में आई। कांचना ने मूर्ति का रेशमी आच्छादन धीरे-से दूर कर दिया। विष्णुप्रिया ने मूर्ति को नख से शिख तक देखा। चेहरे पर उसकी दृष्टि स्थिर होकर गयी। यह मूर्ति है या प्रभु का साक्षात् श्रीविग्रह। ओठों के कोनों पर वही लुभावनी बंकिम मुस्कान! वह अपने आपको भूल गई। समय का सारा व्यवधान फिर गया। 'प्रभो-प्रभो...' कहती हुई मूर्ति को बांहों में भरने के लिए वह दौड़ पड़ी।

"प्रिये, ठहरो! वह समय अभी नहीं आया।"

कानों में गंभीर शब्द गूंजे, मानो देववाणी हुई। वह वहीं ठिठक गई। काल का प्रवाह पुनः अजस्र चलने लगा।

उसने संतोष व्यक्त किया, "दीदी, मूर्ति बिलकुल परिपूर्ण और निर्दोष है।"

कांचना दीदी थोड़ी देर उसकी ओर देखती रही, फिर उसके चरणों में गिरकर बोली, "प्रियामां, प्रभु की मूर्ति परिपूर्ण हो गयी, अब इस वैष्णवी का जीवन भी परिपूर्ण कर दे। वह समय आ गया है।"

विष्णुप्रिया अवाक् पैर खींचकर पीछे हट गई।

"दीदी..."

"नहीं, अब इसके आगे 'दीदी' नहीं । वह नाता कभी का समाप्त हो गया है । प्रभु की आज्ञा और उन्हीं की कृपा से तुम्हारे साथ रहने और सेवा करने का सौभाग्य मिला । यहां आने पर तुम्हारे देवत्व का निरंतर अनुभव होता रहा । अपने भाग्य को स्वयं मैं ही क्या सराहूं ? अब मेरी एक ही इच्छा है, मुझे मंत्रदीक्षा दो, मां ।"

विष्णुप्रिया एक क्षण के लिए गंभीर हो गई । थोड़ी देर बाद उसने कहा, "प्रभु मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के दिन तुझे मंत्रदीक्षा दूंगी ।"

प्रभु-प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा का शुभ दिन आ पहुंचा ।

माघ महीने की कड़ाके की ठंड के बावजूद सारे भक्त नवद्वीप में आ जुटे थे । सौ वर्ष के अद्वैताचार्य सीता मां के साथ प्रतिष्ठा-समारोह के लिए खास तौर से आये थे । न आ पाए अकेले बेचारे नित्यानंद । जूड़ी-बुखार ने उन्हें बिस्तर से बांध दिया था ।

सुबह से ही शास्त्रों के अनुसार विधियां शुरू हुईं ।

वेदपाठी ब्राह्मणों और मंत्रोच्चार करने वाले पंडितों की वाणी मुखर होती गई ।

जहां पादुकाएं थीं, उसी के पीछे मूर्ति को स्थापित किया गया । वस्त्र और पुष्पालंकारों से सजाया गया । ऐसा लगता था कि मूर्ति नहीं, साक्षात् गौरांग प्रभु ही खड़े मुस्करा रहे हैं ।

प्रतिष्ठा-समारोह में भाग लेने के लिए पुरी के भक्तगण भी आए थे । प्रिया मां के दर्शनों का उन्होंने विशेष आग्रह किया । प्रभु के लीला-संवरण के बाद से विष्णुप्रिया हमेशा अपना चेहरा ढक कर रखती थी । अद्वैताचार्य के बार-बार अनुरोध करने पर भी वह मुंह खोलने को तैयार नहीं हुई । स्वरूप गोस्वामी आदि पुरीवासी भक्तों को शुभ्र वसनधारी, कृश-तन वाली, अवगुंठनमयी तपस्विनी प्रभु पत्नी के दर्शन से ही संतोष करना पड़ा ।

रात के समय प्रसाद और भोजन के बाद सारे भक्त भजन के लिए बाहर के विस्तीर्ण प्रांगण में एकत्र हुए ।

चौबीस वर्षीय गोरा, सुंदर यदुनंदन बीच में आकर खड़ा हुआ । घने काले केश गरदन के नीचे लटक रहे थे । पीतांबर पर नीले रंग का उत्तरीय

दोनों कंधों से सामने की ओर घुटनों तक लटका हुआ था। गले में सुगंधित फूलों की माला, ललाट पर चंदन का तिलक और चारों ओर चंदन की महक। देखकर लोगों को लगा, जैसे गौरांग प्रभु ही आ गए हैं।

यदुनंदन ने सभी आचार्यों को प्रणाम और भक्त-समुदाय का अभिवादन कर पहले एक श्लोक सुनाया और फिर दोनों हाथ उठाकर 'श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' मंत्र का सुर-ताल से कीर्तन किया। उसके साथ सभी ने समवेत स्वर में उसे दोहराया। इस तरह एक-एक कर उसने आठ श्लोक कहे और 'श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे' का कीर्तन किया।

उसके ऊपर उठे हुए हाथ, आकाश की ओर दृष्टि, उसका रूप-सौंदर्य, हाव-भाव, सुरीला स्वर, भाव-समाधि, पद-क्षेप सभी कुछ हूबहू गौरांग महाप्रभु से मिलता था। लेकिन पुरीवासी भक्तों को सबसे अधिक आश्चर्य उन आठ श्लोकों को सुनकर हुआ।

स्वरूप गोस्वामी ने बताया, "ये आठों श्लोक तो महाप्रभु के रचे हुए हैं और रघुनाथदास इन्हीं श्लोकों को यहां सुनाने वाले थे। आश्चर्य है कि यदुनंदन पंडित को ये श्लोक कैसे और कहां से मालूम हो गए!"

यदुनंदन ने विनम्रतापूर्वक कहा, "ठाकुर मां ने दो दिन पहले मुझे ये श्लोक बताए और कहा कि महाप्रभु द्वारा रचे गए इस कृष्णाष्टक को प्रतिमा-स्थापना के दिन से रोज शाम की आरती में कहने का अपना नियम बना लूं। ठाकुर मां की आज्ञा से मैंने आज ही शुभारंभ किया।"

विष्णुप्रिया की इस अलौकिक शक्ति ने सभी भक्तों को चकित कर दिया। सब 'धन्य-धन्य' कह उठे।

दूसरे दिन सवेरे राज पंडित, अद्वैताचार्य, श्रीवासाचार्य, श्याम पंडित और अन्य वरिष्ठ भक्तों के सामने विष्णुप्रिया ने मंदिर की पूजा-अर्चा का स्थायी प्रबंध कर दिया। सारा भार श्याम और यदुनंदन को सौंप कर वह निश्चित हो गई।

चौथे पहर अद्वैताचार्य सीता मां के साथ शांतिपुर लौटने की तैयारी कर रहे थे कि खबर मिली, पिछली रात के आखिरी पहर में अवधूत नित्यानंद का स्वर्गवास हो गया।

अद्वैताचार्य ने कहा, "हरिइच्छा वलीयसी।"

विष्णुप्रिया ने अब और भी कठोर तपस्या आरंभ की। प्रभु के अंतर्धान होने के बाद वह गंगा का पानी घर मंगवाकर स्नान किया करती थी। अब रोज सूर्योदय से पहले ही कांचना को साथ लेकर गंगास्नान के लिए जाने लगी। घाट से लौट कर तुलसी पूजा के बाद मंदिर में प्रभु-प्रतिमा का दर्शन करती और तब अपने कमरे में चली जाती। वहां दाईं हथेली में थोड़ा-सा गंगाजल लेकर उसमें एक तुलसी पत्र डालती और प्राशन कर लेती।

कांचना एक थाली में थोड़े से चावल लाकर उसके पास रख देती और पास में दूसरा खाली पात्र रखकर, दरवाजा बंद कर बाहर चली जाती।

विष्णुप्रिया प्रभु-पादुकाओं का ध्यान कर 'हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे,' तीसरे पहर तक जप करती हुई, हर मंत्र पर चावल का एक-एक दाना खाली पात्र में डालती जाती थी।

तीसरे पहर कांचना धीरे-से दरवाजा खोलकर भीतर आती और खाली पात्र में संचित चावलों को पकाकर ले आती। विष्णुप्रिया मंदिर में जाकर उस भात का प्रभु-प्रतिमा को भोग लगाती और प्रसाद के रूप में थोड़ा-सा खाकर शेष भक्तों को बंटवा देती।

श्याम, सलोनी, यदुनंदन और अन्य भक्त उसे शरीर धारण के लिए आवश्यक भोजन और पोषण लेने का आग्रह-अनुरोध करते तो हंसकर टाल देती, "तुम्हें भले ही लगे, पर व्रत जरा भी कठोर नहीं है, और शरीर टिकाये रखने के लिए जितना आवश्यक है उतना मैं लेती हूं।"

इतने सूक्ष्म आहार के बाद भी उसकी कार्य-क्षमता में कोई अंतर नहीं पड़ा था। शरीर अवश्य कृश होता जाता था, पर चेहरा अधिकाधिक तेजस्वी होता जा रहा था।

भक्त आते, तब वह बहुधा कुछ बोलती नहीं थी। उसका जप चलता रहता।

भक्त देहली के बाहर बैठ जाते। थोड़ा जप करते। भूमि पर मस्तक टिकाकर उसका वंदन करते और धीरे-से चल देते।

स्त्रियाँ बीच-बीच में उससे श्रीमद्‌भगवत्‌गीता के अथवा किसी अन्य धार्मिक ग्रंथों के बारे में कुछ प्रश्न पूछतीं। तब उनके उचित उत्तर देकर वह उनका समाधान कर देती।

एक दिन कांचना और अन्य नारी-भक्तों के अत्यंत आग्रह करने पर उसने उन लोगों को गुरुमंत्र दिया और कहा, "गुरुमंत्र देने का अधिकार तो प्रभु को ही है, इसलिए उनका स्मरण करके इस गुरुमंत्र को ग्रहण करो। प्रभु हमेशा कहा करते थे कि स्त्री बड़ी भारी शक्ति है। आद्य स्त्री-शक्ति ही सृष्टि का केंद्र-बिंदु है। इस शक्ति को जाग्रत कर जगत का कल्याण करो और वैष्णव धर्म का पालन करो।

"वैष्णव धर्म के ये लक्षण बताए हैं : तृण से भी अधिक विनम्रता का और वृक्षों से भी अधिक सहिष्णुता का आचरण करे, अपमान करने वालों का आदर करे और हमेशा हरि-कीर्तन करता रहे।"

○

माघ महीना समाप्त हुआ। फाल्गुन की पूर्णिमा को प्रभु का जन्मोत्सव विशेष धूमधाम से मनाने का निश्चय किया गया।

पूर्णिमा के दिन विष्णुप्रिया सदा से कुछ जल्दी उठ गई और नित्य की तरह कांचना के साथ गंगा-स्नान करने गई।

स्नान करते समय उसने कांचना से कहा, "कांचना, 'गंभीरा मंदिर' में एक बार भावावेश में श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल होकर महाप्रभु ने कहा था, 'गोविंद के विरह में एक निमिष एक युग की तरह और यह सारा संसार सूना लगता है। आज मेरी भी यही अवस्था हो गयी है। प्रभु-विरह असहनीय हो उठा है। एक-एक क्षण युग की भांति लग रहा है। प्रभु-मिलन के लिए मन अधीर हो गया है।..."

कांचना कुछ बोली नहीं, चुपचाप सुनती रही। कहती भी क्या! लेकिन हृदय उसका कांपने लगा।

गंगा-स्नान से लौटते हुए रास्ते-भर विष्णुप्रिया आर्त स्वर में 'हा प्रभो! हा प्रभो!' पुकारती रही।

दोनों आंगन में आईं।

विष्णुप्रिया ने कहा :

"कांचना, आज प्रथम मैं तुलसी-पूजापाठ करती हूं। प्रातःकाल की आरती हो जाने के बाद मैं प्रभु का दर्शन करूंगी।"

वह अपने कमरे में आई। कांचना ने उसकी पूजा की सारी तैयारी कर दी।

उसकी पूजा, उसके नित्य के पाठ इत्यादि पूरे हो गए। मंदिर में प्रात:काल की आरती हो गई। आरती के लिए आए भक्तगण चल दिये।

प्रात:कालीन आरती से पहले विष्णुप्रिया ने अपना पूजा-पाठ निपटाया। फिर नित्य की भांति श्याम, सलोनी, यदुनंदन, उसकी पत्नी आदि घर के सब लोगों को आशीर्वाद और प्रसाद दिया। आरती हो जाने के बाद कांचना को लेकर मंदिर में दर्शनों के लिए गई।

मूर्ति के दोनों ओर लम्बी दीवटों पर दो और छोटी दीवटों पर दो दीप मंद प्रकाश फैला रहे थे। उनके स्निग्ध प्रकाश में ऐसा लग रहा था, मानो प्रभु कुछ समय पहले ही जागे हैं। चेहरा शांत और प्रसन्न था और ओठों पर हल्की-सी मुस्कान।

विष्णुप्रिया की दृष्टि प्रभु चरणों पर टिक गयी और उसके अपने ओठों पर प्रसन्न मुस्कराहट फैल गई। बहुत पहले की बात याद आ गयी :

'प्रिये, गया से तुम्हारे लिए क्या लाऊं? तुम्हारी सबसे अधिक प्रिय वस्तु क्या है?' 'आपके चरण, प्रभो! केवल आपके चरण!' उसका उत्तर था।

थोड़ी देर तक वह उसी तरह खड़ी रही, फिर कांचना से बोली, "कुछ समय के लिए मुझे प्रभु के पास अकेली रहने दे। तू बाहर चली जा।"

जाते-जाते कांचना ने देखा कि विष्णुप्रिया के चेहरे पर एक निराला ही तेज उभर आया है। उस तेजोमय चेहरे पर प्रसन्न उत्कंठा थी। वह क्षण-भर को ठिठकी तो विष्णुप्रिया ने प्यार से डांटा, "अब जल्दी जा, देर न कर। प्रभु प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

एक अनाम भय से कांपती, शिथिल पग, गरदन झुकाये, गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर, कांचना ने दरवाजा बंद किया और बाहर निकल आई।

थोड़ा समय बीता।

और भी थोड़ा समय बीत गया।

जब विष्णुप्रिया बाहर नहीं निकली तो कांचना व्यग्र हो गई। जितनी देर होती जाती थी, उसकी व्यग्रता उतनी ही बढ़ती जाती थी। आखिर उसने श्याम को बुलवाकर दरवाजा खुलवाया।

दीपों के मंद प्रकाश में प्रभु मूर्ति अकेली खड़ी थी। उनके ओठों की मुस्कान सारे चेहरे पर फैल गई थी। मुस्कराता हुआ चेहरा और भी अधिक भास्वर हो गया था।

कांचना को समझते देर न लगी। इसी की आशंका से तो उसके मन-प्राण थरथरा रहे थे।

उसकी प्राणप्रिय सखी चली गयी थी। वह प्रभु की मूर्ति में विलीन हो गई थी।

लड़खड़ाते कदमों से, आंसू बहाती हुई, वह आगे बढ़ी और प्रभु-पादुकाओं पर उसने अपना सिर रख दिया।

"हा प्रभो! हा विष्णुप्रिये!" की आर्त पुकार के साथ उसकी प्राण-ज्योति बुझ गयी।

○

'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

उपन्यास साहित्य

- मेघ मल्हार
- विराट
- आँचल और आग
- प्रेम की देवी
- सुल्तान और निहालदे
- अग्निशिखा
- अथाह की थाह
- भाग्य की विडम्बना
- ज़िन्दगी दाँव पर
- प्रेम और प्रकाश
- तूफान और ज्योति
- चट्टान नहीं पिघलती
- अमृतघट
- कित्तूर की रानी
- ज्वालामुखी
- प्रेम प्रपंच
- नवीन यात्रा
- भोर की आहट
- राजकुमार की प्रतिज्ञा
- गौरप्रिया

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

